राजस्थान की जातियाँ

१९ वीं शताब्दि के अंत के राजस्थान-निवासियों का
सचित्र रोचक विवरण

सन् १८९१ की जनगणना रिपोर्ट की दुष्प्राप्य प्रति के
आधारपर संकलित

: प्रस्तुतकर्त्ता व प्रकाशक :

बजरंगलाल लोहिया

कलकत्ता

अक्षय तृतीया
संवत् २०११

मई
सन् १९५४

सादा संस्करण
मूल्य १२)

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

कलकत्ता	हिन्दी पुस्तक एजेन्सी	२०३, हरिसन रोड,
,,	आधुनिक पुस्तक भवन	३०।३१ कलाकार स्ट्रीट,
,,	बाम्बे बुक डिपो	१९५।१ हरिसन रोड,
,,	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय	,, ,,
,,	बाम्बे पुस्तक भंडार	,, ,,
,,	कलकत्ता पुस्तक भंडार	१७१ ए, हरिसन रोड.
,,	जनवाणी प्रकाशन	१६१।१ हरिसन रोड.
,,	यूरो अमेरिकन बुक एजन्सी	१ चौरंगी प्लेस.
,,	डिक्सन एण्ड कं०	११५ ए तारक प्रमाणीक रोड.
,,	के० एल्० मुखोपाध्याय	६-१ बी बावां राम अकरूर
बम्बई	नवनीत प्रकाशन	३४१ तारदेव बम्बई ७
,,	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय	हीरा बाग, सी. पी. टैंक
,,	हिन्दी पुस्तक भंडार	,, ,,
,,	राजकमल प्रकाशन	हिमालय हाऊस, दादाभाई नवरोजी रोड
,,	भारतीय पुस्तक भंडार	कालबा देवी रोड.
जयपुर	हिन्दी साहित्य बुक डिपो	चौपावतीजी का मन्दिर, जौहरी बाजार
,,	बाणी मन्दिर	चौड़ा रास्ता
,,	बीर पुस्तक मन्दिर	मनिहारों का रास्ता.
जोधपुर	हिन्दी साहित्य मन्दिर	४२, जसवन्त सराय.
,,	भारतीय साहित्य सदन	,, ,,
बीकानेर	नवयुग ग्रन्थ कुटीर	खजूरी बाग.
,,	नवयुग साहित्य सदन	,, ,,
,,	तुलसी साहित्य सदन	,, ,,
उदयपुर	हितैषी पुस्तक भंडार	उदयपुर
अजमेर	गौतम पुस्तक भंडार	जयपुर रोड.
दिल्ली	आत्माराम एण्ड सन्स	काश्मीर गेट.
,,	इण्डियन पब्लिशिंग हाऊस	नई सड़क
,,	राजपाल एण्ड सन्स	,,
,,	शारदा मन्दिर	,,
,,	गौतम बुक डिपो	,,
,,	राजकमल प्रकाशन	१ फेज बाजार
इलाहाबाद	साहित्य भवन लि०	जीरो रोड.
कानपुर	साहित्य निकेतन	श्रद्धानन्द पार्क.
आगरा	साहित्य रत्न भंडार	आगरा
लखनऊ	सस्ता पुस्तक भंडार	अमीनुद्दोला पार्क
,,	शिवाजी बुक डिपो	,, ,,
बनारस	लोक सेवक प्रकाशन	बुलानाला
,,	ज्ञान मंडल पुस्तक भंडार	चौक
,,	कल्याणदास ब्रदर्स	,,
,,	पुस्तक भवन	,,
,,	हिन्दी पुस्तक एजन्सी	,,
पटना	हिन्दी पुस्तक एजन्सी	बांकीपुर
,,	राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल	मछुआ टोला
,,	अजन्ता प्रेस लि०	,, ,,

उपरांकित स्थानों से यदि ग्रन्थ उपलब्ध न हो सकें तो नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

बिशाल भारत बुक डिपो, १९५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता
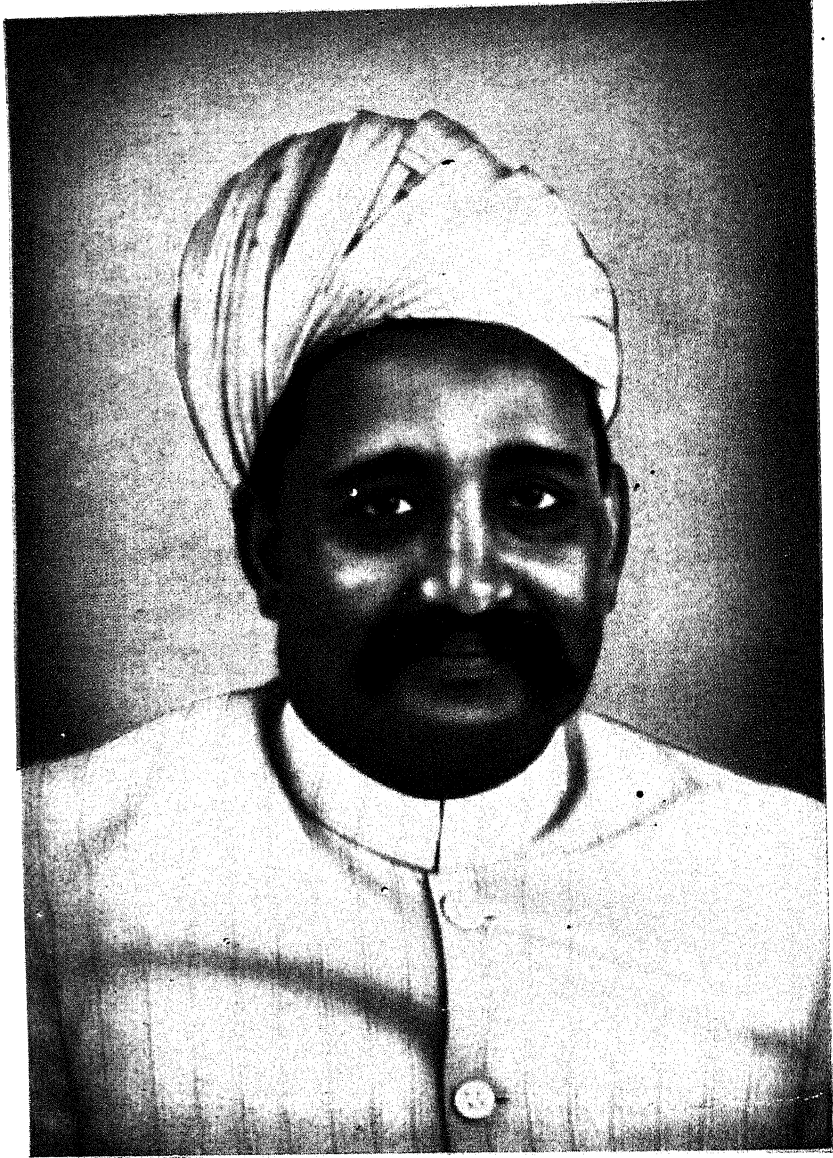
श्री विश्वम्भरलालजी माहेश्वरी

बगड़ राजस्थान

श्री विश्वम्भरलालजी माहेश्वरी

को

सादर समर्पित

मैं प्राचीनता का प्रशंसक हूँ। प्राचीन पुस्तक, प्राचीन चित्र व प्राचीन कृति देखकर मैं मुग्ध हो जाता हूँ। प्राचीन चिह्न अब विलीन होते जा रहे हैं। प्राचीन राजस्थानी वेश भूषा मात्र नहीं किन्तु प्राचीन राजस्थानी मनोभावों से परिपूर्ण महानुभाव को देखकर उनके प्रति मेरे मन में स्वभावतः श्रद्धा जागृत होती है। श्री विश्वम्भरलालजी माहेश्वरी प्राचीनता के प्रतीक स्वरूप उन सज्जनों में से हैं जो अब इने गिने ही रह गये हैं। राजस्थान की आज से ६० वर्ष पहले की जातियों का यह चित्रमय विवरण श्री विश्वम्भरलालजी को समर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। यह समर्पण एक सर्वथा उपयुक्त महानुभाव को किया जा रहा है यह इस प्रकाशन के लिये गर्व की बात है।

—बजरंगलाल लोहिया

भूमिका

भारतीय भूमि का राजस्थान वह प्रान्त है जो अपने कुछ ही वर्ष पुराने इतिहास के कारण मरुभूमि होकर भी अपने निवासियों के कृत्यों के कारण प्रमुखता को प्राप्त किये रहा है। सारे देश की कायापलट हमारे देखते-देखते हो गयी है—होती जा रही है। राजस्थान के उन राजपूतों, राजस्थान के उन व्यवसायियों, राजस्थान की उन छोटी-बड़ी जातियों के स्वरूप बदलते जा रहे हैं और कुछ ही समय में सर्वथा विलीन हो जायं तो कोई बड़ी बात नहीं।

ऐसा कहा जाय तो असत्य नहीं होगा कि मैंने मेरे जीवन के तीस वर्ष पुरानी पुस्तकों के सहवास में बिताये हैं। मेरे जन्मस्थान फतेहपुर के सार्वजनिक "सरस्वती" पुस्तकालय को अपने पारिश्रमिक से एकत्रित किये हुए प्राचीन ग्रन्थ पहुंचाता रहा हूं। मुझे इस काम में एक प्रकार का आनंद आता है जब कभी कोई अप्राप्य पुरानी पुस्तक मेरे हाथ पड़ जाती है तो मुझे ऐसा लगता है कि एक मैंने एक अमूल्य निधि पाली। यह अनोखी बात है कि मैं पुस्तकों का पाठक नहीं पर मुझे इसी में अतिशय आत्मसंतोष होता है कि वे पुस्तकें किसी के कभी काम आवें, उनमें संग्रहीत ज्ञान-निधि का वितरण वे अपने पाठकों को करें। मैं तो एक निमित्त मात्र होकर ही संतुष्ट हो जाता हूं।

प्रस्तुत पुस्तक भी मेरी ऐसी मनोवृत्ति का एक मूर्त रूप है। पुस्तकों की अपनी खोज में मुझे सन् १८९४ में छपी अंग्रेजी की एक पुस्तक मिली। आज से ६० वर्ष पुराने राजस्थान-वासियों का उसमें इतना हूबहू चित्रण मुझे मिला कि उसका हिन्दी आधुनिक रूप प्रकाशित कर अपनी जन्म भूमि के प्रति अपना एक कर्तव्य पूरा करने के लोभ का मैं संवरण नहीं कर पाया। जोधपुर के तत्कालीन जन गणना के अधिपति मुंशी हरदयालसिंह व उनके सहायक मुंशी देवीप्रसाद ने जन गणना संबंधी उस प्रकाशन के लिये अमूल्य सामग्री एकत्रित कर उसे उस रूप में जोधपुर दरबार के तत्वावधान में प्रकाशित किया था। पुस्तक चित्रों से भरपूर थी। उस सबका लाभ उठाकर मैं यह पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूं।

पुस्तक का अनुवाद मेरे आग्रह पर अनुग्रहपूर्वक श्री जगमोहन गुप्ता ने किया उसे देखकर संशोधित किया श्री झाबरमल्लजी शर्मा ने। आप दोनों महानुभावों का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक प्रकाशन के पहले कतिपय राजस्थान प्रेमियों ने इसके राजसंस्करण की प्रतियाँ खरीदने का वचन देकर मुझे उत्साहित ही नहीं इस प्रकाशन को संभव किया है। इस विषय में मैं सर्व श्री श्यामसुन्दरजी जयपुरिया, झाबरमलजी जालान, मनोहरजी मालवीय, शिवरतनजी बिन्नानी, नथमलजी केडिया, सीतारामजी नेवटिया, ठाकुर अयोध्यासिंहजी, मदनलालजी जालाण, रामेश्वरजी साबू का विषेश रूप से आभारी हूं। उन सबकी कृपा व सहायता के फलस्वरूप यह ग्रन्थ आज मैं हिन्दी जगत् को—राजस्थान की जनता को—भेंट कर रहा हूं। आशा है मेरा यह प्रयास उपयोगी होकर सफल सिद्ध होगा।

बजरंगलाल लोहिया

मुद्रकः—
पी. एच्. रामन, धी ऐसोसिएटेड अॅ. अॅन्ड प्रि. लि.
५०५ आर्थर रोड, तारदेव, बम्बई ७.

प्रकाशकः—
बजरंगलाल लोहिया,
कलकत्ता.

अनुक्रमणिका

राजस्थान की जातियाँ

संक्षिप्त परिचय

राजपूत

मारवाड़ में बसी हुई हिन्दू जातियों में राजपूत जाति सर्वप्रधान है। यह जाति एक सैनिक जाति है और अतीत काल से इस देश की रक्षा और शासन का भार वहन करती रही है। राजपूत का शब्दार्थ है, राजा के पुत्र अथवा शासकों के वंशज। प्राचीन वर्ण-व्यवस्थानुसार इसी जाति का नाम क्षत्रिय है। पूर्व काल में क्षत्रिय जाति में केवल दो ही वंश थे। एक सूर्यवंश कहलाता था और दूसरा चंद्रवंश। सूर्यवंश का केन्द्रस्थान अयोध्या था, जो आज उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अन्तर्गत एक परगना-मात्र है और चंद्रवंश का केन्द्रस्थान प्रयाग था, जो आज इसी उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है और इलाहाबाद के नाम से प्रसिद्ध है।

इन दोनों वंशों की सैकड़ों पीढ़ियों के अनन्तर इस देश में एक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था, जो महाभारत के नाम से विख्यात है। इस महायुद्ध में क्षत्रिय जाति के वंश-के-वंश विध्वंस हो गये। देश-रक्षा का भार वहन करनेवाली यह जाति इतनी निर्बल हो गयी कि देश की भूमि विदेशियों के पैरों से कुचली जाने लगी। कालांतर से इन दोनों वंशों की सत्ता इनके हाथों से निकल गयी। उसी समय देश में बौद्ध नाम के एक नवीन धर्म का आविर्भाव हुआ। इस मत के प्रचार से देश के विचारकों में ऐसा परिवर्तन हुआ कि देश का क्षत्रित्व और भी निर्बल हो गया। राजपूतों द्वारा संस्थापित राजसिंहासन उनके अधिकार से निकल गये।

आक्रान्ताओं से देश का उद्धार करने के लिए वशिष्ठ मुनि तथा अन्य ऋषि-मुनियों ने मिलकर आबू पर्वत पर एक यज्ञ का आयोजन किया और उस यज्ञ के अग्निकुंड से अग्निवंश नाम के एक तीसरे क्षत्रिय वंश की सृष्टि हुई। पंवार, चौहान, सोलंखी और पडिहार नाम के राजपूत-वंश इसी अग्निवंश की शाखाएँ हैं।

राजपूतों के इस नवीन वंश के बल का योग प्राप्त कर प्राचीन सूर्यवंश तथा चंद्रवंश के राजपूतों की शाखाओं—जैसे राठौर, सिसोदिया, कछवाहा, तंवर, भाटी और जाडेचा इत्यादि—में भी बल का पुनः संचार हुआ और उन्होंने गुजरात तथा राजपूताने के विभागों पर पुनः अपना अधिकार स्थापन कर लिया। पंवार, चौहान सोलंखी तथा पडिहार राजपूतों की अनेक शाखाएँ, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है

राजस्थान में बसी हुई हैं। इन लोगों में से कुछ के पास तो थोड़ी-बहुत जमीन है, किन्तु कुछ कृषक-मात्र हैं और भोमिएँ कहलाते हैं।

पंवार: :१: सोढा :२: सांखला :३: भयाल
चौहान: :१: सोनगरा :२: सांचोटा :३: देवडा :४: व्रोरा
सोलंखी: :१: बघेल :२: बलोटे
पडिहार: :१: ईन्दा

मुसलमान राजपूत

राजस्थान में कुछ मुसलमान राजपूत भी आबाद हैं। ये मुसलमान सिपाही भी कहलाते हैं। ये नाममात्र के मुसलमान हैं, कारण कि इन लोगों तथा हिन्दू राजपूतों के रीति-रिवाजों में और रहन-सहन में कोई भेद नहीं है। वास्तव में ये वही भाटी और चौहान राजपूत हैं, जो मुसलमानी शासनकाल में मुसलमानी मत स्वीकार करने के लिए मजबूर किये गये थे। इन लोगों की बस्ती मारवाड़ के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में अधिक है।

सन् ११९३ ईस्वी, अर्थात् शहाबुद्दीन गोरी के शासन के प्रारम्भ और सन् १६८४ ईस्वी, अर्थात् औरंगजेब के शासनान्त के बीच काल में जो भाटी राजपूत मुसलमान हो गए थे, वे सिंधी सिपाही कहलाये और जो चौहान राजपूत सन् १३८३ ईस्वी के लगभग मुसलमान हुए, वे कायमखानीं कहलाने लगे।

राजपूत-प्रतिष्ठा

राजपूतों के विश्वास के अनुसार किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिए निम्नलिखित तीन बातें आवश्यक हैं :

१. जमीन पर अधिकार
२. स्त्रियों में परदा
३. उच्च परिवार से सगपन, अर्थात् विवाह-सम्बन्ध करते समय राजपूतों की दृष्टि में भू-सम्पत्ति सर्वोच्च मानी जाती है और वह उसके अधिकार की माप से एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा की माप करते हैं। अभिप्राय यह है कि जिसके पास जितनी अधिक जमीन है, उसकी उतनी ही बड़ी प्रतिष्ठा है। राजपूत प्राणों की जोखिम झेलकर भी जमीन का अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहता। कर्नल टाड ने लिखा है कि राजपूत पत्नी छोड़ सकता है, किन्तु पृथ्वी नहीं छोड़ सकता। राजपूतों के स्वभाव के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है :

धर्म जातां धर पलटतां त्रिया पड़तां ताव।
यह तीनों दिन मरणरा कहा रंक कहा राव॥

—धर्म जा रहा हो, धरती छिनी जा रही हो, स्त्री पर अत्याचार हो रहा हो—ये तीनों अवसर ही मर मिटने के हुआ करते हैं, चाहे वह रंक (दीन, गरीब) हो चाहे राव (राजा, अमीर)।

लगान की दर के अनुसार कई श्रेणी के भूमिधर राजपूत आबाद हैं। उन श्रेणियों का विवरण निम्नलिखित है :

१. किसान : वह लोग, जो लगान की प्रचलित साधारण दर से राजा अथवा जमींदार को लगान अदा करते हैं।

२. मुकता देनेवाले : वह लोग, जो लगान की साधारण दर से कम, एक निश्चित रकम राजा अथवा भू-स्वामी को प्रतिवर्ष दे दिया करते हैं।

३. दुम्बा दाता : यह लोग इस्तमरार के रूप में अत्यन्त अल्प रकम लगान में देते हैं।

४. भूमिये : यह लोग अपनी जमींन का कोई लगान नहीं देते।

५. जूना जागीरदार : इन्हें किसी पुरानी जागीर के बदले में भूमि प्राप्त हुई थी।

६. जागीरदार अथवा सरदार इत्यादि : पारिवारिक क्षेत्र में ऐसे राजपूत प्रतिष्ठाहीन माने जाते हैं, जिनके पास जमीन बिलकुल न हो और जमींदारों की नौकरी से अपना गुजारा चलाते हों। ऐसे राजपूतों की जमीन-रूपी सम्पत्ति से सम्पन्न उनके बंधु-बांधव उनके साथ बैठकर भोजन तक नहीं करते। यह लोग हलखड़ अथवा हल खड़ा करनेवाले कहलाते हैं।

परदा

राजपूत अपनी स्त्रियों को अधिक-से-अधिक परदे में रखना पसन्द करते हैं और इसी में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं, किन्तु परदे का पूर्ण पालन वे ही परिवार कर पाते हैं, जो धनवान हैं। गरीब परिवारों के घरों की स्त्रियों को बाहर कुओं से पानी लाना ही पड़ता है और अपने पुरुषों को खेतों पर रोटी पहुँचानी ही पड़ती है।

सगपन

समाज में उच्च स्थान प्राप्त परिवारों के साथ सगपन हो जाने को भी राजपूत एक अभिमान की बात मानता है, किन्तु ऐसा सगपन उन्हीं को प्राप्त होता है, जो धनवान हैं। गरीब राजपूत अपनी गरीबी की माप के अनुसार निरन्तर नीचे गिरता जाता है। कोई प्रतिष्ठित परिवार उसके साथ सगपन नहीं जोड़ता और गरीबी के साथ-साथ उसकी दशा यहाँ तक गिर जाती है कि उसको नातरायतों की श्रेणी में जाने के लिए विवश होना पड़ता है। कदाचित् उसके भाग्य ने फिर पलटा खाया और वह फिर धनवान हो सका, तो फिर उसका

सामाजिक उत्थान हो जाता है और यहाँ तक कि एक दिन जो लोग उसके परिवार की कन्या लेना अस्वीकार करते थे, वे ही उसके परिवार में अपनी कन्या देने लग जाते हैं।

राजपूत शरीर के सुन्दर-स्वस्थ और लम्बे-चौड़े होते हैं। वे प्रकृति के सीधे तथा सरल स्वभाव के होते हैं। पूर्वीय भारत के राजपूतों के समान धार्मिक पक्षपात मारवाड़ी राजपूतों में नहीं होता। वे दयालु तथा सुशील होते हैं, किन्तु जब वे बारोठिया हो जाते हैं, तब ऐसे कठोर और अत्याचारी हो जाते हैं कि भयंकर-से-भयंकर कांड करने में भी नहीं हिचकते।

पूर्वीय परगनों में बसे राजपूत पश्चिमी परगनों के राजपूतों की अपेक्षा अधिक समुन्नत और सम्पन्न दिखायी पड़ते हैं। जागीरदार और सरदार पूर्व में विशेष रूप से आबाद हैं। वे लोग चतुर हैं और उनकी रहन-सहन स्वच्छ है उनके मकान भी पक्के हैं। पश्चिमी दरगनों के राजपूत सीधे और सरल हैं तथा छप्पर छान के कच्चे मकानों में रहते हैं। उनका रहन-सहन जल की कमी होने के कारण साफ-सुथरा नहीं होता, इसलिए ये लोग मेली पिछवडी वाले कहे जाते हैं। पानी की दुर्लभता से कपड़े धोकर सफेद निकालने का इनको अवसर नहीं मिलता।

राजपूतों में मद्यपान का बड़ा चलन है और वे इसका इतना सम्मान करते हैं कि अपनी पुरानी-से-पुरानी शत्रुता इसकी मस्ती में भुला देते हैं। मद्यपान तथा और ऐसे दुर्व्यसन, जो साधारण हिन्दुओं के लिए सर्वथा वर्जित हैं, राजपूतों में खुल्लमखुल्ला देखकर ही कर्नल टाड को ऐसा जान पड़ा कि ये लोग हिन्दू धर्म के प्रभाव से सर्वथा वंचित हैं। पूर्वीय परगनों में शराब का चलन है और पश्चिमी परगनों में अफीम का। जीवन के सुख-दुःख के समस्त अवसरों पर पारस्परिक व्यवहार में इन दोनों नशों का खुले हाथों उपयोग होता है। इन लोगों में रीति है कि यदि दो शत्रु आपस में एक-दूसरे के हाथ से अफीम ग्रहण कर लें, तो उसी क्षण से उनकी शत्रुता मित्रता में परिणत हो जायगी। चमरपोरा भी एक विशेष वस्तु मानी जाती है—ऐसी कि अफीम-भोजों में उन पर विवाद और आलोचना होती है तथा चारण और भाट उनके गुण गाते हैं।

भोमिये

किसान और राजपूतों में किसी की मृत्यु हो जाने पर उसकी सम्पत्ति या तो उसके पुत्रों में अथवा उसकी विधवा स्त्रियों में बराबर-बराबर बाँट दी जाती है। अर्थात्, यदि किसी व्यक्ति ने बहु-विवाह किये और चार विधवाएँ छोड़ीं तो उसकी सम्पत्ति उन चारों विधवाओं में बराबर-बराबर बँट जायगी और

फिर यदि एक स्त्री के तीन पुत्र हुए, तो उसका चतुर्थ भाग उन तीनों पुत्रों में तीन सम भागों में बँटेगा और दूसरी स्त्री के पाँच पुत्र हुए, तो उसके भाग की चतुर्थांश सम्पत्ति उसके पाँचों पुत्रों में बराबर-बराबर बँट जायगी।

सरदारों और जमींदारों में गोद लेने की प्रथा भी प्रचलित है और निकटतम सम्बन्धी की सन्तान गोद ले ली जाती है।

राजपूत एक से अधिक विवाह करने के लिए स्वतंत्र हैं। यदि किसी राजपूत की सगाई किसी कन्या के साथ हो जाय, तो उसके साथ विवाह अनिवार्य हो जायगा। कहावत है:

क्वांरी नहीं छूटे, ब्याही छूट जाय।

अर्थात् विवाहित को दुयम दिया जा सकता है, परन्तु कुमारी को छोड़ने का कोई उपाय नहीं है।

वर, कन्या के पिता किसी चारण, भाट, पुरोहित अथवा किसी अन्य को भेजकर सगपन स्थिर करते हैं। सम्बन्ध स्थिर हो जाने के पश्चात् कन्या का पिता वर के यहाँ अपनी शक्ति के अनुसार टीका भेजता है। टीके के साथ वस्त्र और नारियल आदि सामान भेजा जाता है, किन्तु यदि कन्या का पिता सुसम्पन्न हुआ, तो टीके के साथ घोड़े, सोने-चांदी के आभूषण तथा नौकरों और कामदारों के लिए वस्त्रादि भी भेजे जाते हैं। जिसकी स्थिति बहुत ही साधारण होती है, वह केवल १ रु. और नारियल भेज कर ही टीके की रस्म पूरी कर लेता है।

वर के घर टीका पहुँचने पर वर का पिता अपने कुटुम्बियों, इष्ट-मित्रों व सगे-सम्बन्धियों को एकत्र करता है, उनके समक्ष ब्राह्मण कुलाचार के अनुसार देवार्चनपूर्वक वर के मस्तक पर तिलक लगाता है तथा कन्या के यहाँ से आया हुआ सामान वर को समर्पित होता है। मेहमानों को भोज दिया जाता है तथा उनमें गुड़ और अफीम वितरण की जाती है। कन्या का पिता टीके के साथ नहीं जाता, किन्तु विशेष परि-स्थितियों में उसके सम्बन्धी चले जाते हैं।

टीका सम्पन्न हो जाने के पश्चात् विवाह की स्थिरता के लिए कोई अवधि निश्चित नहीं है। विवाह का समय-निर्धारण दोनों पक्षवालों की सुविधा पर निर्भर रहता है।

जब दोनों पक्ष विवाह सम्पन्न करना निश्चय करते हैं, तब पहले शुरू लग्न की तिथि स्थिर की जाती है, तदनन्तर विवाह के अन्य कार्य आरम्भ होते हैं। मित्रों और सम्बन्धियों को उक्त अवसर पर सम्मिलित होने की पत्रिका रंगीन पीले कागज पर भेजी जाती है, जिसको कुंकुम्-पत्री कहते हैं। वर-कन्या अपने-अपने घरों में आनन्दोत्सव मनाते हैं, गीत गाये जाते हैं। दोनों परिवारों में अपने-अपने प्रेमियों, भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियों को सादर प्रीतिभोज देकर आन्तरिक हर्ष प्रकट किया जाता है।

विवाह के कई दिन पूर्व वर के घर की स्त्रियाँ—सात सुहागिनें—वर के तेल चढ़ाने की रीति सम्पन्न करती हैं। यह रीति विवाह के उतने दिन पूर्व सम्पन्न होती है, जितने दिन कन्या के घर पहुँचने के लिए आवश्यक होते हैं। तेल चढ़ाने की परम्परा का पालन होने के पश्चात् वर के दाहिने हाथ और पैर में एक रंगी मौली नाल का डोरा बाँधा जाता है, जिसे कांगण डोरा कहते हैं। फिर न्योता उगाहने की रीति होती है। इस रीति में वर अपने इष्ट-मित्रों, सगे-सम्बन्धियों तथा नौकर-चाकरों के बीच में उच्चासन अथवा कुरसी पर बैठता है और सब लोग अपने-अपने व्यवहार के अनुसार एक रुपये से एक सौ रुपये तक प्रदान करते हैं।

इसके पश्चात् जलूस, जिसे बारात कहते हैं, सजाया जाता है। वर हाथी, घोड़ा अथवा जो श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सवारी उसे प्राप्त हो सकती है, उस पर मूल्यवान वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर तथा सेहरा और मौर धारण कर बैठता है और अपने मित्रों, सम्बन्धियों और नौकर-चाकरों के समूह में बाजे-गाजे के साथ कन्या के घर के लिए प्रस्थान करता है।

एक जोड़ा वस्त्र और चूड़ियाँ वधू के लिए वर के साथ जाती हैं। गहने इसलिए नहीं भेजे जाते कि वह वधू के पिता से प्राप्त होते हैं और कदाचित् वधू का पिता इस योग्य न हुआ, तो वर का पिता वधू को अपने घर पहुँचने पर देता है।

कन्या-पक्ष से बारात का स्वागत किया जाता है। यह स्वागत या तो कन्या के निवास-स्थान से कुछ दूर अथवा गाँव के प्रवेश-मार्ग पर किया जाता है। इस अवसर पर बहुधा एक मनोरंजक बात यह हुआ करती है कि दोनों ओर से जानी (बराती) और पडजानी (कन्या-पक्ष से अगुआनी करने के लिए आये हुए) अपने-अपने ऊँट और घोड़े एक साथ दौड़ाते हैं। इस दौड़ में कदाचित् किसी वर-पक्ष के व्यक्ति की जीत हुई, तो उसे कन्या-पक्ष से न्यूनतम पाँच रुपये पुरस्कार प्राप्त होता है और यदि कन्या-पक्ष का कोई व्यक्ति विजय पा गया, तो किसी को कुछ लेना-देना नहीं पड़ता। इसके पश्चात् दोनों पक्ष के लोग एक साथ बैठकर या तो शराब पीते हैं अथवा अफीम खाते हैं। यह रीति साभँला कहलाती है। जहाँ बारात को ठहराया जाता है, वह स्थान जनवासा कहलाता है।

इसके पश्चात् वर हाथ में अपनी माला लेकर कन्या के द्वार पर बँधे तोरन को स्पर्श करता है। फिर बारात में आये हुए चारणों को पोलपात वारहठ का नेग चुकाया जाता है। इस नेग में चारण अधिक-से-अधिक धन पाने के लिए अड़ते हैं। इस कारण ही इस रीति का नाम वारहठ पड़ गया है और पोलपात इसी का परियायवाची शब्द है। वारहठ का अर्थ है, द्वार पर हठ करनेवाला।

फिर ब्राह्मण वर को चौंरी पर ले जाता है। चौंरी ठीक उस स्थान का नाम है, जहाँ विवाह सम्पन्न होगा। ब्राह्मण अग्नि जागृत करता है, देवताओं का

आह्वान करता है, मंत्रोच्चार करता है। वर-वधू इस अग्नि को चार बार परिक्रमा करते हैं। स्त्रियाँ इस अवसर के बने हुए अपने गीत गाती हैं और विवाह सम्पन्न हो जाता है। वधू, वर के साथ डोला, पालकी तथा रथ पर बैठ कर वर के स्थान पर चली जाती है।

नातरायत राजपूत

पंवार, चौहान, भाटी, सिसोदिया, पडिहार, सोलंखी और राठौड़ इत्यादि राजपूत वंशों में जिन लोगों ने विधवा-विवाह स्वीकार किया, वह जाति के बाहर होकर नातरायत कहलाने लगे। क्रमश: इन लोगों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि इनका एक अलग समुदाय बन गया।

इस दल का नाम नातरायत इसलिए हुआ कि इन लोगों ने नाता, अर्थात् विधवा-विवाह किया। इस दल के लोग वाली, पाली, जालोर, सांचौर और मालावी इत्यादि स्थानों में अधिक बसे हुए हैं। इस दल के लोग कुल, प्रतिष्ठा में हीन माने जाते हैं। उच्च कुल की प्रतिष्ठा के राजपूत न तो इन लोगों के साथ बैठकर भोजन करते हैं और न हुक्का इनको देते हैं।

नातरायत लोगों में स्त्रियों में परदा-प्रथा भी पूरी रूप से प्रचलित नहीं है। इनकी स्त्रियाँ बाहर के कूपों से पानी भर लाती हैं और अपने पुरुषों को खेतों पर भोजन दे आती हैं। कहीं-कहीं और विशेषतया सिवाना में यह लोग चौरासिया नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनका नाम चौरासिया इसलिए पड़ा कि नाता-दस्तूर में इनको चौरासी रुपये मिलने का नियम है।

नातरायत-कुल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहानी प्रसिद्ध है :

जालोर के सोनगरा खांप के चौहान राजा कानड देवकी की एक कन्या का विवाह जेसलमेर के रावल के साथ हुआ था। वह कन्या अल्पावस्था में ही विधवा हो गई। किन्तु उसका सरल हृदय वैधव्य की गम्भीरता तथा कर्तव्यों से अनभिज्ञ था। जब वह अन्य समवयस्का बालाओं को त्योहारों के अवसर पर नवीन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित देखती अथवा लड़कियों को सज-धज कर ससुराल जाते देखती, तब उसका मन भी उनके समान कपड़े-गहने पहनने के लिए लालायित हो उठता। वह हठ कर अपनी माता से कह बैठती कि मैं भी ससुराल जाऊँगी। उसकी इस दशा पर उसकी माता को बहुत दु:ख होता। एक दिन रानी ने अपनी मनोव्यथा राजा के सम्मुख प्रकट की। राजा ने अपने पुत्र वीरमदेव से परामर्श कर अपनी पुत्री का पुनर्विवाह करना निश्चय किया और चित्तौड़ के राणा को अपनी दूसरी अविवाहित कन्या के विवाह का नारियल भेज दिया। राणा ने वैवाहिक प्रस्ताव स्वरूप नारियल स्वीकार कर लिया, किन्तु जब बारात जालोर पहुँची और राणा ने नगर के द्वार पर तोरण बँधा न देखा तब कहा कि यह कैसा विवाह है कि तोरण

भी नहीं बाँधा गया ? इस पर उन्हें समझा दिया गया कि हमारे यहाँ नगर के द्वार पर तोरण बाँधने की प्रथा नहीं है, भीतर चौंरी पर तोरण बाँधा जाता है। पश्चात् जब राणाजी किले के भीतर पहुँच गये तब उन्हें कुंवर वीरमदेव ने कटारी निकालकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि या तो मेरी विधवा बहिन से विवाह कर लीजिये, नहीं तो आपको मार डालूँगा और मैं भी मर जाऊँगा। राणाजी ने कहा—"मेरे यों विधवा-विवाह करने पर मुझको और तुम्हारी बहिन को चितौड़ के किले में कौन जाने देगा ?" वीरमदेव ने कहा कि मैं गोडवाडा का परगना देकर आपके रहने के लिए दूसरा किला बनवा दूँगा। राणाजी ने इस पर सहमत होकर विवाह कर लिया।

विवाह की सम्पन्नता के पश्चात् तीन दिन व्यतीत हो गये, परन्तु राणाजी वहीं रहे। महल के बाहर नहीं निकले। उनके साथ आये हुए लोगों में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गयी। अन्त में उन्होंने अपने राजा को तुरत दिखलाये जाने की माँग की अन्यथा मरने-मारने की धमकी दी। यह संवाद पाकर राणा ने अपने आदमियों को महल के नीचे बुलाया और एक खिड़की के द्वार से उनको अपना मुख दिखलाया। उस समय से चितौड़ के राज-परिवार में विवाह के पश्चात् खिड़की के द्वार से मुख दिखलाने की एक प्रथा प्रचलित हो गयी है और वह खिड़की की झाँकी कहलाती है। यह विवाह एक नाता माना गया और वह राजपूत, जो अधिक वयस्क अथवा धनहीन होने के कारण अपनी जाति के भीतर विवाह नहीं कर पाते, इसी प्रथा का अनुसरण कर विधवा-विवाह करने लगे तथा जाति-बाहर होने लगे। क्रमशः इनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि उसने एक पृथक् समुदाय का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार नातरायत नामधारी राजपूतों के एक नवीन कुल की सृष्टि हो गयी और उन लोगों के विवाह-सम्बन्ध सब उन्हीं के समूह के भीतर होने लगे।

नाता-प्रणाली से विवाह करने की रीति यह है कि नाता करने की आकांक्षिणी स्त्री अपने श्वसुर-गृह को छोड़कर पिता के घर चली जाती है। उसके साथ नाता करनेवाले व्यक्ति को वहीं जाना पड़ता है और वह नाता की रीति के अनुसार कुछ रुपये, जिनकी संख्या एक सौ से अधिक नहीं होती, स्त्री के पिता को देकर स्त्री को अपने वस्त्राभूषणों को पहनाकर अपने घर ले जाता है।

स्त्री के मृतक पति के सम्बन्धियों को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। उसकी सम्पत्ति तथा उससे उत्पन्न सन्तानें उन लोगों को सौंप दी जाती हैं।

नाता जानेवाली वधू की विदाई शनिवार अथवा सोमवार की रात को होती थी, किन्तु अब रविवार की भी होने लगी है। जालोर में यह विदाई दिन को भी होती है। नाता विधवा स्त्री की इच्छा से होता है। जिसकी नाता करने की इच्छा नहीं होती, वह अपने पति के नाम पर जीवन व्यतीत कर देती है। कोई बलात् नाता नहीं करा सकता।

विधवा का उसके पितृकुल से नाता नहीं होता। नाता करनेवाला व्यक्ति तथा उससे उत्पन्न होनेवाली सन्तान, सब जातिच्युत मानी जाती है। कहावत है कि 'नातरायत की तीजी पीढ़ी गढ़ चढ़े हैं, अर्थात् नातरायत की तीसरी पीढ़ी का विवाह जागीरदार अथवा राजा के घर भी हो सकता है, परन्तु यह कहावत,कहावत-मात्र है—इस प्रकार की किसी घटना का पता नहीं लगता।

नातरायत राजपूतों के समुदाय में विवाहिता स्त्री और नाते आयी हुई स्त्री में कोई अन्तर नहीं समझा जाता। दोनों की मान-प्रतिष्ठा बराबर है। अब समय बदल गया है। नाते भी विवाह की तरह होने लगे हैं और नातरायतों के साथ हुक्का-पानी के प्रतिबंध में भी शिथिलता आती जा रही है।

राठौड़

मारवाड़ की सुप्रसिद्ध राजपूत आबादी में विख्यात राठौड़-वंशीय राजपूतों की गणना सर्वप्रधान है। राठौड़ वंश का प्राचीन निवास-स्थल कन्नौज था। सन् १२११ ईस्वी में राव सियाजी ने जोधपुर के राज्यसिंहासन की नींव डाली थी। उसी समय यह मारवाड़ में आये थे।

वर्तमान जोधपुर-नरेश राव सियाजी के वंशज हैं। बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम, ईडर, भभुला, अमजेहरा, सीतामऊ तथा सैलाने के अधिपति जोधपुर राव-वंश की ही भायप में हैं।

राठौड़ों की एक सौ से अधिक शाखाएँ अथवा खांपें हैं। ये जोधपुर के अनेक परगनों में बसे हुए हैं। प्रत्येक खांप में अनेक जागीरदार भोमियां तथा जमीनदार वर्तमान हैं। इस वंश के समस्त जागीरदारों की संख्या ८९४ है, जिनम १२२ ताजीमी सरदार हैं। यह सरदार चौंतीस शाखाओं में विभक्त हैं और उनें शाखाओं में निम्नलिखित शाखाएँ प्रमुख हैं:

जोधा	चांपावत	उदावत
मियोत	कूंपावत	मेडतिया
करनोत	तजैावत	करमसोत
कांटावत		रूपावत

राठौड़ सरदारों के संस्थानों की उत्पत्ति महाराज यशवन्तसिंहजी के शासन-काल में हुई थी। सरदारों के वंशजों की नवीन शाखाओं की सेवाओं के उपलक्ष में उनके गुजारे के लिए संस्थान इनको प्रदान किये गये थे।

राठौड़ वंश की कुलदेवी का नाम नागनोचिया है। देवी का नाम पूर्वकाल में राजेश्वरी अथवा राठेश्वरी देवी था, किन्तु राव धूहडजी ने परगने पचभद्रे के नागान ग्राम में देवीजी का एक मन्दिर निर्माण कराया और उसी समय से यह देवी नागनोचिया के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। जौधपुर के दुर्ग में जनानी ड्योढ़ी के निकट

भी एक मन्दिर है। प्रत्येक राठौड़ ग्राम में एक थान इन देवी के नाम पर बना हुआ है। यह थान प्रायः नीम-वृक्ष की छाया में अवस्थित है। अतः राठौड़ नीम के वृक्ष को पवित्र मानते हैं। राठौड़ शिव और विष्णु की भी उपासना करते है। यह हनुमानजी, गंगाजी तथा रामदेवजी की भी पूजा करते हैं। मेडता ग्राम में चतुर्भुजी का मन्दिर है। मेडतिया राजपूतों में उस मन्दिर के प्रति बड़ी भक्ति है और वह इस भक्ति के प्रमाण-स्वरूप अपनी पगड़ी के ऊपर सरपेच में एक रेशमी रंगीन झब्ब लगाते हैं, जो पवित्रा कहलाता है।

जोधा, उदावत और कूम्पावत राठौड़ विष्णु के उपासक हैं तथा वल्लभ-सम्प्रदायी गोस्वामियों के भक्त हैं। इनका देवस्थान नाथद्वारा है।

राठौड़ वंश की कीर्ति तो इतिहास के पृष्ठों का विषय है, परन्तु इतना कहना अनुपयुक्त न होगा कि कर्नल टाड मुगल बादशाहों की अधिकांश विजयपूर्ण सफलताओं का श्रेय रोठों अर्थात् राठौड़ों की तलवारों को देते हैं।

एक बार लार्ड फ्रेडरिक राबर्ट्स ने जोधपुर के एक नव संगठित रिसाले का निरीक्षण करते समय अपनी वक्तृता में राठौड़ों के गुणावली का वर्णन किया था।

कर्नल स्पिनर की जीवनी में कहा गया है कि जैसा उत्कृष्ट शौर्य उद्भट अटूट स्वामिभक्ति का निर्भीक आत्म-समर्पण और बलिदान का पूर्ण चित्र राजपूतों के कारनामों से व्यक्त है, वैसी महानता संसार की कोई सेवा किसी काल में न पा सकी थी।

भारत के इतिहास से यह भली भाँति प्रमाणित है कि मारवाड़ केराजाओं ने अपने वैधानिक सम्राटों की सेवाओं मे सदा अटूट स्वामिभक्ति और उत्कृष्ट शूर-वीरता प्रदर्शित की है।

राठौड़ महान् राजपूत जाति का एक महान् वंश है। राठौड़ों की विरुदावली के निम्नलिखित पुराने दोहे प्रसिद्ध हैं :—

(१) बलहट बंका देवड़ा करतन बंका गौड़।
　　हाडा बंका गाढ़ में रण बंका राठौड़॥

(२) गरुड़ खगां लंका गढ़ा मेरु पहाड़ा मोड़।
　　रूंखां में चन्दन भलो राजकुली राठौड़॥

भाटी

राजपूतों में राठौड़ वंश के पश्चात् भाटी वंश का स्थान है। भाटी अपने वँश की उत्पत्ति भगवान कृष्ण तथा चन्द्रवंशी राजपूतों के पूर्व पुरुष यदु से बतलाते हैं।

कर्नल टाड ने भाटी राजपूतों को भारतवर्ष के समस्त राजपूत वंशों की अपेक्षा सबसे अधिक विख्यात माना है।

भाटी राजपूत

राठोड़ राजपूत
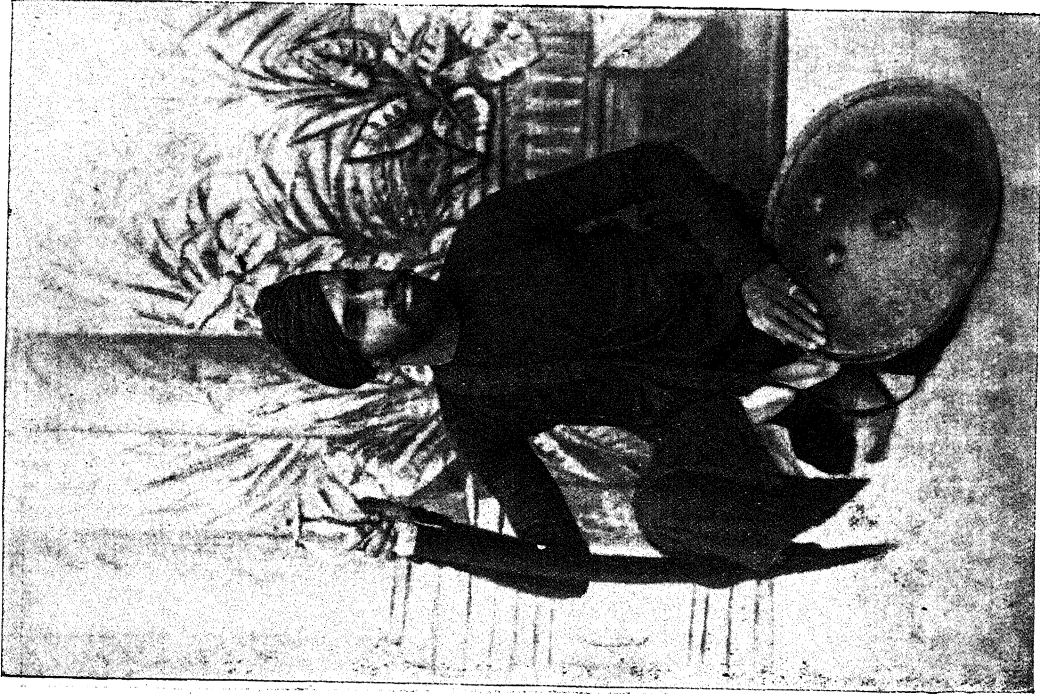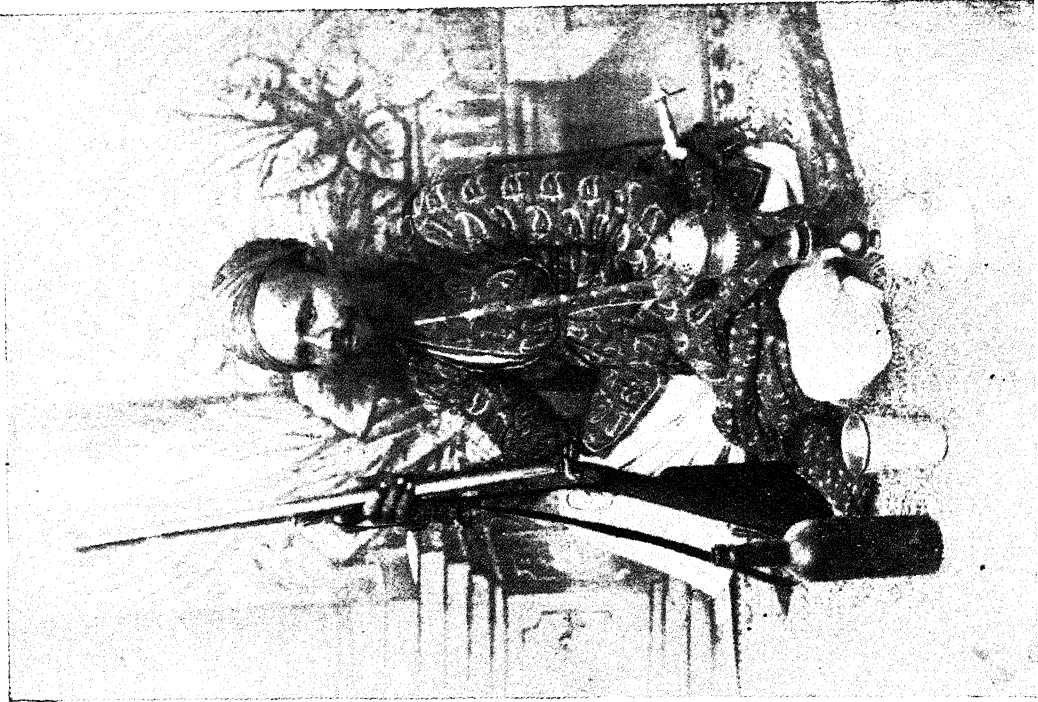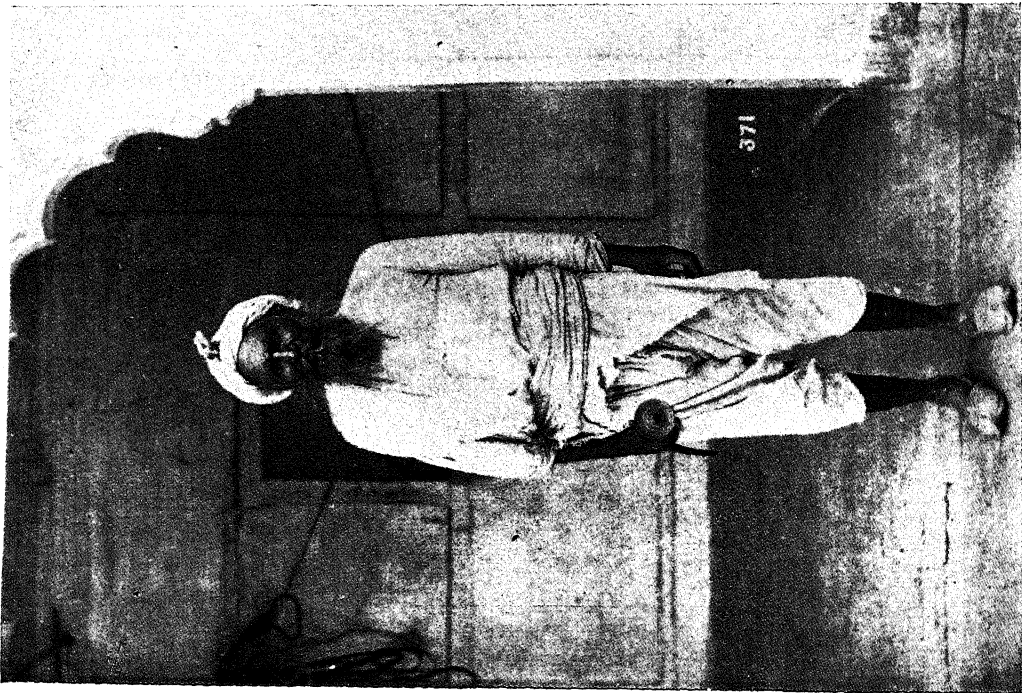
चौहान राजपूत

कछवाहा राजपूत

प्राचीन भारतवर्ष के महायुद्ध महाभारत में कौरव और पांडव-वंशों का विनाश हो जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण के उत्तराधिकारी मध्य एशिया को चले गये और वहाँ उन्होंने गज़नी आदि प्रदेशों की स्थापना की । जब उन्हें वे सब स्थान छोड़ने पड़े, तब वे लौटकर पंजाब आये और दीर्घकाल तक पंजाब प्रांत के भटनेर नगर में बसे रहे। यही कारण है कि इनका नाम भाटी प्रसिद्ध हो गया, परन्तु कर्नल वाल्टर तथा कर्नल हंटर का मत है कि किसी काल में इस वंश में भाटी नाम का एक महान् योद्धा हुआ था और उसी के नाम पर इस वंश का नाम भाटी प्रसिद्ध हो गया । यह लोग भटनेर से दिरावल और दिरावल से जैसलमेर गये थे और वहीं अवस्थित हो गये । इस समय जैसलमेर ही भाटियों का केन्द्र-स्थान है। इस सम्बन्ध का एक दोहा यों सुनने में आता है.—

मथुरा काशी प्रागवड गजनी अरु भटनेर ।
दिगम दिरावल लोद्रवो नम्मो जैसलमेर ॥

कर्नल टाड का कथन है कि भाटी राठौड़ों के समान दीर्घकाय और पुष्ट शरीर के नहीं होते और न कछवाहों के समान आकृत ही होते हैं; परन्तु उनकी रूपरेखा आकर्षक, सुडौल और वर्ण स्वच्छ होता है।

अन्य वंशों के राजपूत सगपन की प्रथा सम्पन्न हो जाने के पश्चात् उस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकते, परन्तु भाटी इस प्रकार वाध्य नहीं—वे उसे तोड़ सकते हैं ।

भाटियों की दो शाखाएँ जैसा और रावलोट मारवाड़ में आबाद हैं । इस वंश का वैवाहिक सम्बन्ध राजाओं और जागीरदारों के साथ अधिक होने के कारण इनके पास अनेक जागीरें वर्तमान हैं । इस कारण इनको बाई मंगा कहकर लोग इनका उपहास करते हैं ।

चौहान

कर्नल टाड के मतानुसार राजपूतों के समस्त वंशों में चौहान वीरता में सर्वश्रेष्ठ थे । किसी समय यह अत्यन्त शक्तिशाली थे और तंवर वंश के पश्चात् दिल्ली पर इन्हीं का शासन रहा। प्राचीन सिक्कों, ताम्रपत्रों तथा अन्यान्य ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि किसी समय मारवाड़ के भी अनेक स्थानों पर इनका अधिकार रह चुका है और आज भी राजपरिवारों की सेवाओं के उपलक्ष में प्राप्त बहुत-सा भू-भाग इनके पास है ।

चौहान उन चार अग्निकुल वंशीय राजपूतों में से एक हैं, जिनकी उत्पत्ति गत परिच्छेद में आबू पर्वत पर किये गये यज्ञ के अग्निकुंड से लिखी जा चुकी है। हिन्दुओं की अनेक छोटी-छोटी जातियाँ चौहानों से ही अपना विकास बतलाती हैं ।

चौहान-वंश से जिन खांपों का विकास हुआ है, उनमें प्रधान और महत्वपूर्ण देवडा, हाडा, सोनगरा, निर्वान पुर्विया और सांचोरा हैं ।

सन् १३८३ ईस्वी में फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में चौहानवंशीय राजपूतों की एक बड़ी संख्या मुसलमान हो गयी थी। उन्हीं मुसलमान चौहानों का प्रमुख दल कायमखानी नाम से प्रसिद्ध है। ये सहस्त्रों की संख्या में मारवाड़ में बसे हुए हैं। चौहान-वंश की कुलदेवी शाकम्भरी माता हैं।

चौहानवंशीय राजपूतों में गोगा का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये गोगा के नाम का एक धागा बाँधा करते हैं। इनका विश्वास है कि यह धागा सांप के काटे व्यक्ति को स्वस्थ करने में समर्थ है। भाद्र सुदी नवमी का दिन गोगानवमी के नाम से माना जाता है।

मुसलमान गोगाजी को गोगापीर के नाम से पूजते हैं। सांचोर तथा अन्य पश्चिमी प्रान्तों के निवासी चौहान उत्तराधिकार में मृतक की सम्पत्ति या तो उसके पुत्रों में अथवा उसकी विधवा स्त्रियों में बराबर-बराबर बांट देते हैं।

चौहान-वंश ने ही नाता-प्रथा का चलन किया और नातरायत नाम के एक नवीन समुदाय की नींव डाली।

जालोर का राजा कानडदेव ही वह प्रथम चौहान राजा था, जिसने अपनी विधवा पुत्री का पुर्नविवाह चितौड़ के राना के साथ करके राजपूतों में पुर्नविवाह नाता-प्रथा को प्रश्रय देने का साहस किया था।

कछवाहा

कछवाहा-वंशीय राजपूत अपने वंश की उत्पत्ति राम के द्वितीय पुत्र कुश से मानते हैं। यह लोग अयोध्या से चलकर नरवर गये, नरवर से रोहतास और रोहतास से आमेर को अपना वासस्थान बनाया। आमेर में इनमें से अनेक शाखाएँ निकलीं। इन शाखाओं में शेखावत, नरूका और राजावत मुख्य हैं।

कछवाहों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। कछवाहे प्रधानत: वैष्णव धर्म के अनुयायी हैं, इनमें शैवों और शाक्तों की संख्या अत्यन्त अल्प है। इनकी कुलदेवी का नाम जमुवाय माता है। कछवाहों में एक भी नातरायत नहीं हुआ। इन लोगों की स्त्रियाँ हाथों और कानों में स्वर्ण के अतिरिक्त चांदी इत्यादि किसी दूसरी धातु का गहना नहीं पहनतीं।

शेखावत शेखाजी के वंशज है। कहा जाता है कि शेख बुरहान नामक एक मुसलमान फकीर के आशीर्वाद से शेखाजी का जन्म हुआ था। शेखाजी के पिता का नाम मोकलजी था। शेखाजी से चलनेवाली खाँप शेखावत कहलायी। शेखावत अपनी सन्तानों को छ: वर्ष की अवस्था तक नीले रंग की टोपी ओर पाजामा पहनाते हैं और शूकर का मांस नहीं खाते।

नरूका अलवर का शासक वंश है और राजावत जयपुर राजवंश के निकटतम बन्धु हैं।

सीसोदिया

इतिहास-प्रसिद्ध गहलोत राजपूतों की एक शाखा सीसोदिया है। उदयपुर के महाराणा साहब सीसोदिया-वंशोद्भव हैं। सीसोदिया अपने को अयोध्यापति श्रीरामचंद्र के पुत्र लव के सन्तति-क्रम में मानते हैं।

इस वंश के पूर्व पुरुषों में बापा रावल नाम के एक महायोद्धा हो गये हैं। सीसोदियों का विश्वास है कि बापा रावल को एकलिंग का राज्य प्राप्त हुआ था। इसलिए वे अपने को महादेव की कृपा से चितौड़ एकलिंगजी का दीवान मानते हैं।

बापा के समय तक यह वंश अपने एक पूर्वज गुहिल के नाम पर गहलोत कहलाता था। बापा के सिसोदा ग्राम को अपना आवासस्थान बना लेने के कारण सिसोदिया कहलाने लगे।

कुछ समय पूर्व तक मद्यपान इन लोगों में निषिद्ध माना जाता था। मारवाड़ में सीसोदिया मेवाड़ से आये हुए हैं और गोडवार जिले में इनकी अनेक जागीरें हैं।

सीसोदियों की प्रमुख खापों के नाम हाडा, चंद्रावत, मुक्तार और राणावत हैं तथा जो स्थान राठौड़ों में जोधावतों को और कछवाहों में राजावतों को प्राप्त है, वही स्थान सीसोदियों में राणावतों को प्राप्त है।

पंवार

आबू पर्वत के यज्ञकुंड से उत्पन्न चार अग्निकुलों में से ही पंवार भी एक हैं। पूर्वकाल में यह वंश अत्यन्त शक्तिशाली था। प्राचीन भारत के सुविख्यात राजा विक्रम और राजा भोज, जिनके नाम आज भी प्रत्येक हिन्दू के कंठाग्र बने हुए है इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने एक सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना कर उसके ऐश्वर्य का उपभोग किया था।

मारवाड़ में पंवार वंश का आगमन आबू पर्वत से हुआ था। किसी समय वहाँ बालमेर में धरनी वाराह नाम का एक राजा हुआ था। उस राजा के नौ भाई थे। धरनी वाराह ने मारवाड़ को नौ भागों में बांटकर एक-एक भाग प्रत्येक भाई को सौंप दिया था और कोट किराडू अपने लिए रख लिया था। यह विभाजन मारवाड़ में नौकोट मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध है और उसकी विवृति निम्नलिखित एक पद्य में बतलाई गयी है :

मंडोवर सांवत हुओ. अजमेर सिंध सू।
गढ़ पूंगल गजमल्ल हुओ लुद्रवे भान भू॥
आल पाल अर्बुद्ध भोजराजा जालन्धर।
जोगराज घर घाट हुओ हंसू पारक्कर॥

नव कोट किराड संजुगत थिर पंवारां था पिया।
धरणीवराह धर भाइयाँ कोट बांट जुअ-जुअ किया ।।

उक्त पद्य का अभिप्राय यह है कि धरनी वाराह ने पंवारों की सारी पृथ्वी नौ भागों में विभाजित की और कोट किराडू अपने पास रखकर अवशिष्ठ अपने नौ भाइयों को दे दी। मंडोर सावन्त को, अजमेर सिंधु को, पुंगलगढ़ गजमल्ल को और लुद्रेवा भान को मिला। आलपाल को आबू और भोजराज को जालंधर, अर्थात् जालोर तथा जोगराग को धात और उमरकोट और हंसराज को पारकर प्राप्त हुआ।

इस विभाजन से पंवारों के राज्य की शक्ति बिखर गयी और वे निर्बल हो गये। फलत: क्रमश: भाटी, चौहान, राठौड़ और पडिहार-शक्तियों ने एक-एक कर के इन सबको जीत लिया। पंवारों की कुछ शाखाएँ सोढा, सांखला और भयाल इत्यादि आज भी मारवाड़ में बसी हुई हैं। उनके पास अब जो जमीन है, वह भूमिचर के रूप में है। उनकी जीविका-निर्वाह का साधन किसानी है। अब पंवारों में बड़ा भू-स्वामी एक भी नहीं है।

पंवारों में विधवाओं का नाता भी प्रचलित है और कहीं-कहीं यह लोग मृतक को उलटा रखकर शव-दाह करते हैं।

पंवारों के पूर्व-वैभव का परिचायक एक सोरठा प्रसिद्ध है:

पृथ्वी बड़ा पंवार पृथ्वी पँवारांतणी
एक उजेणी धार दूजो आबू बैठणू

सोलंखी

सोलंखी भी अग्निवंशियों में से अन्यतम हैं। इनका दूसरा नाम चालुक्य है। कर्नल टाड के मतानुसार राठौड़ों के कन्नौज पर अधिकार करने के पूर्व सोलंखी गंगा के तट पर बसे हुए सोरों नामक स्थान के शासक थे।

सोलंखी-वंश ने दीर्घकाल तक टोंक, टोडा, गुजरात और दक्खिन पर शासन किया है। गुजरात के सोलंखी राजाओं में सिद्धराज जयसिंह और दक्खिन में विक्रमांकदेव विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। गुजरात पर जब इनका शासन था, इनके उस समय के राजा का नाम करण वघेला था। अलाउद्दीन खिजली से हारकर इनको गुजरात छोड़ना पड़ा और ये सिरोही तथा मारवाड़ की पहाड़ियों के बीच की जमीन पर जा बसे। वहाँ से क्रमश: मारवाड़ में फैले हैं। अब जसवन्तपुर तथा बाली के परगनों में इनकी खाँप हलावत, मोचाला और बघेला आदि हैं। इनमें नाता भी होता है।

यह कृष्ण सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। इन लोगों में मद्यपान का चलन बहुत कम है। सांचोर में कुछ ऐसे सोलंखी राजपूत आबाद हैं, जो रीवां-राज्य-परिवार से-सम्बन्धित हैं।

पडिहार

पडिहार भी अग्निवंशीय हैं। इनकी शक्ति का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि किसी समय यह काबुल के शासक थे। काबुल छोड़ने पर यह अयोध्या चले गये थे और वहाँ से मारवाड़ में आये। अब इनकी संख्या बहुत अल्प रह गयी है।

पडिहार-वंश विष्णु का उपासक है। जोधपुर के मन्दिर में विराजमान चामुंडा माता इनकी कुलदेवी हैं। यह बड़, पीपल और रोहिड़ा वृक्षों को पवित्र मानते हैं और इनमें से किसी को कभी नहीं काटते। पडिहारों के पूर्वजों में नरहरराव का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। मंडोर में पडिहारों का राज था, वहीं नरहरराव की गुफा है। और पडिहार-वंश के लोग उसकी पूजा करते हैं—वहाँ जात्रा करते हैं। कहा जाता है कि पुष्कर का तालाब नरहरराव ने ही खुदवाया था। इन लोगों के विवाह और मृतक कर्म की रीतियाँ वही हैं, जो राठौड़ तथा भाटी आदि राजपूतों में प्रचलित हैं।

इनकी सबसे विख्यात खाँप का नाम इंदा है और वह जोधपुर के पश्चिम भाग में बसी हुई है। यह स्थान इंदावाटी के नाम से प्रसिद्ध है।

इंदा राजपूतों की वीरता की एक कहानी प्रसिद्ध है। कहानी इस प्रकार है—

मंडोर के दुर्ग पर पडिहारों का आधिपत्य था। सम्वत १३५० (सन् १२९३ ईस्वी) के लगभग जलालउद्दीन खिलजी ने वह दुर्ग उनसे छीन लिया था। मंडोर के मुसलमान हाकिम हिन्दुओं पर अत्याचार करते थे। सन् १३९५ ईस्वी में प्रत्याक्रमण कर इंदावंशीय राजा उगमसी ने यह किला जलालउद्दीन खिलजी से जीतकर अपना अधिकार जमा लिया और राठौड़ राजा राव चूंडाजी के साथ अपनी कन्या का विवाहकर दहेज में मंडोर का किला दे दिया। इस घटना का स्मरण दिलानेवाला एक सोरठा है—

चूंडा चंवरी चार, दीवी मंडोवर दायजे।
इंदातणो उपगार कमधज कदे न बीसरे॥

अर्थात्, इंदा-नरेश ने अपनी कन्या के विवाह में दहेज में राव चूंडाजी को मंडोर प्रदान किया। राठौड़ उनका यह उपकार कभी न भूलेंगे।

इंदा राजपूतों में से कुछ लोग निम्न श्रेणी की जाति में भी मिल गये हैं जो लखनिया ढेड कहलाते हैं। पर यह लोग अपने को लखाजी की सन्तति बतलाते हैं।

इंदा राजपूत शूकर का माँस नहीं खाते। इस वंश में कुछ अन्ध विश्वास के संस्कार भी चले आते हैं। इनका एक विश्वास यह भी है कि उनके वंश के किसी व्यक्ति को बिजली नहीं मार सकती। इसका कारण वे अपने पूर्वज खाखूजी का वरदान मानते हैं। कहा जाता है कि खाखूजी एक प्रसिद्ध पुरुष थे। उनका दूसरा विश्वास है कि उनके आवासस्थान इंदावाटी में कभी कोई संक्रामक रोग नहीं फैल

सकता। इसे वे चामुंडा माता का आशीर्वाद मानते हैं। रामदेव के मेले के अवसर पर किसी संक्रामक रोग के फैलने की आशंका होते ही मेले के यात्री तुरत इंदावाटी चले जाते हैं।

तंवर

तंवर अपने को पांडव-राजा युधिष्ठिर का वंशज मानते हैं। दिल्ली का राजसिंहासन दीर्घकाल तक तंवर-वंश के अधिकार में रहा है। कहावत है—

जब-तब दिल्ली तंवरां की।

तंवर-वंश का विकास राजा अनंगपाल से होना माना जाता है। राजा अनंगपाल एक समय दिल्ली के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित थे। उन्होंने दिल्ली में एक लौह-स्तम्भ निर्माण कराया। इस स्तम्भ के सम्बन्ध में डाक्टर हंटर ने लिखा है कि स्तम्भ-निर्माण के पश्चात् एक ब्राह्मण ने राजा से कहा कि यह स्तम्भ पृथ्वी में इतना गहरा चला गया है कि पृथ्वीमंडल को धारण करनेवाले सर्पराज वासुकि के मस्तक में धंस गया है। अत: जबतक यह स्तम्भ अचल रहेगा, तबतक इस राज्य को कोई नहीं हिला सकता। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ। उसने ब्राह्मण की बात की सत्यता की जांच करने के लिए स्तम्भ उखाड़े जाने की आज्ञा दे दी। स्तम्भ उखाड़ा गया और उसके नीचे की नोक रक्त में सनी पायी गयी। राजा को ब्राह्मण की बात पर विश्वास हो गया और उसने स्तम्भ पुन: पूर्ववत् गाड़े जाने की आज्ञा दी। स्तम्भ फिर गाड़ा गया, परन्तु राजा के अविश्वास के दंडस्वरूप स्तम्भ फिर उतना दृढ़ न गड़ा जितना दृढ़ वह पहले गड़ चुका था। इससे सम्बन्धित एक कहावत भी प्रसिद्ध है: कीली तो ढीली भई तंवर भये मतहीन।

अन्त में दिल्ली का सिंहासन चौहानों के अधिकार में चला गया। तंवर दिल्ली छोड़कर जेलू पाटन चले गये। यह जेलू पाटन इस समय जयपुर राज्य के अन्तर्गत है और वह तोंरावाटी के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ से ये लोग मारवाड़ में आये। इनमें रामदेवजी तंवर नामक एक व्यक्ति अपनी अद्भुत शक्ति के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। मुसलमान उनको रामशाहपीर कहकर मानते हैं। वहाँ उनकी समाधि बनी हुई है और प्रतिवर्ष उस पर मेला लगता है। परन्तु इस मेले में अधिकतर छोटी जाति के लोग ही भाग लेते हैं। कहावत है कि रामदेवजी को मिले सो ढेड-ही-ढेड मिले।

तंवर राजपूतों की रीतियाँ भाटी आदि राजपूतों की रीतियों के समान ही हैं। इनकी एक बड़ी संख्या सन् ११९३ ईस्वी में शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मुसलमान बना डाली गयी थी। मारवाड़ में तंवरों की कोई बड़ी जागीर नहीं है। यह कृषि अथवा नौकरी से अब अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। तंवर संस्कृत के तोमर शब्द का अपभ्रंश है।
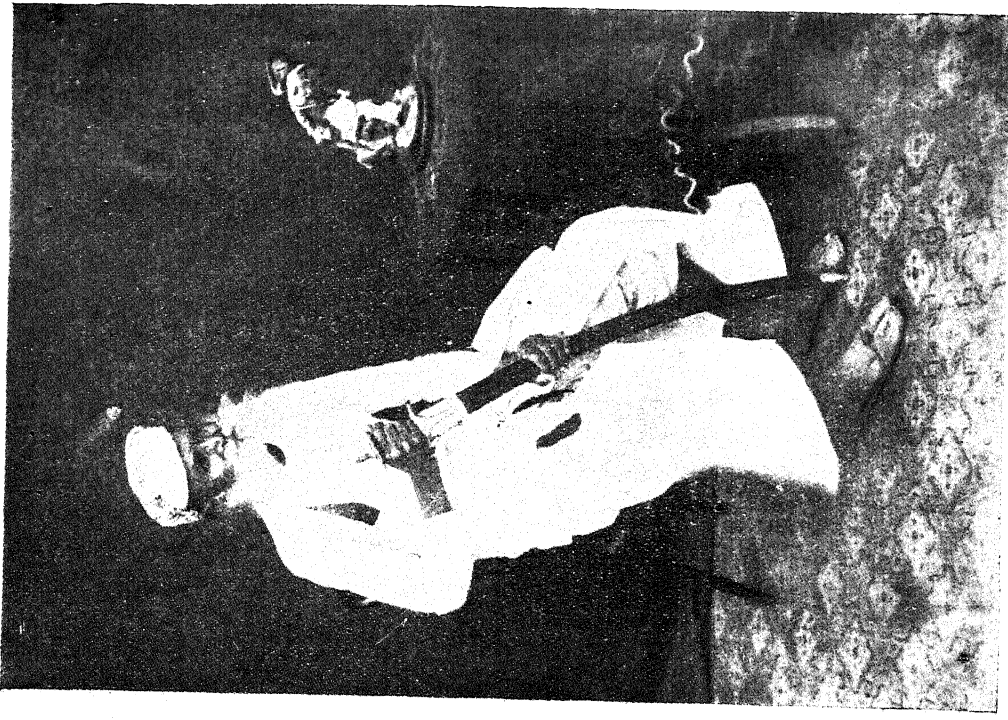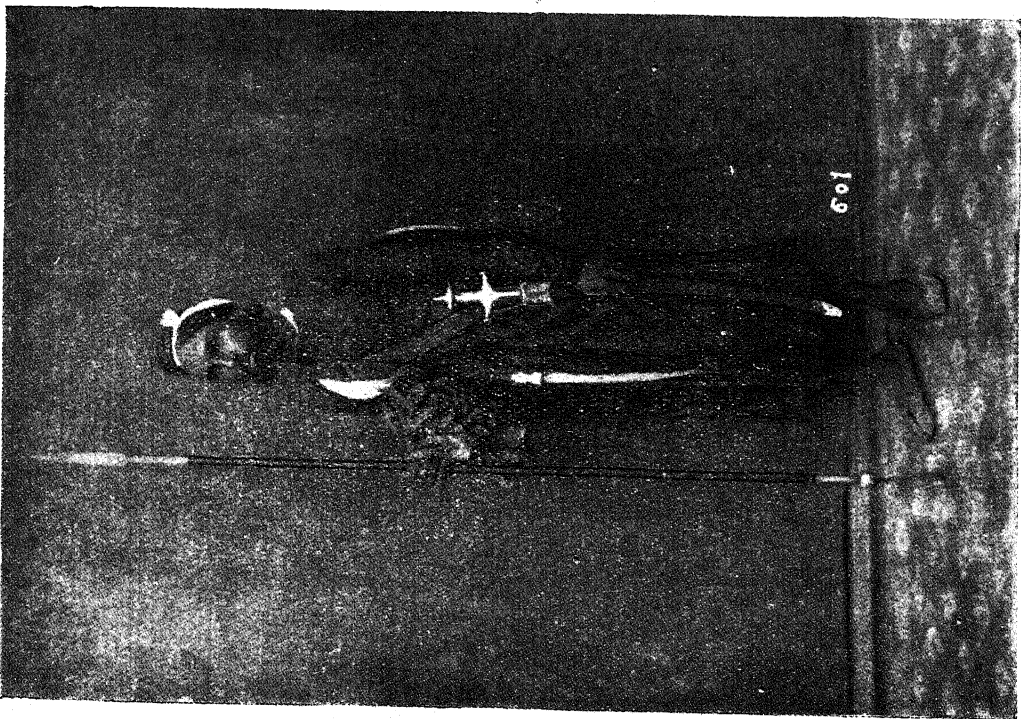
सोलंकी राजपूत

पड़िहार राजपूत
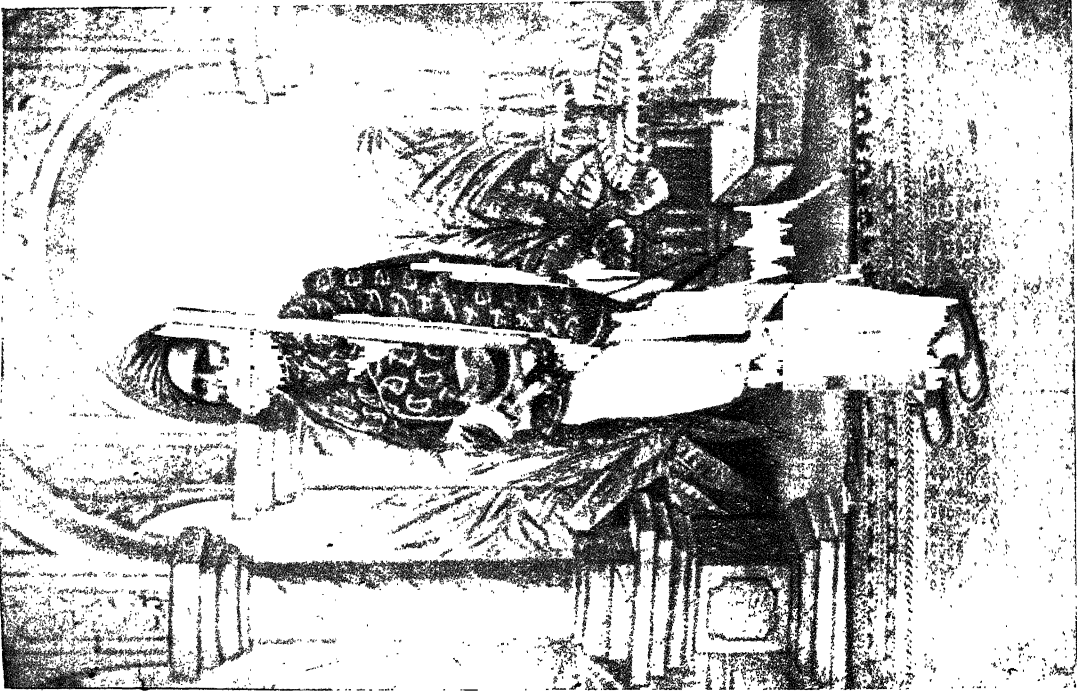
पँवार राजपूत

शराब और अफीम पान

झाला

राजपूतों की एक खाँप का नाम झाला है। झाला राजपूतों का केन्द्र-स्थान झालावाड़ है। मारवाड़ में इस वंश के लोगों की संख्या अत्यन्त अल्प है। झाला मकवाना राजपूतों की एक शाखा है।

हरपाल के नेतृत्व में यह गुजरात जाकर बसे थे। पहले इनका नाम झाला नहीं था। इनका यह नाम गुजरात में जाने पर पड़ा था। गुजरात से यह लोग मारवाड़, मेवाड़ तथा हाड़ोती में आये।

पहले झालावाड़ कोई पृथक राज्य नहीं था। झालावाड़ कोटा राज्य के अन्तर्गत एक छोटा-सा भाग था। कोटा राज्य में उस समय जालिमसिंह नामक शक्ति-सम्पन्न एक मंत्री थे।

सन् १८१७ ई. में जालिमसिंह ने पिंडारियों को दबाने में अंग्रेजों की यथेष्ट सहायता की थी। इस सेवा के उपलक्ष में सन् १८३४ ई. में अंग्रेजों ने झालावाड़ को कोटा राज्य से पृथक कर एक स्वतंत्र रियासत का रूप दे दिया। इस प्रकार झालावाड़ की स्वतन्त्र रियासत का जन्म हुआ।

मारवाड़ में झाला राजपूतों के जीवन-निर्वाह का भी साधन एकमात्र कृषि ही है। पर इनमें से किसी के पास थोड़ी-सी भी जमीन नहीं है।

गूजर

मारवाड़ की सैनिक जातियों में राजपूतों तथा जाटों के पश्चात् गूजरों का स्थान है।

किसी समय गूजर अत्यन्त शक्तिशाली थे और गुजरात प्रान्त के अधिपति थे, किन्तु दीर्घकाल से इनका व्यवसाय पशु-पालन और उनका क्रय-विक्रय चला आ रहा है, अतः इनकी गणना सैनिक जातियों में नहीं की जाती।

गूजर संस्कृत भाषा के गुर्जर शब्द का अपभ्रंश है। भारतवर्ष में गूजरों का इतिहास पंजाब से आरम्भ होता है, कारण कि पहले यह लोग वहीं पहुँचे थे। जनरल कनिंधम के मतानुसार गुजरांवाला, गुजरात, गूजरखां इत्यादि नगरों के नामों में गूजर शब्द का संयोग गूजरां के कारण ही हुआ है।

गूजर पंजाब से दिल्ली आये, दिल्ली से अजमेर तथा सौराष्ट्र पहुँचे और वहाँ से वल्लभीपुर के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र पर अधिकार स्थापित किया। उस प्रान्त का नाम बदलकर गुजरात अथवा गुर्जर-खंड गूजर-वंश ने ही किया।

भाटँ गूजरों की उत्पत्ति राजपूतों से ही मानते हैं, कारण् कि एक ओर तंवर, चौहान तथा चन्देल इत्यादि राजपूतों के अनेक गोत्र गूजरों में विद्यमान हैं तथा दूसरी

ओर ब्राह्मणों में गूजर–गौड़, राजपूतों में बड़–गूजर और पठानों में गूजर पठान या गूजरों के गोत्र देश की अन्य जातियों में भी पाये जाते हैं। अतः गूजरों की उत्पत्ति राजपूतों से मान लेना निराधार नहीं है।

गूजर अजमेर से मारवाड़ आये और अब पर्वतसर तथा मारवाड़ के अनेक पूर्वीय परगनों में पर्याप्त संख्या में आबाद हैं और पशु-पालन का अपना पुराना धन्धा कर रहे हैं। यह अपने घर बस्ती से दूर बनाते हैं, कारण कि एकान्त स्थान में पशु-पालन में सुविधा रहती है। कहावत है कि गूजर जहाँ ऊजड़।

पूर्वीय राजपूताने के गूजर छान-छप्पर के काम में विशेष चतुर होते हैं। राजपूत इस कार्य के लिए गूजर स्त्रियों को अधिक दक्ष मानते हैं। गूजर स्त्रियों को भी अपनी इस कार्य-पटुता का अभिमान है।

गूजरे डेरीमाता, देवजी तथा भैरोजी की उपासना करते हैं और अपने देवताओं के सम्मान में गले में फूल पहनते हैं। यह मांस तथा मदिरा दोनों के सेवन के अभ्यस्त होते हैं।

लगभग ६५० वर्ष पुरानी बात है, जब मेवाड़ में देवजी नाम के एक महात्मा हुए थे। उन्होंने मेवाड़ में अनेक करामातें दिखायी थीं। गूजर उनके बड़े भक्त होते हैं। वहाँ उनके नाम के अनेक मन्दिर बने हुए हैं, जिनके पुजारी भी गूजर हैं।

गूजर मृतक के शव की हजामत बनाकर उसका दाह-कर्म करते हैं और मृतक का श्राद्ध दीपावली पर करने की उनकी परम्परा है।

जाट

राजस्थान में जाटों की जनसंख्या राजपूतों से भी अधिक है। जोधपुर, नागौर, मेडता तथा पर्वतसर आदि भागों में इनकी आबादी की प्रधानता है।

जाट अपने वंश की उत्पत्ति शिवजी की जटा से मानते हैं। उनका कथन है कि उनके वंश का नाम जाट होने का कारण यही है। मिस्टर डी. सी. इवटसन जाटों को राजपूतों की ही शाखा मानते हैं। उनके मत से जाट और राजपूत दोनों का उत्पत्ति-केन्द्र एक ही है और जो भेद उन दोनों में दिखायी पड़ता है, वह केवल सामाजिक है। कर्नल टाड ने भी जाटों को राजपूतों के ही एक महान् वंश के नाम से सम्बोधित किया है। जनरल कनिंघम राजपूतों को तो आर्य-सन्तान मानते हैं, परन्तु जाटों को वह उत्तर-पश्चिम से भारत में प्रवेश करनेवाली सीथियन जाति की सन्तान होने का अनुमान लगाते हैं।

मारवाड़ के जाटों में तीन भेद हैं। प्रथम तो वे लोग हैं जो अपने को असली बताया करते हैं। उनका कथन है कि उन्होंने अपने रक्त की शुद्धता को बिगड़ने नहीं दिया है। फिर इनकी दो शाखाएँ हैं। एक का नाम गोदारा है और दूसरी का

तँवर राजपूत

झाला राजपूत

गूजर
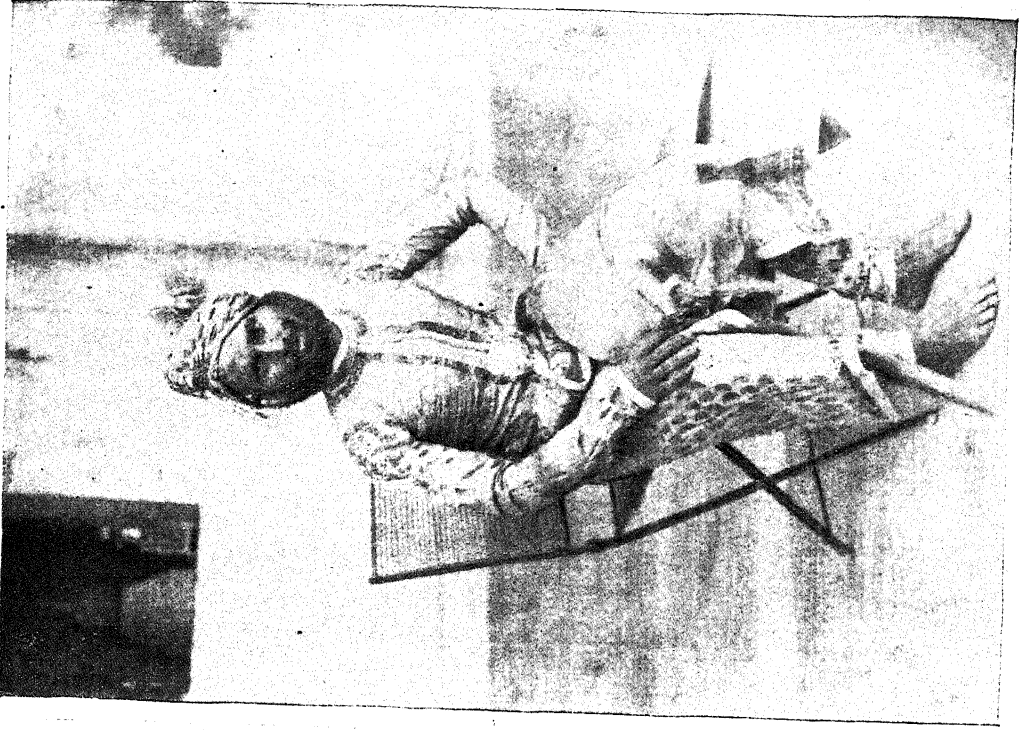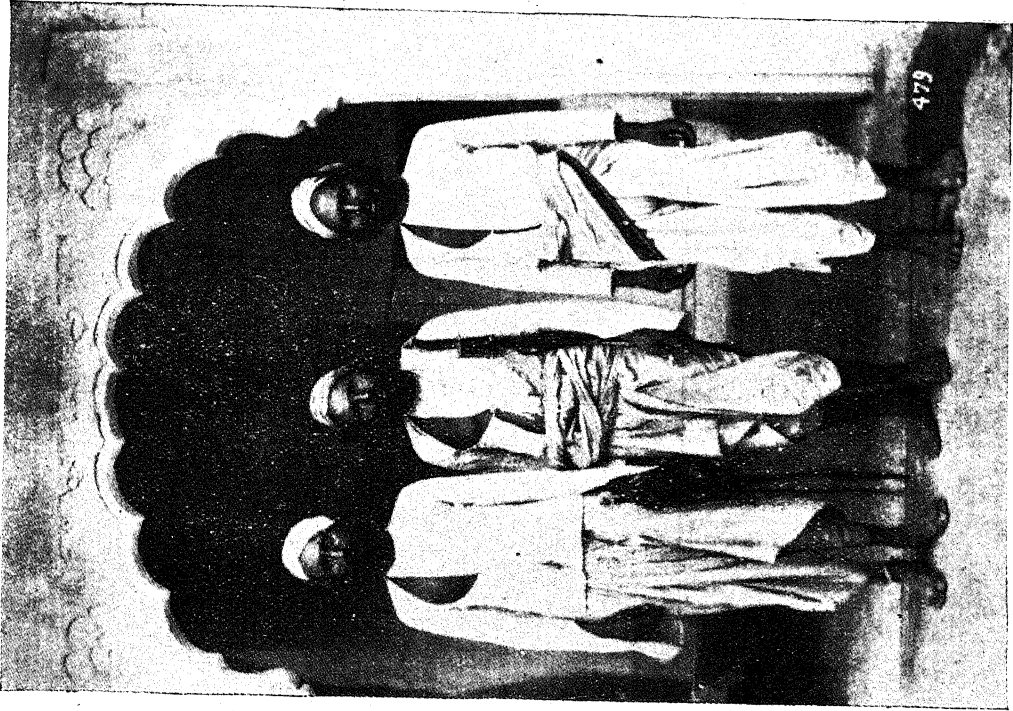
देसी मुसलमान
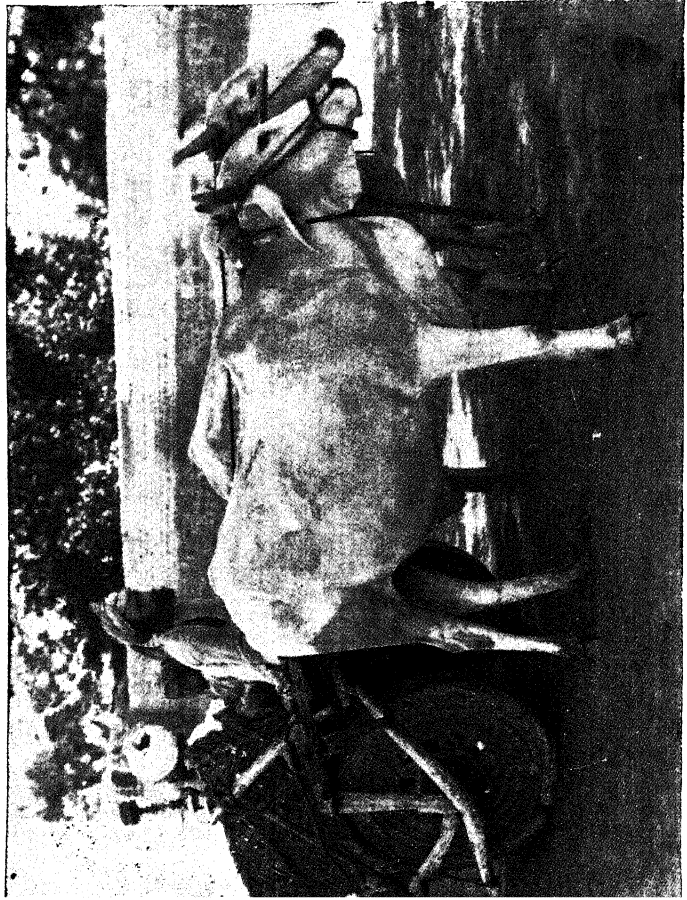
नाम पनियाँ। इन दोनों के नाम इनके पूर्व-पुरुषों के नाम पर, जो सहोदर भाई थे, प्रचलित हुए हैं। इसीलिए दोनों खाँपों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता।

दूसरे वह जाट हैं जिनके साथ राजपूत मिश्रित हो गये हैं। मुसलमानी शासनकाल में अनेक राजपूत मुसलमानों से भयभीत होकर जाटों में मिल गये थे और उन्हीं का व्यवसाय भी अपना लिया था तथा समय के प्रभाव के साथ उन्हीं में सम्मिलित हो गये।

तीसरे वह जाट हैं, जो आंजणा नाम से पुकारे जाते हैं। उनका सामाजिक स्थान हीन माना जाता है। उन लोगों की संज्ञा उनके ग्राम के नाम पर पड़ी है, उदाहरणार्थ, मुंडेल, इंदानियाँ, ढ़ाडेल, इत्यादि।

मारवाड़ के जाटों का व्यवसाय यद्यपि सैनिक नहीं है, किन्तु उनके शरीर की आकृति सैनिक कहलानेवाली जातियों की आकृति की अपेक्षा किसी अंश में भी हीन नहीं है। जाट शरीर में राजपूतों के समान ही लम्बे-चौडे, हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ और सुदृढ़ होते हैं। उनकी आकृति से वैसी ही वीरता झलकती है, जैसी कि राजपूतों की आकृति से। जाट बड़े परिश्रमशील होते हैं। उनके मिजाज में निर्भीकता होती है। जंगल में जाट की प्रधानता इतनी होती है कि निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध हो गयी है——

जंगल जाट न छेड़िये हाटां बीच किराड
रांघड कधी न छेड़िये जब-तब करे विनास।

अर्थात्, जंगल में जाट को और दुकान पर बनिये को कभी नहीं छेड़ना चाहिए तथा राजपूत को तो कभी छेड़ना ही नहीं चाहिए, अन्यथा वह कभी-न-कभी अवश्य नष्ट कर डालता है। जाट कृषि-कार्य में सर्वोत्कृष्ट होते हैं। जमीन बनाने और उसकी उन्नति करने के काम में वे विशेषज्ञ समझे जाते हैं। जिस स्थान पर जाट बस जाते हैं, उस स्थान की उन्नति हो जाती है। कहा जाता है—जाट जहाँ ठाट

जाट को चौधरी अथवा पटेल के नाम से पुकारने पर वह अपने को सम्मानित मानता है। जाट हँसी-मजाक में बड़ा निपुण होता हैं। मन का निर्भीक होने के कारण वह अत्यन्त स्पष्टवादी होता है। उसमें संकोच की मात्रा बहुत कम होती है।

जाट गुड़ खाने का बड़ा शौकीन होता है। जाटों में गुड़ का बड़ा चलन और व्यवहार है। यहाँ तक कि गुड़ द्वारा ही उनके यहाँ विवाह और सगाई-सम्बन्ध पक्के होजाते हैं।

जाटों में विधवा का नाता भी होता है और उनके यहाँ उसकी रीति अत्यन्त सरल है। जो विधवा किसी व्यक्ति के साथ अपना नाता करना निश्चय करती है, उसका भावी पति चारे का एक बोझ सर पर लादकर अपने घर के

निकट मार्ग में खड़ा हो जाता है और वह विधवा उसके सर का बोझ उतारकर अपने सर पर रख लेती है तथा पति के घर की ओर चल देती है। पीछे-पीछे उसका पति उसके साथ हो लेता है। जहाँ नाते का प्रस्तावक पुरुष होता है, वहाँ स्त्री अपने स्वीकृति-स्वरूप पानी का एक भरा घड़ा लेकर बीच मार्ग में खड़ी हो जाती है। पुरुष आता है और उसका घड़ा लेकर चल देता है। पीछे-पीछे वह स्त्री उसी के साथ चली जाती है। कदाचित् पुरुष का घर दूर हुआ, तो पुरुष उस स्त्री को रात्रि में अपने घर ले जाता है। जाटों का विश्वास है कि यदि अपने पति के घर पहुँचने के पूर्व कोई उस स्त्री का मुख देख ले, तो निश्चय ही छः महीने के भीतर उसकी मृत्यु हो जाय !

जाटों का एक पंथ है। उस पंथ के अनुयायी जसनाथी जाट कहलाते हैं। उनको लोग सिद्ध मानते हैं। सन् १४८८ ईस्वी में बीकानेर जिले के कछरासर ग्राम के निवासी एक जसनाथ नाम के संत ने इस पंथ की स्थापना की थी। ये जाट बीकानेर, माखरा और नागौर जिले के पांचला ग्राम में एक काली ऊन का डोरा बाँधे रहते हैं। इस पंथ के अनुयायियों की यही मोटी पहचान है। इनके शव या तो इनके निवास-गृह की डयोढ़ी के निकट अथवा पशुओं के घर में गाड़ दिये जाते हैं।

जसनाथी जाटों तथा अन्य जाटों के आपस में विवाह-सम्बन्ध होते हैं। वधू को विवाह के पश्चात् अपने पिता के घर की प्रथाएँ छोड़कर पति के घर की प्रथाएँ सीख लेनी पड़ती हैं।

मारवाड़ के जाटों में तेजा का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसके प्रति उनकी बड़ी भक्ति है। अजमेर तथा किशनगढ़ जिले के जाट तेजा को बहुत मानते हैं। तेजा नागौर जिले के खडनाल ग्राम का निवासी था। उसका विवाह किशनगढ़, इलाका पनेर ग्राम में हुआ था। एक बार वह अपनी ससुराल गया था। वहाँ मेर जाति के कुछ व्यक्ति पनेर के एक गूजर की गौएँ घेरकर ले गये। गूजर ने सबसे सहायता माँगी, पर किसी ने उसकी गायें छुड़ाने का साहस नहीं किया। उस दशा में तेजा ने गायों को चुरा ले जानेवाले मेरों का पीछा किया और उनको लड़ाई में वीरता के साथ पराजित कर गूजर का गोधन वापस लाकर गूजर को दे दिया। किन्तु तेजा इस संघर्ष में इतना आहत हुआ कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। दैवयोग से इसी बिच में उसे एक सर्प ने डँस लिया, फलतः तेजा की मृत्यु हो गयी और तेजा की पत्नी अपने पति के साथ वहीं जलकर सती हो गयी। उस समय से तेजा की याद में एक मेला किशनगढ़ में प्रतिवर्ष लगता था। इस मेले में बैलों का अच्छा क्रय-विक्रय हुआ करता था। जोधपुर महाराज विजयसिंह के समय से यह मेला किशनगढ़ से उठकर पर्वतसर चला गया। मेले के किशनगढ़ से उठकर पर्वतसर जाने की कहानी बड़ी मनोरंजक है। महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में पर्वतसर में एक हकीम था, जो बुद्धि का बड़ा प्रखर तथा चतुर था।

उसने देखा कि इस मेले द्वारा किशनगढ़-दरबार को प्रतिवर्ष पांच-सात हजार रुपयों का लाभ होता है, अतः उसने इस मेले को किशनगढ़ से उखाड़कर पर्वतसर में जमाना निश्चित किया।

उसने अनेक उपायों द्वारा प्रचार आरम्भ किया कि उसको स्वप्न में तेजा ने आज्ञा दी है कि मेरा मेला पर्वतसर में भराना चाहिए। उसने तेजा की मूर्ति भी एक रात को किशनगढ़ से उखाड़कर पर्वतसर में स्थापित कर दी और यह प्रकट किया कि तेजा ने आज्ञा दी है कि मैं किशनगढ़ में दुःख पाता हूँ, मुझे मारवाड़ ले चलो। इसके पश्चात् मेला किशनगढ़ में बन्द होकर पर्वतसर में भरने लग गया। कारण उसमें मारवाड़ के ही अधिकांश जाट और गूजर आदि अपने-अपने मवेशी विक्रयार्थ लेकर आते हैं।

देशी मुसलमान

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुसलमानों के भारतवर्ष में आगमन के पश्चात् जिन हिन्दुओं को मुसलमानी मजहब स्वीकार करने के लिए लाचार होना पड़ा था, उनमें गौड़, तंवर, चौहान, गहलोत, पडिहार, भाटी, दायमा तथा सिसोदिया-वंश के राजपूत भी सम्मिलित हैं। इनकी बहुत बड़ी संख्या है। इन मुसलमानी राजपूतों में से चौहान और भाटी क्रमानुसार कायमखानी और सिंधी सिपाही कहलाये।

कुछ वर्ष पूर्व तक यह लोग नाम-मात्र के मुसलमान थे। इनकी प्रथाएँ तथा रीति-रिवाजें वही पुरानी उनके हिन्दू काल की थीं, किन्तु बाद में स्थिति बदल गयी उनमें मुसलमानी रीति-रिवाजों की पाबन्दी अधिक दिखायी देती देने लगी। फिर भी ये अपनी कन्याओं का विवाह शेखों, पठानों और सैयदों के साथ नहीं करते तथा हिन्दुओं के समान चार गोत्र बचाकर विवाह-सम्बन्ध करते हैं। इनके भाट भी अलग हैं। इनमें नाता-प्रथा प्रचलित है।

कायमखानी

मारवाड़ में कायमखानी मुसलमानों की आबादी शेखावाटी, डीडवाना, मूंडवा और नागौर के परगनों में अधिक है। कायमखानी वही चौहान राजपूत हैं, जिनको फिरोज़खाँ तुगलक नें मुसलमान बना लिया था। कायमखानियों के मुसलमान होने की कहानी इस प्रकार है :

सन् १३८३ ईस्वी में फिरोजखाँ तुगलक का शासन था। उस समय तुगलक की ओर से सैयद नासिर नाम का एक व्यक्ति हिसार का हाकिम था। उन दिनों हिसार जिले के ददरेरा स्थान पर मोटाराव नामक एक चौहान-सरदार रहता था। मोटाराव के तीन पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम करमसी था। नासिर नें करमसी को साम, दाम और दंड-भेद से मुसलमान बना लिया

तथा उसको अपना पुत्र बनाकर और उसका नाम कायम खाँ रखकर अपने घर रख लिया। इसके पश्चात् उसके दोनों भाई भी मुसलमान हो गये। इनमें से एक का नाम जैनुद्दीन और दूसरे का नाम जबरुद्दीन रक्खा गया। आरम्भ में इन तीन व्यक्तियों के नाम से तीन पृथक फिरके रहे। थोड़े दिनों के पश्चात् सैयद नासिर की मृत्यु हो गयी और ये तीन फिरके एक में सम्मिलित होकर कायमखानियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार सबल होकर इन्होंने हिसार का जिला जागीर में ले लिया।

इन दिनों दिल्ली का शासक खिजर खाँ था। उसको कायम खाँ पर कुछ सन्देह हो गया, अतः उसने उसे दिल्ली बुलाया और वहाँ उसे यमुना नदी में फिकवा दिया। कायम खाँ की मृत्यु के पश्चात् खिजर खाँ ने कायम खाँ के पुत्र ताज खाँ और मोहम्मद खाँ की जागीर छीनकर उन्हें हिसार से निकाल दिया। दोनों भाई वहाँ से निकलकर जैसलमेर चले गये और वहाँ से नागौर आये। उसके पश्चात् उन्होंने फतेहपुर और झुंझुनू नाम के दो अलग राज्य स्थापित किये और वहाँ के नवाब बनकर उन स्थानों का शासन करने लगे। सन् १७१३ ईस्वी में जब इन दोनों स्थानों के नवाब कायम खाँ (द्वितीय) और रुहेबा खां थे, उस जमाने में कछवाहा शेखावतों नें यह दोनों स्थान उनके हाथों से छीन लिये। यह लोग भागकर मारवाड़ चले आये। इनके वंशज अब कुचामन नाम के स्थान में बसे हुए हैं।

कायमखानियों की प्रधान बस्ती शेखावाटी में है। प्रारम्भ में कायम खाँ का अन्यतम पुत्र इखतियार खाँ कुछ काल तक हिसार और नारनोल का शासक रहा, अतः कुछ कायमखानी वहाँ भी बसते हैं।

कायमखानी मुसलमान कुरान और हदीस इत्यादि की बारीकियाँ नहीं जानते। वे हिन्दू प्रथाओं पर ही चलते हैं। विवाह में उनके यहाँ भी तोरन बँधता है और निकाह पढ़ी जाने के पश्चात् फेरे भी होते हैं। यह हिन्दुओं की भाँति गले में सोने के जेवर भी पहनते हैं और जिस प्रकार हिन्दू भाटों को त्याग बाँटते हैं, उसी भाँति यह मिरासियों को देतें हैं।

ये परदेशी मुसलमानों के साथ भोजन नहीं करते। शेखावाटी के कुछ स्थानों में हिन्दू अवश्य इनके साथ बैठकर भोजन कर लेते हैं। वेश-भूषा में यह लोग हिन्दुओं के ही समान रहते हैं। इनकी स्त्रियों का वेश भी हिन्दुआना होता है। ये लोग अन्य मुसलमानों की भाँति चचेरी, ममेरी और फुफेरी बहनों के साथ विवाह नहीं कर लेते।

आजकल कायमखानियों का प्रधान व्यवसाय सैनिक, नौकरी, व्यापार अथवा मजदूरी है। शेखावाटी में कुछ कायमखानी जागीरदार भी हैं।

सिंधी सिपाही

सिंधी सिपाहियों की संख्या भी मारवाड़ में बहुत है। इनकी प्रधान बस्तियाँ शिव मालाणी और सांचार-परगनों में हैं। पशु-पालन और कृषि इनके प्रधान

सिंधी सिपाही

कायमखानी

माली
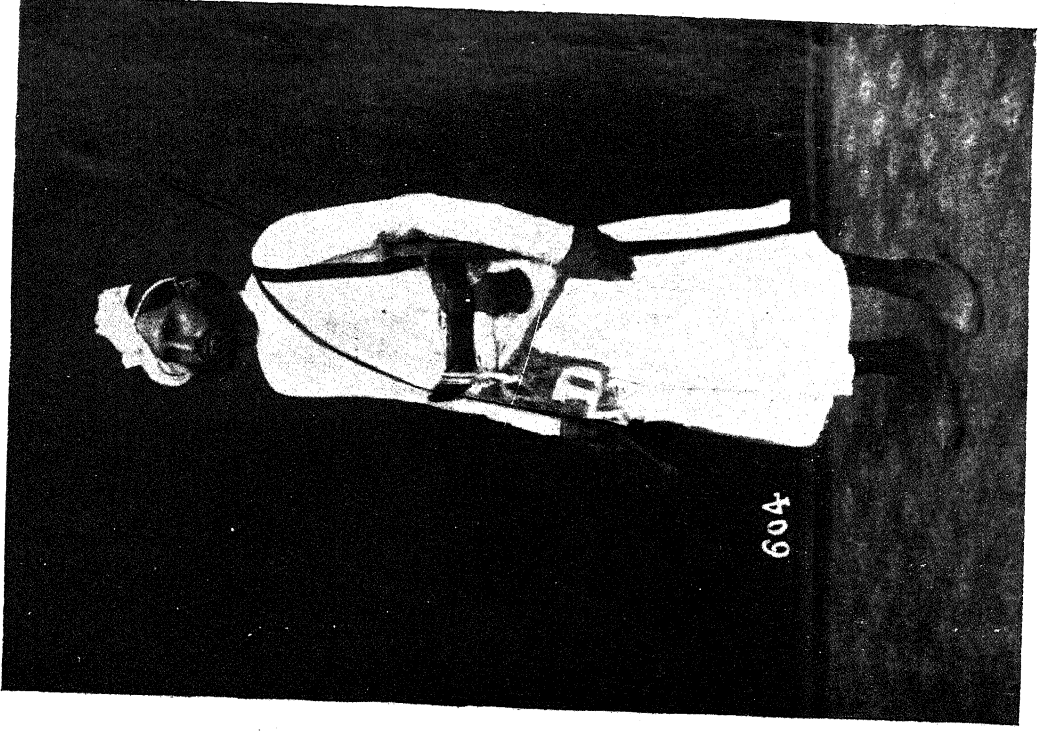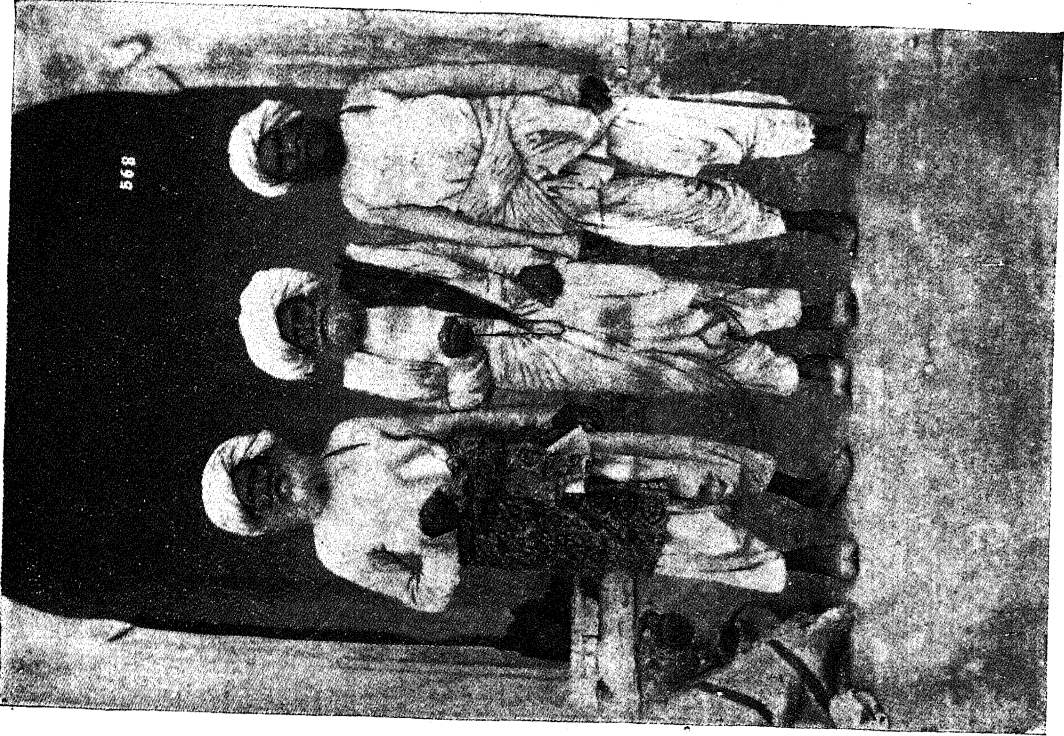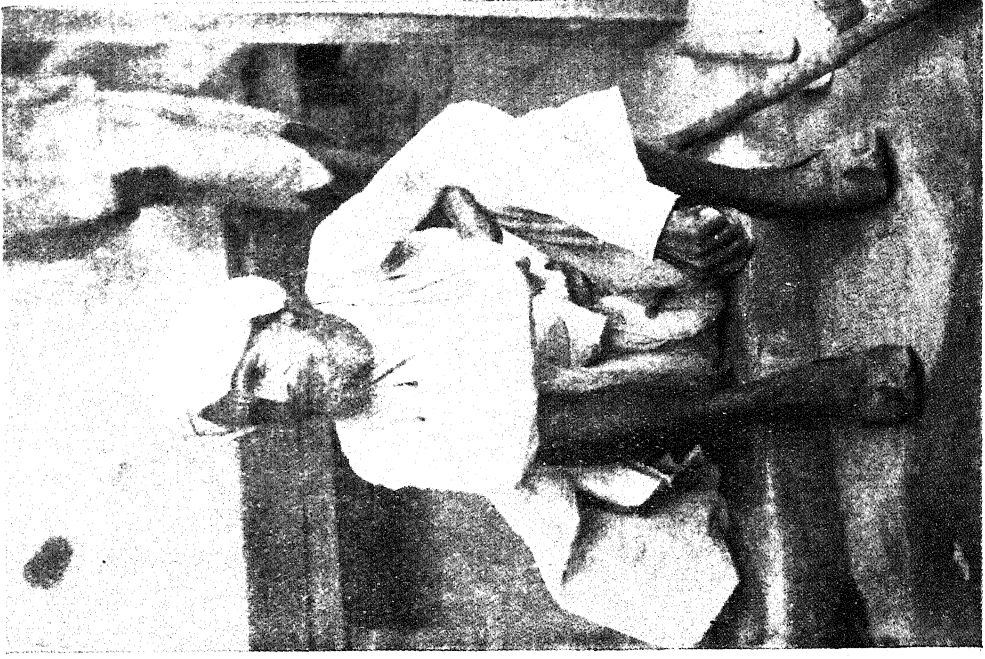
पीटल अथवा कलबी
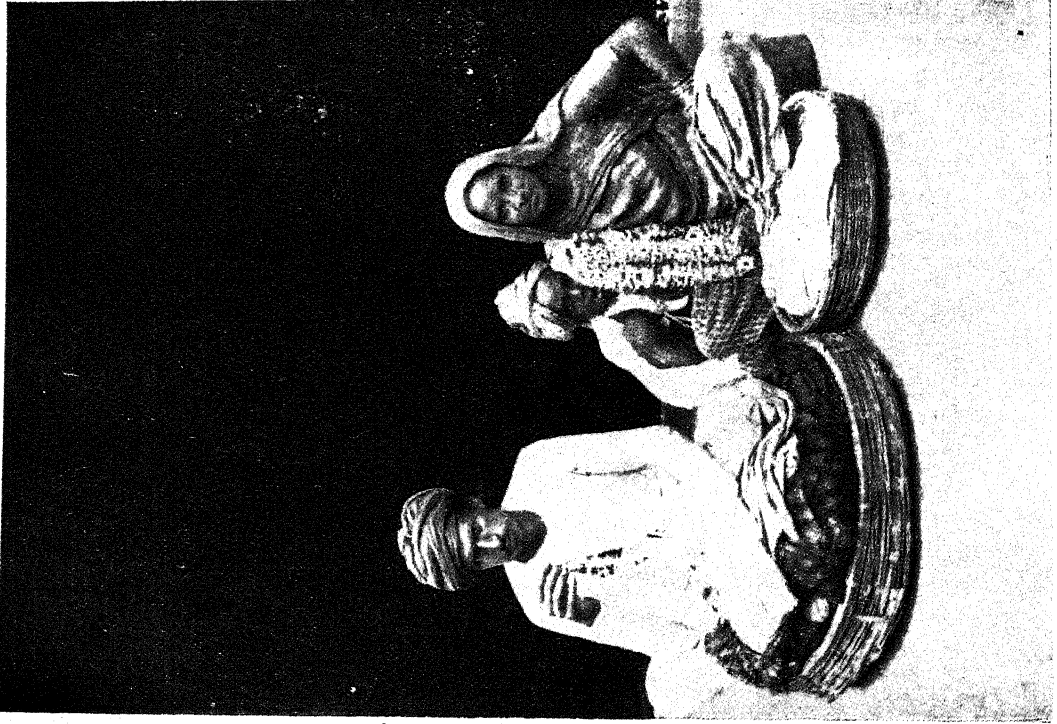
व्यवसाय हैं। मुसलमान होने के पूर्व ये लोग चंद्रवंशी यादव राजपूत थे। इनके मुसलमान होने के पश्चात् मुसलमान भाटी, सोढ़ा, तंवर और राठौड़ भी इन्हीं के समुदाय में सम्मिलित हो गये। इस मुसलमानी दल की नींव आज से १२०० वर्ष पूर्व मोहम्मद कासिम के सिंध पर आक्रमण के समय पड़ी थी। बाद में निरन्तर इसमें लोगों के सम्मिलित होते रहने के कारण इनका समूह बढ़ गया।

इन लोगों में अनेक खांपें हैं। जैसे--समा, सानद, गज्जू, भीया, पन्नो, सीथार सूमरा तथा म्हीर इत्यादि। समा नाम के एक भाटी राजपूत से, जो मुसलमान हो गया था, समा नाम की खांप आरम्भ हुई। सानद और गज्जू खांपें सोढ़ा राजपूतों से निकलीं और भीया तथा पन्नू सब तंवर हैं। सीथार खांपवाले अपने को राठौड़ बताते हैं। यद्यपि सूमरा तथा म्होर लोगों का दावा है कि उनके शरीर में विशुद्ध मुसलमानी रक्त विद्यमान है, तथापि वह भी किसी समय राजपूत ही थे। वासस्थान के विचार से सिंधी सिपाहियों के दो विभाग हैं। एक घाटी कहलाते हैं और दूसरे खुडाली। घाटी वह लोग हैं, जो थरपारकर से सक्खर और रोटी तक अपने बसने की असली जगह बताते हैं और खुडाली वह लोग हैं, जो जैसलमेर के उत्तर की मरुभूमि पर निवास करते थे। इनका नाम खुडाल इसीलिए पड़ा है कि उस मरुखंड का नाम खुडाल है। खुडाली घास-फूस की झोपड़ियां बनाकर उन्हीं में रहते हैं तथा वे एक स्थान पर पाँच से अधिक झोपड़ियाँ नहीं बनाते। उनका कथन है कि यह जीवन इतना अस्थिर और क्षुद्र है कि इसके लिए स्थायी मकान की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है।

गाय, भेंड़, बकरियाँ इत्यादि पालकर यह अपना जीवन निर्वाह करते हैं। शीतकाल में यह लोग ऊँची जमीनों पर रहते हैं और ग्रीष्मकाल में नीचे तथा ठंडी जमीनों पर उतर आते हैं। ये लोग चारपाइयों का कभी उपयोग नहीं करते। वर्षाकाल में ये घास और मोटे ऊनी कम्बलों पर गुजारा करते हैं। शरीर के ये पुष्ट और कठिन परिश्रम करने के अभ्यस्त होते हैं। इनकी स्त्रियाँ सुन्दर, रूपवती होती हैं तथा उनके बाल असाधारण लम्बे होते हैं। यह अत्यन्त थोड़े वस्त्रों में ही गुजारा करते हैं। यह सुन्नी जमात के लोग होते हैं, किन्तु कुरान अथवा नमाज कभी नहीं पढ़ते। यह लोग फकीर कहलाते हैं। इनका आचरण बहुत शुद्ध होता है। प्रकृति के यह भोले और सीधे होते हैं। उत्तरी सिंध से इनके पीर यदा कदा इनसे मिलने के लिए आते हैं, जिनका यह लोग बड़ा सम्मान करते हैं।

माली

मारवाड़ की सर्वप्रधान जाति राजपूतों का जिक्र कर चुकने के पश्चात् अब कृषि-प्रधान जातियों का वर्णन आरम्भ किया जाता है और इसमें सर्वप्रथम मारवाड़ में बसनेवाले मालियों का जिक्र आता है।

पहले यहाँ की माली जाति में दो विभाग थे। एक का नाम फूलमाली था और दूसरी का नाम वनमाली। नगरों में बसने और फूलों तथा उनके उद्यानों का काम करनेवाले माली फूलमाली कहलाते थे तथा ग्रामों में बसनेवाले और फल-फूल मिश्रित बगीचों का काम करनेवाले का नाम वनमाली था। यद्यपि इनके नाम भिन्न थे, परन्तु इनमें वास्तविक अन्तर कुछ भी न था—कारण कि इन दोनों का खान-पान तथा बेटी-व्यवहार एक था। अब यह नाम का अन्तर भी बिलकुल मिट गया है।

माली-जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो पुराने समय से चले आ रहे हैं वे मोर माली के नाम से प्रसिद्ध हैं। मोर का अर्थ है, प्राचीन। दूसरे वह माली हैं, जिनमें राजपूतों के अनेक वंश मिल गये हैं। इस सम्बन्ध में एक कहानी है कि एक बार शहाबुद्दीन गोरी ने बहुत-से राजपूतों को जेल में डाल दिया था। उन दिनों बादशाह के यहाँ बाबा नामका एक माली नौकर था। बाबा को उन राजपूतों पर दया आयी। उसने इस शर्त पर कि राजपूत कारावास से मुक्त होकर माली बन जायँगे राजपूत न रहेंगे, बादशाह से उनकी मुक्ति की सिफारिश की। बादशाह ने बाबा की बात मान ली और राजपूतों को कारावास से मुक्त कर दिया, अत: कारावास से मुक्त होकर उन राजपूतों ने माली का व्यवसाय ग्रहण कर लिया और क्रमश: उन्हीं के साथ रहकर उन्हीं की जाति में लीन हो गये।

इन मालियों में से कुछ अभी तक अपना राजपूती गोत्र स्थिर रखे हुए हैं, परन्तु कुछ ने उसे त्यागकर अपने नाम के साथ अपने निवास-स्थान का नाम जोड़ लिया है। जैसे, अजमेर के अजमेरा और भंडोर के भंडेरिया इत्यादि।

मालियों में भी नाता-प्रथा प्रचलित है। उन लोगों में यह प्रथा करेवा कहलाती है। नाता करनेवाली स्त्री अपने पिता के घर चली जाती है। वहाँ उसका भावी पति जाता है और स्त्री के पिता को प्रथा के अनुसार न्यूनतम १६ रु० और अधिक-से-अधिक ५५ रु. देकर स्त्री को अपने घर ले आता है। मृतक पति की सम्पत्ति और सन्तान उसके परिवार को सौंप दी जाती है।

मालियों में वैष्णव, शाक्त और शैव, तीनों धर्मों के अनुयायी व्यक्ति हैं। यह सांवलजी (कृष्णजी) तथा रामदेवजी, दोनों की पूजा करते हैं।

पीटल तथा कलबी

पीटल और कलबी यथार्थ में दोनों एक ही हैं। कृषि के अतिरिक्त इनका दूसरा व्यवसाय नहीं है और यह चौधरी कहे जाते हैं। गुजरात प्रान्त के पाटन स्थान में जाने के बाद से यह पीटल कहलाने लगे हैं। मारवाड़ के पूर्वीय प्रान्तों में इनका यही नाम प्रचलित है। मालवा तथा दक्खिन में यह लोग कलबी

कहलाते हैं। कलबी शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में फारसी भाषा में कलवा का अर्थ है, हैल। किन्तु इस शब्द की स्थानीय व्याख्या नितान्त भिन्न है। वह कलबी के कल का अर्थ कुल, परिवार अथवा वंश लगाते हैं और बे का अर्थ गुजराती में है दो, अर्थात् जो दो वंशों से उत्पन्न हुआ हो। कलबियों की उत्पत्ति राजपूत पुरुषों और गुजरात की ब्राह्मण स्त्रियों से मानी जाती है। कहा जाता है कि सन् १२०० ईस्वी के लगभग गुजरात पर मुसलमानों के आक्रमण से भयभीत होकर गुजरात की कुछ ब्राह्मण स्त्रियाँ वहाँ से भागकर राजपूतों के घरों में जा छिपी थीं और वहीं रह गयीं। अतः उनकी सन्तान कलबी कहलाई। कलबी स्त्रियाँ आज भी अपने ब्राह्मण होने के विचार से मांस और मदिरा का व्यवहार नहीं करतीं। वे अपने पतियों के साथ भोजन भी नही करतीं तथा अपने बर्तन अलग रखती हैं।

मारवाड़ में कलबियों का असली वास-स्थान मीनमाल में था। यह स्थान अब जसवन्तपुरा के साथ मिला दिया गया है। कलबी वहाँ से गुजरात में पाटन गये थे। पाटन से यह प्रचभद्रा गये और वहाँ से सिवाना पहुंचे।

कलबियों की प्रधान खांपों के नाम चौहान, सोलंखी, पंवार, पडिहार और गोयल इत्यादि हैं। और फिर एक-एक खांप की कई उप-खांपें चल पड़ी हैं, जो पशु-पक्षियों तथा कीड़े-मकोड़े के नामों के आधार पर हैं--जैसे हाटिया, काग, बिच्छू, वया, वक, काकल और बुका इत्यादि। इनमें कुछ तो शाक्त धर्मावलम्बी और अधिकतर वैष्णव हैं।

इन लोगों के विवाह तथा मृतक-कर्म की रीतियाँ अन्य हिन्दू जाति की रीतियों से बहुत भिन्न हैं। इन लोगों में विवाह के अवसर पर एक बड़ी डेग में मोठ अथवा बाजरा पकाया जाता है। वधू के माता-पिता उस डेंग की परिक्रमा कर उसकी पूजा करते हैं। परिक्रमा में आगे पिता और पीछे माता होती है। इस पके हुए अन्न की पूजा के पश्चात् दोनों एक साथ भोजन करते हैं।

कलबी स्त्रियाँ अन्य हिन्दू स्त्रियों की भाँति लाख की चूड़ियाँ नहीं पहनतीं। वे सफेद रंग की हाथी-दाँत की चूड़ियाँ पहनती हैं। नाक, कान, गले में चांदी के गहने पहनती हैं तथा पैरों में कांसे और पीतल के।

विश्नोई

इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति के पूर्व विश्नोई जाट थे। विश्नोई-सम्प्रदाय की संस्थापना जांमाजी ने की थी। जांमाजी एक पंवार-वंशीय राजपूत थे। इनका जन्म सन् १४५१ ईस्वी में हुआ था। यह ब्रह्मचारी, महात्मा और सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने अनेक करिश्मे दिखलाये थे। इनका प्रसिद्ध करिश्मा यह था कि सन् १४८७ ईस्वी में

जब नागौर में दुर्भिक्ष के कारण अन्न का अभाव हो गया और वहाँ के निवासियों मं से ८०० जाटों के एक दल ने उस स्थान को छोड़ना निश्चित कर लिया, तब इन्होंने वहाँ पहुँचकर उनका प्रस्थान रोक दिया और उन ८०० व्यक्तियों को केवल एक मन अन्न से तीन वर्ष तक लगातार भोजन दिया। इस घटना तथा इसी प्रकार की अन्य घटनाओं से प्रभावित होकर लोगों ने विश्नोई धर्म स्वीकार किया।

जांमाजी को लोगों ने विष्णु का अवतार माना। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति तथा इसका विश्नोई नाम पड़ने का यही कारण है। सम्प्रदाय का नाम विश्नोई होने का एक और भी कारण लोग बतलाते हैं। इस धर्म के नियमों की संख्या २९ है, अर्थात् बीस और नौ। कुछ लोगों की कल्पना है कि इसी बीस और नौ के कारण इस सम्प्रदाय का नाम विश्नोई हुआ।

मारवाड़ में विश्नोइयों की संख्या चालीस हजार से भी अधिक है और इन लोगों में भी उसी प्रकार के भेद-उपभेद विद्यमान हैं, जैसे कि जाटों में। विश्नोइयों में स्त्रियों का पुनर्विवाह अथवा नाता होता है। इनका प्रधान व्यवसाय कृषि है। ये ऊँट बहुत पालते हैं। इनकी धार्मिक प्रथाओं में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की रीतियों का सम्मिश्रण है।

पंजाब की एक जनगणना-रिपोर्ट में विश्नोइयों के सम्बन्ध में लिखा है:

विश्नोई प्रत्येक प्रकार के मांस को त्याज्य मानते हैं। पशु-जीवन के प्रति उनमें एक बड़ा दृढ़ सम्मान है। तम्बाकू को वह समस्त रूपों में अशुद्ध मानते हैं। उनके शव पृथ्वी में लम्बे-लम्बे गाड़े जाते हैं। यदा-कदा वह शव को हिन्दू संन्यासियों के समान बैठा हुआ भी गाड़ देते हैं और या तो अपने ही घर की ड्योढ़ी पर अथवा पशुओं के घेर में गाड़ते हैं। वे चोटी नहीं रखते और ऊनी वस्त्र पहनना अधिक पसन्द करते हैं। कारण कि उनके विचारों के अनुसार ऊनी वस्त्र सर्वदा शुद्ध रहता है। उनमें धार्मिक प्रथाओं की कट्टरता कट्टर-से-कट्टर हिन्दुओं से भी अधिक होती है। यहाँ तक कि यदि बीस ऊंटों की एक कतार चल रही हो तथा पहले ऊँट पर किसी का भोजन रखा हो और यदि कोई व्यक्ति अन्तिम ऊँट की पूँछ छू ले, तो वह प्रथम ऊँट पर लदे हुए अपने भोजन को फेंक देने में संकोच नहीं करेंगे।

सीरवी

मारवाड़ के कृषकों में सीरवी-समुदाय का नाम भी उल्लेखनीय है। सीरवियों के दो भेद हैं, जिनमें एक भेद खारडिया और दूसरा जेनाई कहलाता है। खारडिया सीरवी नाम इसलिए पड़ा कि यह लूनी नदी के निकट खारी खाबाड़ के निवासी हैं। अब यह लोग मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में बसे हुए हैं।

बिश्नोई

सीरवी

मेवाती

मेर
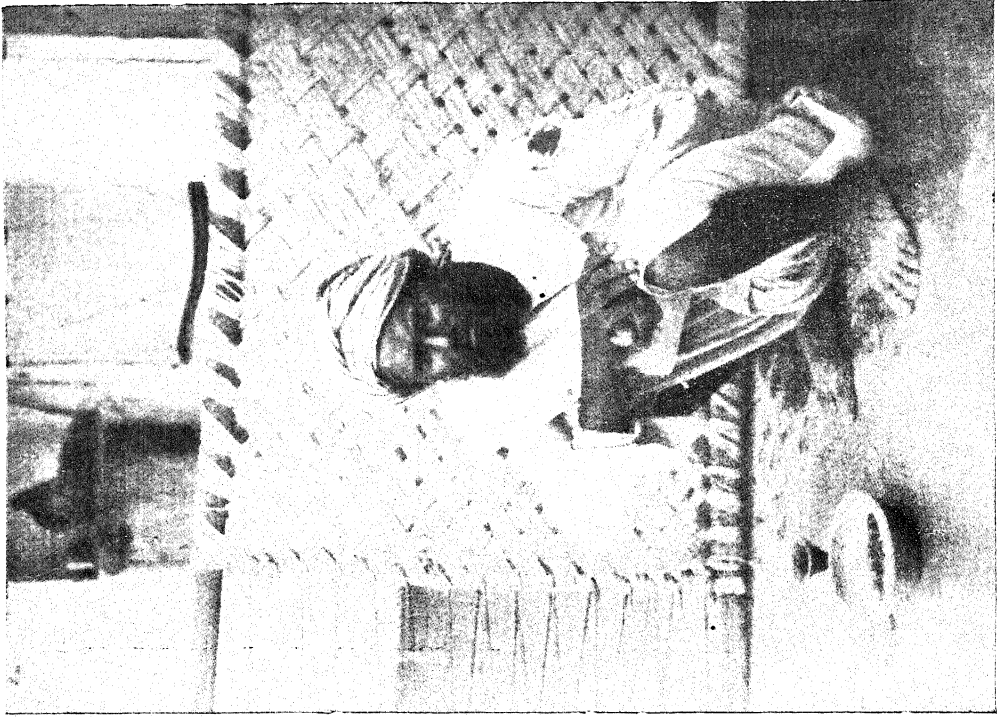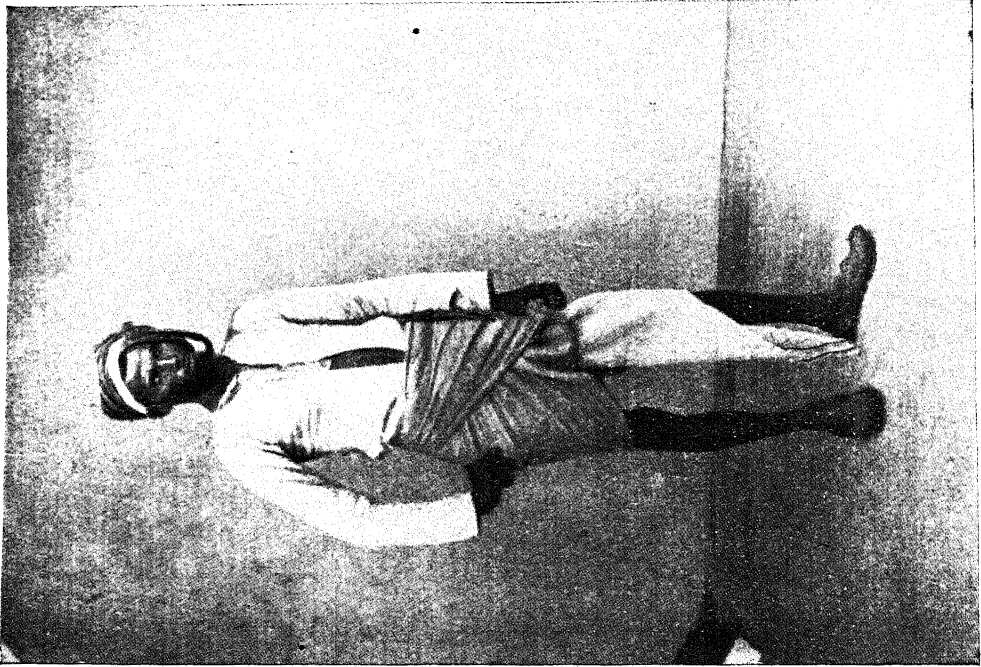
मेजर जनरल सर जान मालकम के कथनानुसार यह लोग राजपूत हैं और उन चौबीस राजपूतों की सन्तति हैं, जिन्होंने सौ वर्ष पूर्व कोल्हापुर के राजा अमन्दराय की रक्षा न कर सकने, कोल्हापुर का दुर्ग धोख से छीने जाने तथा राजा के मारे जाने से लज्जित होकर अपनी राजपूती को सदा के लिए तिलांजलि दे दी थी। उन्होंने अपनी ढालें और तलवारें फेंककर कृषि का उद्यम स्वीकार किया था। सीरवी शब्द की व्युत्पत्ति रांघड़ी भाषा के शब्द सीर से है और सीर का अर्थ कृषि है। उस समय से आज तक ये निरन्तर कृषि-कार्य में लगे हुए हैं और कृषकों में अच्छे कृषक माने जाते हैं। मध्य भारत के कृषकों में इनका उच्च स्थान है। कूप-खुदाई के काम में सीरवी विशेषज्ञ होते हैं। यह लोग जमीन को ऊपर से ही देखकर समझ लेते हैं कि पानी कितनी गहराई पर मिलेगा।

इनकी उपास्य-देवी का नाम आईजी है। इनका मंदिर बीलाड़े में है, जो दरगाह कहलाता है। वहाँ के पीर को दीवान कहते हैं। आईजी के प्रति इनकी स्त्रियों की श्रद्धा इतनी अधिक है कि वे चक्की पीसते समय नित्य उनके नाम की एक चुटकी निकालती हैं। यह चुटकी आईजी की भली कहलाती है तथा एक मटकी में निरन्तर जमा होती रहती है। जब पीर के नाम का अन्न एकत्र करनेवाली बैलगाड़ी वहाँ जाती है, तब उस आटे को उनके घर-घर से ले जाती है।

सीरवी गाय को अत्यन्त पवित्र मानते हैं। इन लोगों में मांस और मदिरा दोनों का प्रचलन है। इनमें नाता भी होता है। यह अपने को आबू पर्वत के विजयपालकी वंशावली में मानते हैं। विजयपाल एक साधु था। वह केवल दुग्धाहारी था, अन्न कभी ग्रहण नहीं करता था। कहा जाता है कि यह विजयपाल एक बार तीर्थ-यात्रा करने गया। लौटते समय मार्ग में इसने एक पालीवाल ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लिया। उस ब्राह्मण स्त्री से एक पुत्र का जन्म हुआ। उस पुत्र का नाम जेनाजी था। उसका नाम जेनाजी इसलिए रक्खा गया था कि वह सिरोही के समीपवर्ती जेनाई नामक एक ग्राम का निवासी था। उसी जेनाजी की सन्तति होने के कारण ये लोग जेनाई कहलाते हैं।

खारडिया तथा जेनाई दोनों सीरवियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध होते हैं किन्तु खारडिया सीरवी मृतक का शव गाड़ते हैं और जेनाई सीरवी जलाते हैं।

मेवाती

अलवर तथा भरतपुर के बीच का प्रान्त मेवात कहलाता है। उस स्थान के निवासी होने के कारण यह जाति मेवाती कहलाई। पूर्वकाल में यह लोग यादव-वंशी राजपूत थे। मुसलमानी शासन के दबाव से इनको मुसलमान होना पड़ा। मुसलमान

इतिहासकारों ने इनके लिए मेवाती शब्द का प्रयोग किया है। इसीलिए ये लोग मेवाती नाम से प्रसिद्ध हो गये।

कर्नल पौलेट के मतानुसार मेवात का अर्थ शासक जाति है और मेव का अभिप्राय शासित है, परन्तु इतिहास में इन दोनों शब्दों में कोई नहीं मिलता कारण कि इन का नाम बदलकर खानजादा हो गया था।

सर जान मलकम के मतानुसार यह लोग उद्दंड तथा दुराचारी होते हैं, किन्तु साथ ही इनमें साहसी और ईमानदार लोग भी पाये जाते हैं। इसलिए प्राय: इनको शरीर-रक्षक के पद पर नियुक्त किया जाता है।

वैसे तो मेवाती मुसलमान माने जाते हैं, परन्तु यह हिंदू देवता, हिन्दू पर्व हिन्दू रीति-रिवाजें तथा ब्राह्मणों को मानते हैं। इनका मुख्य धन्धा कृषि है।

मेर

यह मारवाड़ की एक अत्यन्त अल्पसंख्यक जाति है। पूर्वकाल में ये लोग महा भयंकर दस्यु-वृत्तिवाले थे और केवल बाली, सोजत तथा जयतारन के परगने में बसते थे। ये पहाड़ी जाति के लोग हैं। मेर शब्द का अर्थ ही पहाड़ी है। कहावत है– मेर और मोर ऊँचे पर राजी।

यह लोग अपनी उत्पत्ति उन राजपूत सरदारों से मानते हैं, जिन्होंने मीना जाति की स्त्रियों के साथ सम्बन्ध जोड़ लिया था। कर्नल टाड ने भी इन लोगों को मीना जाति की ही एक शाखा माना है, परन्तु मिस्टर इलियट ने, जो सामग्री भारतवर्ष का इतिहास लिखने के लिए एकत्र की थी, उसमें उन्होंने यह शंका प्रकट की थी कि सम्भवत: यह लोग इंडो सीथियन जाति के उन मेडों के स्मृति चिह्न हैं, जिन्होंने मध्य एशिया से भारत में प्रवेश किया था। संक्षेप में यह एक बड़ी गंदी जाति है और ऊँचे पर्वतों पर बसने के कारण इनको नहाने-धोने की चिन्ता नहीं है। इनमें तम्बाकू का बड़ा चलन है और थोड़ा-बहुत अफीम का भी।

मेर अपने को हिन्दू कहते हैं अवश्य, परन्तु उनमें हिन्दूपन की रीति-रिवाजें नही हैं। वह दिन में तीन बार भोजन करते हैं और मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ जो भी उन्हें मिल जाय, वही खा लेते हैं। मांस में वह भेड़, बकरी, गाय, बैल किसी को नहीं छोड़ते। धर्म के सम्बन्ध में उन्हें देव, ब्राह्मण किसी से कोई वास्ता नहीं है। माताजी (दुर्गा) उनकी प्रधान देवी हैं, जिसको वे पूजते हैं। अल्लाहजी भी उनके एक देवता हैं तथा थोड़ा-बहुत देवजी और रामदेवजी के प्रति भी सम्मान रखते हैं।

अपने बाप-दादों से जो विधान परम्परागत उन लोगों को मिलता चला आया है, बस वही उनका विधान है। तदनुसार वे विधवा के साथ नाता अथवा पुनर्विवाह करने में भी स्वतंत्र हैं।

मीना

मीना मारवाड़ की प्राचीन और प्रसिद्ध जंगली जाति है। भीलों के पश्चात् मीनों की ही गणना है। इनकी प्रधान बस्ती जालोर तथा गोडवाड में है।

मेव और मीना एक दूसरे सें सम्बद्ध माने जाते हैं और किसी समय इन दोनों में विवाह-सम्बन्ध भी होता था। कर्नल पोलेट के मतानुसार मेव और मीना शब्दों में ऐसा साम्य है कि मेव मीना का ही संक्षेप नाम जान पड़ता है। कर्नल टाड मीना शब्द की वही व्युत्पत्ति मानते हैं, जो मेर अथवा मेरोत की है। उन सबका अर्थ मेर अथवा एक पहाड़ी के पहाडिए हुआ। उनका मत है कि शब्द के वर्ण-विन्यास तथा उच्चारण में भेद डालकर उसकी एक जाति के नाम का द्योतक बनाया गया है। मीना का अर्थ असल अथवा अमिश्रित श्रेणी है और मीना का प्रयोग मिश्रित के लिए किया जाता है।

मारवाड़ की मीना जाति के दो भेद हैं। उत्तर-पूर्व के परगने, मांरोठ, नांवा और सांभर के मीने अपने को उच्च कुल के मानते हैं और गोवाड तथा जालौर के दक्षिणी परगनों के निवासियों को अपने से निम्न कुल का समझते हैं। यह लोग ढेडिया मीना कहलाते हैं। यह दोनों उपजातियाँ न तो आपस में विवाह-सम्बन्ध करती हैं और न रोटी-व्यवहार, अर्थात् परस्पर में एक-दूसरे के हाथ का भोजन ही।

उत्तर-पूर्वीय परगनों के निवासी मीना अपने को उसी जाति का मानते हैं जिस जाति के मीना आम्बेर (जयपुर) में आबाद हैं। कहा जाता है कि राजपूतों के आक्रमण के पूर्व आम्बेरपुर में इन्हीं मीना लोगों की सत्ता स्थापित थी। ये मीना आज भी वहाँ के परम्परागत रक्षक माने जाते हैं। नये राजा के जयपुर के राजसिंहासन पर बैठने के समय यही उसके माथे पर राजतिलक करते हैं। इन मीना लोगों में दो उपभेद हैं। एक वर्ग जमीन्दार कहलाता है तथा दूसरा चौकीदार। किन्तु कर्नल पौलेट के मतानुसार इन दोनों में भेद की कोई रेखा नहीं मिलती। इनमें भी अनेक खांपें हो गयी हैं, जिनमें कुछ की उत्पत्ति ब्राह्मणों और मीनों के संयोग से बताई जाती है और कुछ की मीना तथा राजपूतों से। मि० इवटसन के मतानुसार मीना तथा राजपूतों के संयोग से उत्पत्ति मानने का दावा आधारयुक्त है।

कुछ लोगों का कथन है कि मीना जाति की उत्पत्ति एक राजपूत की दोगली सन्तान से हुई है। स्त्रियाँ यदि किसी ऐसी स्त्री को सन्तान प्रसव करते देखती हैं, जिस पर उन्हें व्यभिचारिणी होने का सन्देह हो, तो कहती हैं कि अमुक स्त्री ने मीना को जन्म दिया है, अर्थात् उसने दोगली सन्तान उत्पन्न की है। मडोट और नावां-निवासी कुछ मीना अपने कुल की उत्पत्ति रेवारी नाम के एक गूजर-कुल से मानते हैं। उनका यह भी कथन है कि यथार्थ में वह लोग यमुना के तटवर्ती नन्दगाँव के निवासी हैं।

वहाँ से ढुंढार आये और ढुंढार से मारवाड़। यद्यपि ये लोग विवाह की सब प्रथाएँ राजपूतों की तरह मानते हैं, किन्तु मृतकों का श्राद्ध गूजरों के समान दीपावली पर करते हैं।

मीनों की अनेक खांपें हैं, किन्तु मारवाड़ में निम्नलिखित आबाद हैं —

१. छापोला	९. चीत	१७. सबडी
२. जेप	१०. नौंगाडा	१८. मोथू
३. जेरवाला	११. सीरा	१९. राखला
४. बागडी	१२. वधिराना	२०. मानोता
५. पाखरी	१३. चांड्डचा	२१. जेरवाला
६. बुद्दस	१४. औसर	२२. मौरजवाल
७. मानोताल	१५. वामणवाल	२३. जारवाली काला
८. वनसनवाल	१६. कागोत	२४. झूखाल

मीने शक्ति के उपासक हैं और जयपुर राज्यान्तर्गत रेवासा ग्राम के निकटस्थित पहाड़ में विराजमान जीण माता को पूजते हैं। मीनों का विश्वास है कि मदिरा के जितने प्याले जीण माता के मुँह में लगाये जायँगे, सब वह पी जायँगी। मीना लोग मांस और मदिरा खाते-पीते हैं। शकुन-विचार की ओर भी उनका बहुत ध्यान रहता है। वह कृषि-कार्य में निपुण होते हैं।

जालोर तथा गोडवाड निवासी ढेडिया मीना यद्यपि संख्या में अधिक हैं, किन्तु सामाजिक स्थिति में उत्तर पूर्व के परगनों के मीना लोगों से निम्न हैं। ढेडिया मीना गो-मांस-भक्षण से भी घृणा नहीं करते, इसलिए दूसरी खांपों के मीने उनके हाथों का स्पर्श किया हुआ कुछ नहीं खाते-पीते। उनकी खांपें अनेक हैं, जिनमें ६९ मारवाड़ में बसी हुई हैं। इन खांपों में से जावत्रा और खोडा खांपवालों का दावा है कि उनका कुल शुद्ध और अमिश्रित है। ये लोग अपने को सहस्राबाहु की सन्तान में मानते हैं। सहस्राबाहु के सम्बन्ध में कहा जाता है कि परशुराम के पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर डालने के संकल्प करने के समय राजा सहस्राबाहु अर्बली पहाड़ियों में जा कर छिपे थे। उनके पहले वहाँ भीलों का निवास था। भील स्त्रियों में उनकी सन्तान पैदा होने के कारण मीना कहलाई।

दूसरी प्रकार के खांप के मीनों में विविध प्रकार से राजपूती रक्त मिश्रित है। जालोर के चौहान राजा कानडदेव के प्रभुत्व की समाप्ति के पश्चात् जो राजपूत भागकर मीना लोगों में जा छिपे थे, वे मीना-कन्याओं से विवाह कर मीनों में मिल गये।

पडिहार खांप के मीनों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मंडोर के राजा नाहर राव ने एक मीना जाति की महिला से विवाह कर लिया था। उसका पुत्र जिसका नाम शोभ था, खैरार में जाकर बस गया था। वही खांप का संस्थापक हुआ।

इस खांप के लोग वहाँ पास-पड़ोस के स्थानों में फैल कर बसे हुए हैं। बूंदी में इनकी संख्या अधिक है। यह गाय तथा जंगली सूअर का मांस नहीं खाते। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार एक पडिहार राजकुमार एक शूकर का पीछा करता हुआ पुष्कर के समीप एक जलाशय पर पहुंच गया जिसके जल के प्रभाव से उसके शरीर का कुष्ट अच्छा हो गया। तब से पडिहार-वंश के लोग शूकर को पवित्र मानने लगे और उसका मांसाहार त्याग दिया।

राजपूतों के अतिरिक्त दूसरी जातियाँ भी, जैसे कुम्हारी और काछी इत्यादि, जिनके नामों से मीनों की खांपें चल पड़ीं, मीनों में मिल गये। मालूम होता है कि लूट-खसोट के सिलसिले में मीने लोगों को उठा ले जाते थे और पर्वतों में उन्हें छिपा दिया करते थे तथा मुँह-माँगी रक़म मिलने तक उन्हें अपना बन्दी बनाये रखते थे। इस प्रकार अनेक लोग आजीवन उनके बन्दी बने रह जाते थे। ढेडिया मीने यद्यपि गौ-मांस-भक्षी हैं, तथापि अपने को हिन्दू कहते हैं। वे देवी माता तथा भैरव की पूजा करते हैं और माता पर बकरा, भैंसा तथा मदिरा चढ़ाते हैं। उनके यहाँ ब्राह्मण अथवा पुरोहित की मानता नहीं। गुरडा रेवारी तथा भील उनके पुजारी होते हैं। सरगनों को, जो उनकी हजामत बनाते हैं, लूटने की मीनों में तलाक है, इसलिए सरगने को कभी नहीं लूटते। यह लोग मानजी शब्द द्वारा सम्बोधित किये जाने पर बहुत प्रसन्न होते हैं और इसी प्रकार कारी कहकर पुकारे जाने पर अप्रसन्न होते हैं।

सिरोही प्रान्त में छेना नामक ग्राम में प्रतिवर्ष एक मेला लगता है, जो मीना रोग के नाम से प्रसिद्ध है। इस मेले में सिरोही, जालोर और मेवाड़ के सब मीने एकत्र होते हैं। यह मेला सात दिनों तक रहता है। मीने इन सातों दिवसों को पवित्र मानते हैं और इस बीच वह कोई अनाचार नहीं करते। इस मेले में कदाचित् विघोषित अपराधी भी पहुँच जाते हैं, तो वह गिरफ्तार नहीं किये जाते। इस मेले की उत्पत्ति निम्नलिखित कहानी पर आधारित है :

प्राचीन काल में एक मीना नित्य प्रति गंगा-स्नान करने जाया करता था, जब वह मीना वृद्ध हुआ, तब एक दिन गंगा ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर वचन दिया कि भविष्य में तुम्हें गंगा-स्नान के लिए इतनी लम्बी यात्रा करने की आवश्यकता नहीं और अब मैं (गंगा) स्वयं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगी। मीनों का विश्वास है कि सम्प्रति जिस स्थान पर मेला लगता है, मीन-संक्रान्ति

के दिन वहाँ गंगा का पवित्र जल जमीन की गहराई से ऊपर झलकने लगा और आज भी जब पुरोहित धरती को खोदता है, तब वहाँ से जल निकल आता है और मीने उसी में स्नान करते हैं तथा साथ लायी हुई अपने मृत व्यक्तियों की हड्डियाँ उसी में डाल देते हैं।

जालौर प्रान्त के पावटा स्थान में फाल्गुन मास की त्रयौदशी को महादेव के नाम पर एक और मेला लगता है। इस मेले में निकटवर्ती ग्रामों के मीने लोग इकट्ठे होते हैं।

विवाह से पहले मीनों में सगाई होने की प्रथा प्रचलित है। विवाह के समय चौरी खड़ी की जाती है और फेरे तथा हवन की क्रियाएँ भी सम्पन्न की जाती हैं किन्तु इन लोगों में फेरों की संख्या सात के स्थान पर केवल चार होती है। नाता अथवा करेवा की प्रथा भी इनमें चालू है किन्तु विधवा अपने मृतक पति के गोत्र में नाता अथवा पुनर्विवाह नहीं कर सकती। स्त्री का नवीन पति उसे नवीन वस्त्र तथा लाख का सफैद चूडा पहनाकर शनिवार की रात्रि को अपने घर ले जाता है। स्त्री के पूर्व पति से उत्पन्न संतान यदि उसके साथ जाती है तो उसे अपना गोत्र नहीं बदलना पडता किन्तु अपने असली पिता की सम्पत्ति पर से उसका हक चला जाता है। उत्तराधिकार की सम्पत्ति भाइयों के बीच समान भागों में विभाजित हो जाती है; किन्तु यदि सम्पत्ति का विभाजन पिता के जीवन काल में ही हुआ तो पिता के साथ संयुक्त रहनेवाला पुत्र दोहरा भाग पाता है। मीनों में गोद लेने का रिवाज बहुत कम है। किन्तु आवश्यकता होने पर जामाता को भी गोद लेते हैं। उनके समस्त घरू झगडे पंचायतों द्वारा तय हो जाते हैं। पंचायतों की आज्ञा मानने के लिये वे बाध्य रहते हैं। इनके सिर की पोशाक पोतिया है उस पर वे जाडिया लपेट लेते हैं। उनकी स्त्रियों को स्वर्ण के गहने पहनने का अधिकार नहीं होता। वह हाथ और गले में चांदी के जेवर तथा पैरों में कांसे का जेवर पहनती हैं।

मीनों में दस्सा और बीसा नाम के दो भेद भी हैं किन्तु इसके कारण इनमें कोई जाति भेद नहीं है। दस्सों और बीसों में भी विवाह सम्बन्ध होते हैं। यदि इनमें कोई भेद है तो बस इतना ही कि दस्सा नामधारी मुख्यतया पापाचारी होते है और बीसा अपनी मेहनत मजूरी की कमाई पर निर्वाह करते हैं। दस्से शव का दाह कर्म करते हैं और बीसे शव को गाडते हैं।

मीने पीढियों से चोरी और डाके के समान अवैधानिक हीन कृत्यों से ही जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं। उनके निज वंशगत शस्त्र तीर और कमान हैं। इनके बच्चे बचपन से ही चोरी डाके का अभ्यास करते हैं। वह इसके योग्य बनने के लिए कांटों पर चलने, झाडियों में दौडने तथा उष्णकाल की जलती धूप और शीतकाल की

शरीर को पत्थर बना देनेवाली ठंडी हवा को सहन करने तथा सब प्रकार की कठोरता झेलने की क्षमता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अभ्यास पूर्ण हो जाने पर यह राजपथों, आम रास्तों पर चोरी तथा डाका करने के लिये टोली बनाते हैं। उस टोली का प्रचलित नाम डागडा है। जिस समय ये लूट खसोट के लिये तत्परता से लगे रहते हैं उस समय इनमें का एक व्यक्ति पहाडी के उच्च शिखर पर बैठकर चारों ओर की खबरदारी रखता है। इस व्यक्ति को टूंकिया कहते हैं। यदि वह प्रतिरोधियों को आता देखे तो चीख मार कर टोली को सतर्क हो जाने का संकेत कर देता है। लूट के माल में टूंकिया को दूना भाग मिलता है। यदि इनका कोई साथी लूट मार के कार्य में मारा जाता है तो उसके परिवार के लोग उसका शोक खुलकर नहीं मना सकते।

मीनों में पदिया नाम का एक भंयकर डाकू हो गया है। मीना चरित्र की विशेषता व्यक्त करने के लिए उसकी जीवनी का थोडा सा अंश नीचे दिया ज़ाता है।

पदिया अगस्त के महीने में गिरफ्तार हुआ और नवम्बर सन् १८८७ में उसको फांसी का दंड मिला। गिरफ्तारी के पूर्व पदिया मारवाड तथा पास पडोस के प्रदेशों के लिए निरन्तर कई वर्षों तक एक भारी अभिशाप रहा। डाकुओं में शिरोमणि था। तांतिया मीन के समान अनुभवी किन्तु राविन हुड के समान महान था। पदिया ने अनेक डाके डाले जिनमें से ३३ के लिये उसने स्वयं स्वीकार किया और अपने व तांतियाँ के द्वितीय संस्करण के रूप में पुलिस को निरन्तर चकमा देता रहा। पुलिस ने डकैतियाँ रोकने के जितने उपाय किये पदिया ने पुलिस के वह सब उपाय विफल कर दिये। उसकी गति बडी रहस्यपूर्ण थी। वह एक क्षण में यहां तो दूसरे क्षण में कहीं और होता। कभी वह डाकू होता तो कभी साधु और दूसरे ही क्षण वह कुली बन जाता। वह विविध वेशों में समस्त मारवाड़ में विचरता रहता और अपना पीछा करनें वालों को कुत्ता बताता हुआ जहां अवसर पाता वहीं लूट मार कर बैठता। अन्त में एक दिन उसके पाप का घड़ा भर गया। वह जब गिरफ्तार किया गया तब उसकी अवस्था पचास वर्ष की थी एक बैडौल और कुरूप सा व्यक्ति था परंतु अत्यंत बल सम्पन्न और एकाक्ष। शरीर का व्यवस्थित मन चूल से उतरा हुआ किन्तु उत्साह में भरपूर अन्त:साल की मौलिकता का साक्षी। जिस प्रकार साहसी वीर पदिया था उसी प्रकार उसकी मां भी एक वीरांगना थी। उसने गिरफ्तार हो जाने के कारण पदिया की भर्त्सना की और उसकी क़ायरता के लिये पीछे हट गयी। वह अपने नेत्रों से अंगारे फेंकती हुई बोली तुम जब पकडे गए तब तुमने आत्महत्या क्यों न कर ली।

पदिया वीरता के साथ फांसी के तख्ते पर चढा। मृत्यु से पूर्व अपने अन्त का ध्यान बिलकुल भूलकर उसने खाया-पिया नाचा और गाया और मृत्यु के समय फांसी का फंदा अपने हाथों उसने अपने गले में लगाया। इस प्रकार

कई वर्षों से पश्चिमी राजपूताने के लिये राक्षस के समान उसके जीवन का अन्त हो गया।

समय की गति ने मीना जाति के चरित्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। अब इनकी एक बहुत बडी संख्या ईमानदारी और परिश्रमसे उपार्जित रोटी खाने लगी है और इनका चरित्र निरन्तर सुधरता जा रहा है और वह दिन दूर नहीं है जब मीने भी अन्य सुसभ्य नागरिकों के समान समुन्नत होकर राष्ट्रोन्नति में सहायक होंगे।

भील

मारवाड में भीलों की आवादी मारवाड की अन्य समस्त पहाडी जातियाँ की सम्मिलित गणना से भी अधिक है। यह मारवाड के लगभग समस्त परगनों में बसे हुए हैं किन्तु पर्वतों तथा जंगलों के निकटवर्ती ग्रामों में इनका विशेष आधिक्य है।

यह जाति देश में आर्यों के आगमन के पूर्व से यहां निवास करती है और कर्नल टाड के मतानुसार सर्व प्रथम यही लोग मेवाड पहुंचे थे। दक्षिण में आर्यों के प्रवेश से पूर्व के भीलों के चिह्न हमें वहां मिलते हैं। श्री रामचन्द्र के वनवास काल में दंडकारण्य में श्रीवत नाम की एक भील स्त्री ने अपने जूठे बेर उन्हें भेंट किये थे। बेर यद्यपि जूठ और अशुद्ध थे किन्तु उसकी भक्ति देखकर उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था। इस घटना पर एक भजन है: भिलनी के बेर सुदामा के तंदुल रुचि रुचि भोग लगायो। महाभारत के आदि पर्व कथा में अंकित है कि एक भील ने धनुष चलाने में अत्यन्त चमत्कारिक निपुणता प्राप्त कर ली थी, उसने कौरव और पांडवो के आदर्श गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक मूर्ति गुरु के स्थान पर स्थापित करके उसी के सम्मुख उस विद्या का अभ्यास किया था। संसार श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन ने भील की धनुर्विद्या पारंगता का समाचार सुनकर द्रोणाचार्य से गुरु दक्षिणा में उस भील के दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लेनें की प्रार्थना की। द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार कर उस भील से उसका अंगूठा दक्षिणा में मांगा और उस भील ने निःसंकोच भाव से काट कर उनके चरणों पर अर्पण कर दिया।

भील शब्द की उत्पत्ति द्राविडी भाषा के शब्द बिल्लू से जान पडती है बल्लू शब्द का अर्थ है धनुष्य। डाक्टर हन्टर ने कहा है कि भील अपनी उत्पत्ति महादेव बिल्लू से बताते हैं कहा जाता है कि एक बार महादेव जंगल में विचर रहे थे वहां उन्हें एक स्त्री मिली जिसके संयोग से उन्होंने अनेक संतानें उत्पन्न कीं उनमें से एक संतान अत्यन्त कुरूप और कुमार्गी थी उसने उपने पिता के बैल का बध कर डाला जिसके दंड स्वरूप वह घर से निकाल कर पर्वतों और जंगलो में भेज दिया गया था। उसी के वंशज भील कहलाए। भील का अर्थ है वहिष्कृत। वहिष्कृत अथवा जाति च्युत।

भील अनेक खांपों में विभक्त हैं। उनमें से कई खांपों के कुटुम्ब वसे हुए हैं जिनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

१ डावी	१२ लौटिया
२ मारगट	१३ कडवा
३ लेखिया	१४ अलिया
४ गेटार	१५ लिडिया
५ दूबल	१६ थेडेडा
६ गूंदी	१७ चुर
७ गोयल	१८ कलेदा
८ राण्ड	१९ करवा
९ परमार	२० नौचिया
१० चौहान	२१ सोलंखी
११ दैया	२२ भाटी
	इत्यादि इत्यादि

उपरोक्त खांपों में से चार खापवालों का दावा है कि वह असली हैं उनमें कोई संमिश्रण नहीं है किन्तु अवशिष्ट में राजपूती तत्वों का रक्त मिश्रित है और कुछ या तो एक साथ बसने के कारण अथवा चोरी डाकों में एक साथ गुटबंदी रखने के कारण विभिन्न छोटी छोटी खांपों के रहने पर भी एक साथ एक दल में बंधे हुए जान पडते हैं।

ये शाक्त मत के अनुयायी हैं और चामुंडा महादेव तथा शीतला चेचक की देवी के प्रति भाव भक्ति रखते हैं। पाबूजी को भी बहुत मानते है। प्रत्येक भील के घर में पाबू के नाम का एक थान रहता है। मारवाड के अनेक स्थानमें पाबू के मन्दिर बने हुए है जिनमें हाथ में माला लिये घोडे पर सवार एक पुरुष की मूर्ति प्रतिष्ठित है। भील अपनी भाषा में पाबूजी की वीरता के अनेंक गीत गाया करते है। किन्तु वह गीत सर्व साधारण की समझ में नहीं आते। इसलीए यह कहावत चल पडी है :

काई चरण री चाकरी काई आरण री राख।
काई भील रो गांवणो काई साटियें री साख ॥

अर्थात् चारन की नौकरी, अरणी काठ की राख, भीलों कें गीत और साटियें की साक्षी (साटिया एक नीची जाति का नाम है) नगण्य है।

भील पाल तानकर एकत्र रहते हैं। यह पाल अलग-अलग बिखरी हुई झोंपड़ियों के समान दिखाई देते हैं। यह लोग अपने स्थानीय चौधरी अथवा जाति के मुखिया के नेतृत्वाधीन हैं। इनके समस्त झगड़े आपसी पंचायतों द्वारा तय हो जाते हैं। कदाचित कोई पंचों की आज्ञा की अवहेलना करे तो उसे ग्यारह

रुपये तक का दंड मिल सकता है। इन लोगों में अंध विश्वास बहुत होता है। मृत प्रेतों पर दृढ़ विश्वास अधिक होता है। और उनके प्रभाव से सुरक्षित रहने के निमित्त यह अनेक प्रकार के गंडे तावीज धारण करते हैं। चुड़ैलों पर भी इनका बड़ा विश्वास है। इनके प्रत्येक बड़े पाल में एक न एक भोपा इनके साथ रहता है जो चुड़ैल निकालने का काम किया करता है। शकुनों पर तो यह लोग धार्मिक दृढ़ता के साथ विश्वास रखते हैं और जाते समय किसी भील का मार्ग बिल्ली काट जाय तो वह एक बार अपने घर अवश्य लौट जायगा।

भीलों की शपथों के सम्बन्ध में लेफ्टिनेंट माइल्डमे का कथन है कि कुछ ऐसी शपथें हैं जिन्हें भंग करने का साहस कभी किसी भील को नहीं हो सकता। अनेक लोक कुत्ते की शपथ खाते हैं किन्तु भील की शपथ होती है कि यदि मैं झूठ बोल रहा हूं तो कुत्ते पर आनेवाली विपत्तियां मेरे ऊपर पडें और यह शपथ वह कुत्ते के मस्तक पर अपना हाथ रखकर खाता है। भील एक दूसरी और शपथ ज्वार के कुछ दाने अपने हाथों में लेकर और हाथ आकाश की ओर ऊँचा उठाकर खाता है और कहता है कि यदि वह सत्य के अतिरिक्त कुछ और बोल रहा हो तो जो अन्न वह खाता है उसके विनाश का कारण बने। भील एक तीसरी शपथ और भी अपने पुत्र के मस्तक पर हाथ रख कर लेता है। अनेक अवसरों पर शपथ लेते समय शपथ लेनेवाला अपनी लिखित स्वीकृति देता है कि कदाचित् अमुक समय के भीतर उसे कोई चोट लगे अथवा उसे कोई असाधारण घटना घटे तो वह अमुक बात का दोषी समझा जाय।

भील बच्चे के जन्म के पश्चात् उसका जो नाम रखते हैं उसमें उसके जन्म की घडी और तिथि सन्निहित होती है और बहुधा उसके नाम में उसके जन्म का दिवस मात्र अन्तर्हित होता है।

भीलों में पुत्र का विवाह पिता का उत्तरदायित्व समझा जाता है। वही अपने पुत्र के लिये वधू खोजता है और कन्या के माता पिता के साथ बात-चीत करता है। विवाह में कन्या के पिता का जो धन व्यय होता है उसका चतुर्थांश पुत्र का पिता कन्या के पिता को देता है। पहले सगाई पक्की हो जाती है किन्तु विवाह उस समय होता है जब कन्या युवा अवस्था में पदार्पण कर लेती है। उनके विवाहों में भाग लेनें वाले उनके अपने पुरोहित होते है किन्तु यदा कदा कन्या का कोई वयोवृद्ध सम्बन्धी भी पुरोहित का कार्य सम्पादित कर देता है। विवाह के फेरे सम्पन्न हो जाने के पश्चात् उसे उसका प्रत्येक सम्बन्धी बारी-बारी से उसे अपने कंधो पर चढ़ाकर जब तक वह थक न जाय तब तक नाचता है। भील अपनी पत्नी को सदा सन्देह की दृष्टि से देखता है और पत्नी पुरुषों के साथ व्यवहार करने में बडी सतर्क रहती है।

भीलों की विधवाएँ भी नाता अथवा करेवा कर सकती हैं। बडे भाई की मृत्यु के पश्चात् उससे छोटा उस स्त्री को अपनी पत्नी बना सकता है परन्तु छोटे

भाई की विधवा को बडा भाई अपनी पत्नी नहीं बना सकता। अतः वह विधवा या तो अपने पिता के घर लौट जाती है अथवा किसी दूसरे गोत्र में दूसरे पति की खोज करती है।

भील अपने शव उलटे रख कर जलाते हैं किन्तु शिशु, कुमारी कन्यायें तथा चेचक से मरे लोग गाड दिये जाते हैं। पर यदि कुछ समय तक किसी और की मृत्यु उसके यहां उस रोग द्वारा नहीं होती तो गाडा हुआ शव खोद कर निकाला जाता है और उसे जला दिया जाता है। उनका विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा उन स्थानों में मंडराया करती है जहां वह जीवन काल में रहता है। बहुधा मृतक का कोई-कोई सम्बन्धी मृत्यु के थोडे ही दिनों पश्चात् घोषित करता है कि स्वप्न में उसे पता लगा है कि पहाडी के अमुक स्थान पर मृतक की आत्मा उपस्थित है। मृतक के सम्बन्धी इस समाचार पर उस स्थान पर एक चबूतरे का निर्माण करते है जिस पर शराब और चावल रखते हैं। मृत्यु के दस अथवा बीस दिनों के पश्चात् उसके सम्बन्धी उत्तराधिकारी के घर पर जमा होते हैं। उस पर चालीस रुपये की मदिरा उसे मंगाकर उन्हें पिलाना पडता है। वह एक डेग भर अन्न भी पकने के लिए अग्नी पर चढाता है। जब तक अन्न पकता है इस बीच में वह लोग एक दूसरे की हजामत बनाते तथा शराब पीते हैं। अन्न पक जाने पर प्रत्येक को ढाक का एक पत्ता भर कर अन्न दिया जाता है जिसे लेकर वह विदा हो जाते हैं।

भील की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री और पुत्र उसकी सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं किन्तु यदि उनमें से कोई उसके न हो तो उसके भाई। कन्याओं तथा स्त्रियों को उनके नियमों के अनुसार कोई अधिकार नहीं होता।

भील स्वयं मोटा वस्त्र पहनते हैं और उनके बच्चे कई वर्ष तक नितान्त नंगे रहते हैं। वह कानों में बालियों के पहनने के बड़े शौकीन होते हैं। स्त्रियाँ अधिकांश पीतल के गहनें पहनती हैं।

हिन्दू वर्ण व्यवस्था में भीलों का स्थान अत्यन्त निकृष्ट है। वह केवल मेहतरों अथवा भंगियों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। डाक्टर हंटर का कथन है कि भीलों को जब अन्न नहीं मिलता तब वह जंगली वृक्षों के फलों तथा जड़ों पर गुजारा करते हैं। वह अनेक प्रकारके कीड़े अपनी मृत्यु से मरे हुए पशु और कहीं-कहीं गाय का मांस भी खाते हैं।

कुछ दिनों पूर्व भील चोरी और डकैती किया करते थे किन्तु अब वह शिकारियों, हरकारों तथा नौकरों का धंधा करते हैं तथा कृषि भी करने लगे हैं। वह टोकरियाँ गूंथने तथा घास बेचने का भी रोजगार करते हैं। कुछ ग्रामों में रूई भी धुनते हैं।

एक जाति भिलाला नाम की भी है। जो राजपूतों तथा भीलों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई है परंतु मारवाड़ में यह लोग नहीं हैं। यह केवल विंध्य की पर्वत श्रेणी में ही बसे हैं। भिलाला भीलों के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते और भिलाला जाति की स्त्रियाँ भील स्त्रियों के समान नाता अथवा करेवा नहीं करतीं।

ग्रासिया

यह जाति केवल गौड़वाड़ जिले के सिवाना, कारों, गौरिया तथा अरावली श्रेणी के निकट दंडीवेरी ग्राम में बसे हैं। यह मेवार और सिरोही दोनों स्थानों में अकेले इसी नाम से विख्यात हैं इनका दूसरा नाम नहीं है। गुजरात और मालवा में भी इस नाम की जाति है परन्तु इनसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह लोग जाति के राजपूत हैं तथा मालवा और गुजरात के ग्रासिये राजपूताना के भूमियों के समान हैं।

ग्रासिया शब्द की उत्पत्ति ग्रास से है जिसका अर्थ है गुजारा अथवा ग्रास या कौर। कर्नल टाड इसकी उत्पत्ति कैलटिक भाषा के शब्द ग्वार के साथ जोड़ते हैं जिसका अर्थ नौकर है। लोग इनको राजपूतों तथा भीलों से उत्पन्न सन्तति क्रम में मानते हैं। परन्तु यह लोग इसको अस्वीकार करते हैं। स्थानीय कहानी तो यह है कि सन १३८८ ईस्वी के लगभग तुरकों से हार कर जालौर का चौहान राजा कानडदेव पहाड़ों में चला गया था। वहाँ उन्होंने भीलों को जीतकर अपना शासन जमाया तथा क़ानडदेव के पुत्र को मैरपुर का राव बनाया और वह गुजारा अथवा ग्रास पर वहीं बस गया। इसलिए उसके वंशज राजपूत ग्रासिया कहलाने लगे। समतल भूमि के निवासी राजपूतों ने इनको नीची दृष्टि से देखा और इनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना छोड़ दिया इस प्रकार इस नवीन जााति का जन्म हुआ। इनके अपने गोत्र अलग हैं। यह राजपूतों से हीन तथा भीलों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। सीसौदिया, पंवार, सौलंखी, परिहार तथा मौरी जो अपना विकास यदुवंश से बताते हैं उन सब राजपूती खांपों के नाम गोत्र इनमें पाये जाते हैं।

शिव, भैरव और देवी इनके प्रधान देवता हैं। इनके अपने पुरोहित होते हैं जिनको मोपा कहते हैं किन्तु ब्राह्मण भी इनके कामों में भाग लेते हैं। यह सफेद रंग के सब पशुओं को पवित्र मानते हैं वह चाहे गाय हो अथवा बकरी या भेंड। इसका कारण यह बताया जाता है कि एक समय पर्वत के उस खंड में जहाँ यह लोग बसते हैं आग लग गई और अनेक पशु उसमें जलकर मर गये, परन्तु एक बैल अधजला रहा और पहचाना न जा सका कि वह कौन पशु है अत: यह लोग उसे काट कर खा गये। अन्त में जब भेद खुला तब इन लोगों को बहुत पाश्चात्ताप हुआ और इन्होंने उस समय सफेद रंग के सब पशुओं को पवित्र मानने का प्रण किया।

मीना

भील
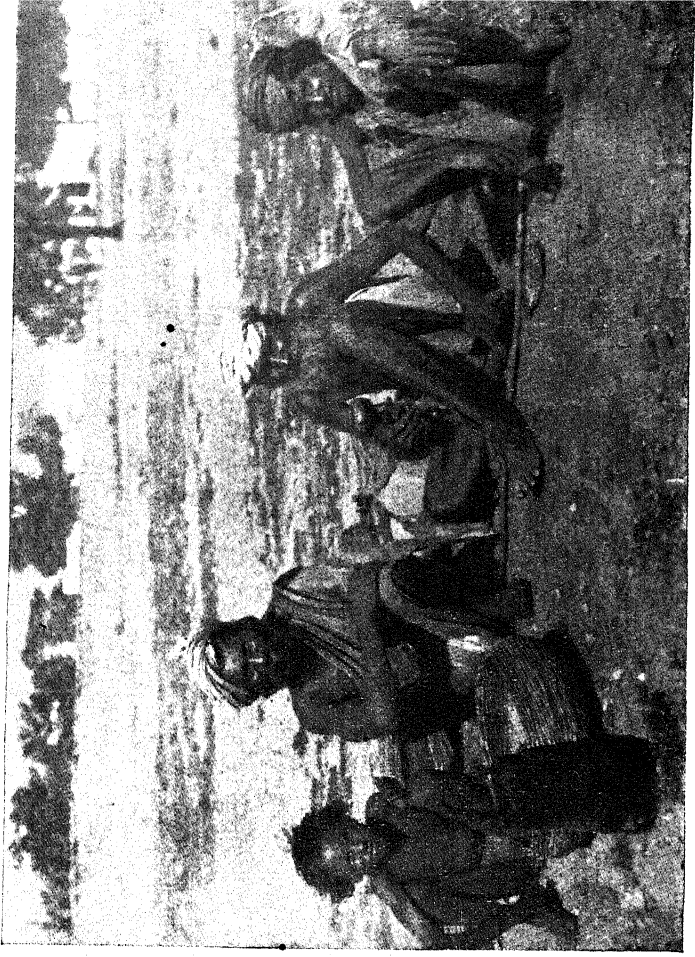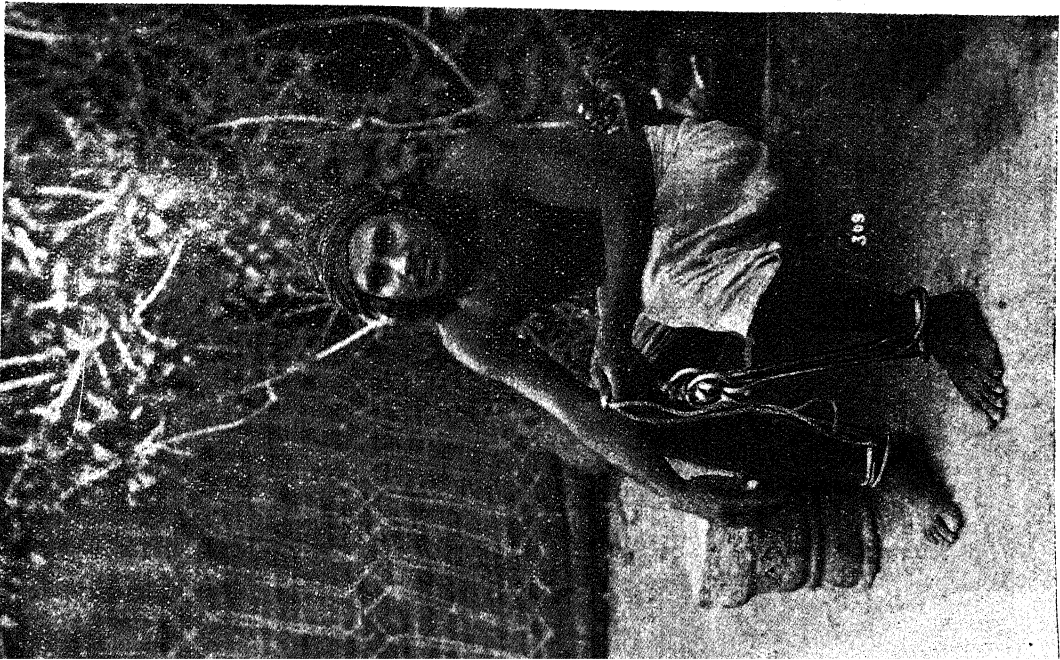
ग्रासिया

होली और गनगौर इनके प्रधान त्यौहार हैं। इस अवसर पर स्त्री तथा पुरुष दलबद्ध होकर नाचते हैं और खुशी मनाते हैं। स्त्रियाँ जौ के पौदे अपने सिर पर रखकर तथा चक्कर बनाकर नाचती हैं। यह नाच घुमकर कहलाता है। पुरुष इनके चारों ओर अपने ढोल बजाकर नाचते हैं। यह गीत गाते हैं उनका साम्य भीलों की बोली के अतिरिक्त और किसी से नहीं है।

ग्रासिये भी शकुन विचार पर बहुत विश्वास रखते हैं। जब वह कोई कार्य करना चाहते हैं तब यह गेहूं, जौ अथवा मक्का लेकर भैरव अथवा माताजी के मन्दिर में जाकर उसका भोग चढ़ाते हैं और जो थोड़ा प्रसाद पुजारी इन्हें देता है यह उसके दाने गिन कर देखते हैं यदि यह अनुकूलता देखते हैं तो वह कार्य करते हैं अन्यथा नहीं।

ग्रासियों में विवाह की तीन रीतियाँ प्रचलित हैं। प्रथम मोरवंधिया। जिसमें अन्य हिन्दुओं के समान ब्राह्मण द्वारा फेरे चौरी और मौर (सेहरा) बाँधना आदि सब रस्में हैं।

दूसरी का नाम है पहरावना। इसमें नाम मात्र के फेरे होते हैं और ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं होती और तीसरी विधिका नाम है ताणना। इसमें सगाई नहीं होती तथा चौरी और फेरों की रस्में भी नहीं होतीं। इसमें वर अपनी वधूको स्वयं पसन्द करता है और जिस कन्या के साथ वह विवाह करना चाहता है उस कन्या को जंगल में पशु चराते समय छू देता है इसके पश्चात् इसकी सूचना वर अथवा वरके माता-पिता कन्या के माता-पिता को दे देते हैं। थोडे दिनों के पश्चात् कन्या के माता-पिता ग्राम के सेलौत अर्थात् पंचों को एकत्र करते हैं जो दापा अर्थात् वैवाहिक भेंट निश्चय करते हैं। इस भेंट में साधारणतया बारह बछड़े और बारह थान कपड़े निश्चित होते हैं जो वर की ओर से कन्या के पिता को दिये जाते हैं। प्रत्येक पंच को एक बछड़ा तथा एक थान कपड़ा दिया जाता है। इसके पश्चात् वर कन्या को अपनें घर ले जाता है। बहुधा जंगल में कन्या को स्पर्श करने के स्थान पर वर कन्या को बिना किसी को सूचना दिये लिवा जाता है कन्या के माता-पिता उसका पता लगाने के लिए कुछ साथी लेकर उसकी खोज में निकलते हैं। कन्या का पता पा जाने पर कन्या पक्ष के लोग वर के मकान पर पत्थर फेंकते हैं। जिसके पश्चात् पंच वहाँ पहुंच जाते हैं और दाप निश्चित कर दिया जाता है जिसकी अदायगी दो पीढ़ियों तक भी की जा सकती है।

ग्रासियों में नाता अर्थात् करेवा भी होती है। तथा एक विवाहित स्त्री के साथ भी उसके जीवित पति को दौपा देकर विवाह किया जा सकता है। चाचा भतीजे की स्त्री के साथ विवाह कर सकता है।

ग्रासियों में शव का दाह किया जाता है और बारहवें दिन मकाई का दलिया तथा मांस बिरादरी को खिलाया जाता है।

ब्राह्मण

मारवाड़ की सैनिक तथा कृषक जातियों का जैसा संक्षिप्त वर्णन पूर्व परिच्छेद में किया गया है वैसा ही वर्णन इस द्वितीय परिच्छेद में १. हिंदुओं के ब्राह्मण २. मुसलमानों के सैयद तथा ३. जैनियों के जती इत्यादि का एक ही स्थान पर किया जायगा। क्योंकि अपने समाज मे इन तीनों का स्थान एक-सा है।

१ छैनियात
२ पुष्करणा
३ श्रीमाली
४ पुरोहित
५ डाकौत
६ जोशी
७ आचार्य
८ अन्य पुरोहित

इन सब की उत्पत्ति उत्थान-पतन तथा गोत्रों का वर्णन इस पुस्तक के लिए अनावश्यक समझ कर इतिहासकारों के लिए छोड़ा जाता है।

हिन्दू जाति में ब्राह्मणों के स्थान की उच्चता और श्रेष्ठता अन्य जातियों की अपेक्षा उनकी बौद्धिक उत्कृष्टता और एक हिन्दू के जीवन में उनके प्रति आदर की जो भावना है इसमें किसी प्रकार के विवाद के लिए स्थान नहीं है। मि० टाबर्टसन के मतानुसार किसी बच्चे का जन्म, नामकरण, सगपन अथवा विवाह, किसी व्यक्ति की मृत्यु अथवा दाह-संस्कार, किसी प्रकार की यात्रा अथवा किसी शुभ दिन का निराकरण, किसी घर का निर्माण, किसी महत्वपूर्ण कृषि कार्य का आरम्भ अथवा फसल की कटाई बिना ब्राह्मण के खाये और खिलाये नहीं होती। जमीन की उपज का एक भाग ब्राह्मण के निमित्त पृथक् कर दिया जाता है और रोज अथवा स्वास्थ्य, दु:ख अथवा सुख समस्त अवसरों पर ब्राह्मण को भोजन कराना कर्तव्य पालन समझा जाता है।

पादड़ी एम० ए० शैरिंग की सम्मति में ब्राहमणों की समस्त जातियाँ सप्त ऋषियों की संतान हैं। प्रत्येक ब्राह्मण जाति के नाम के साथ एक ऋषि का नाम सम्बद्ध है। तदनन्तर उस प्रत्येक जाति में अनेक गोत्र हैं। ब्राह्मणों में नवीन गोत्रों की सृष्टि में अन्तर्जातीय विवाह ने बड़ा काम किया है और मनु के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि अन्य जातियों की स्त्रियों के साथ ब्राह्मणों के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप निरन्तर नवीन जातियों की उत्पत्ति होती आ रही है। वास्तव में भौगोलिक विचार से ब्राह्मणों के केवल दो विभाग हैं। वह लोग जो विन्ध्य पर्वत श्रेणी के उत्तर के प्रदेशों में बस गये थे, गौड़ कहलाये और वह जो दक्षिण की ओर चले गये द्रविण नाम से परिचित हुए। इन दो में पुन: प्रत्येक के पाँच विभाग हुए। पहले विभाग में (१) सारस्वत (२) कान्यकुब्ज (३) गौड़

(४) मैथिल (५) उत्कल यह पंच गौड़, और दूसरे विभाग में (१) द्रविण (२) तैलंग (३) करनाटक (४) महाराष्ट्र (५) गुर्जर यह पंचद्राविड़।

मारवाड़ में दोनों वर्ग के ब्राह्मण बसे हुए हैं। इनका कर्त्तव्य पवित्र वेदों का पढ़ना, पढ़ाना तथा धार्मिक योगादि कर्मकांड सम्पन्न कराना था। किन्तु अब यह प्रत्येक व्यवसाय में हस्तक्षेप करने वाले हो गये हैं। सम्प्रति कोई ऐसा धंधा नहीं जो ब्राह्मण न करते हों। मारवाड़ में ब्राह्मण प्रधानत: कृषक हैं अथवा राज्य की नौकरी में हैं।

मारवाड़ में बसनेवाले समस्त ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों में परस्पर विवाह व्यवहार को छोड़कर सब एक समान हैं। इन लोगों में सगाई की प्रथा का रूप भिन्न है और नाता अथवा करेवा प्रचलित नहीं है।

मृत्यु पर इनकी सम्पत्ति मृतक के पुत्रों में समान भागों में विभक्त हो जाती है। पुत्री के पुत्र को उत्तराधिकारी के रूप में कोई अधिकार नहीं होता। किन्तु श्रीमाली ब्राह्मण नि:संतान होने पर उसे दत्तक बना लेते हैं।

छैनियात

ब्राह्मणों की छैनियात की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि प्राय: दो सौ वर्ष पूर्व जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए एक अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ में उन्होंने विभिन्न वर्गीय समस्त ब्राह्मणों को आमंत्रित किया था तथा उनका एकीकरण करने के लिए एक साथ बैठकर भोजन करने का परामर्श दिया था। कितने ही ब्राह्मणों ने महाराजा का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया किन्तु महाराजा इस सुअवसर पर ब्राह्मणों में कुछ-न-कुछ सुधार करने के लिए दृढ़ इच्छुक थे। अत: उन्होंने अपने प्रान्त के ब्राह्मणों को अपने प्रबल अनुरोध द्वारा एक पंक्ति में भोजन करा दिया। उस सहभोज में इस प्रकार उपरोक्त छैनियात (खांप) के ब्राह्मण सम्मिलित हुये थे। अतएव उनका सामूहिक नाम छैन्याती ब्राह्मण प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार सहभोजन करने पर भी उन्होंने अपनी प्रथाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया और आज भी वह अपने पूर्व रूप में चली आ रही है। वह सब एक साथ बैठ कर कच्चा भोजन अवश्य कर लेते हैं किन्तु उनमें परस्पर पुत्र कन्याओं का विवाह व्यवहार नहीं होता। मारवाड़ के ब्राह्मणों ने भी इस यज्ञ में भाग लिया था। इसलिए यहाँ भी छैनियाती प्रणाली का प्रचार हुआ। किन्तु गत ५० वर्षों से छैनियाती ब्राह्मणों ने अपने विभागान्तर्गत गौड ब्राह्मणों की जाति को बहिष्कृत कर दिया है क्योंकि उन लोगों ने सिखवाल ब्राह्मणों के साथ जो महाजनों के हाथों की बनी रोटी खाते हैं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।

दायमा

छैनियात ब्राह्मणों में दायमों की संख्या सबसे अधिक है। दायमा कुलके लोग अपनी उत्पत्ति दधीचि ऋषि से बताते हैं। मारवाड में इनकी अनेक खांपें नागोर जिले के ग्रामों के नाम से प्रसिद्ध हैं। आसौपा कासेलियां, खटोड, ईनाडियाँ, डोबडिया और डीडवानियाँ इत्यादि सब इसी प्रकार के नाम हैं।

अर्थात् ग्रामों के नाम पर उन्होंने अपनी खांप का नाम धारण किया। यह स्मार्त्त धर्म अर्थात् पंचायतन पूजा मानते हैं और शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य इन पाँचों देवताओं को एक साथ पूजते हैं। इनकी कुल देवी का नाम दधिमक्षी है और मन्दिर नागौर जिले के ग्राम में बना हुआ है। प्रत्येक आश्विन मास में इस देवी के नाम पर वहाँ गोठ मांगलौद नामक मेला भरता है।

इनके विवाह तथा मृतक कर्म की प्रथाएँ अन्य ब्राह्मणों की ही भाँति हैं। किन्तु कहीं कहीं यह लोग वृद्ध के शव को अर्थी पर बिठाकर श्मसान ले जाते हैं लेटाकर नहीं।

दायमा ब्राह्मण मांस नहीं खाते और ऐसे कुएँ का पानी नहीं पीते जो मसजिद के निकट अवस्थित हो। इनकी स्त्रियाँ घर से बाहर निकलने के समय दो दुपट्टे ओढती हैं तथा घाघरे अथवा पेटीकोट के ऊपर कपड़े का एक अधिक टुकड़ा बाँधती हैं। यह अन्य जाति की स्त्रियों की भाँति बाहर से पानी भरकर नहीं लातीं तथा हाथी दाँत के अतिरिक्त किसी और चीज का बना चूडा नहीं पहनतीं।

दायमा जाति के लोग पढ़े लिखे होते हैं। यह वेद पढ़ते हैं तथा कथाएँ कहते हैं। कासलियों, आसोपों और खटाडों में पंचायत का रिवाज़ है। उनके वयोवृद्ध लोग बँधा कहलाते हैं। आसोपा ब्राह्मणों को नौकरी अधिक पसन्द है। मराठों के शासन में इन्होंने दरबार के वकीलों की महत्वपूर्ण नौकरियाँ की हैं तथा देहली के अंग्रेज रेज़ीडेन्टों के पास भी नौकर रहे हैं।

गौड़

गौड़ ब्राह्मण यद्यपि ब्राह्मणों के अनेक वंशों के विकास केन्द्र अथवा स्रोत हैं किन्तु मारवाड़ खास में इन लोगों की संख्या अत्यन्त अल्प है। इनका कथन है कि ये बंगाल के गौड़ों में से आये हुए हैं किन्तु सर. एच. एम. इलियट यह बात असम्भव ही मानते हैं कि इनका सम्पूर्ण वंश अपना स्वदेश छोड़ गया हो तथा कनौजियों का वंश देश फांदकर दूसरे सिरे पर ज़ा बसा हो। पादड़ी एम. ए. शेरिंग गौड़ों की शाखा के प्रकरण में गौड़ तथा ब्राह्मणों की उस घटना का हवाला देते हैं जब महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार इन्होंने राजा जनमेजय को सर्पों के विनाश के लिए यज्ञ करवाया था और यह परिणाम निकालते हैं कि इनका प्रधान
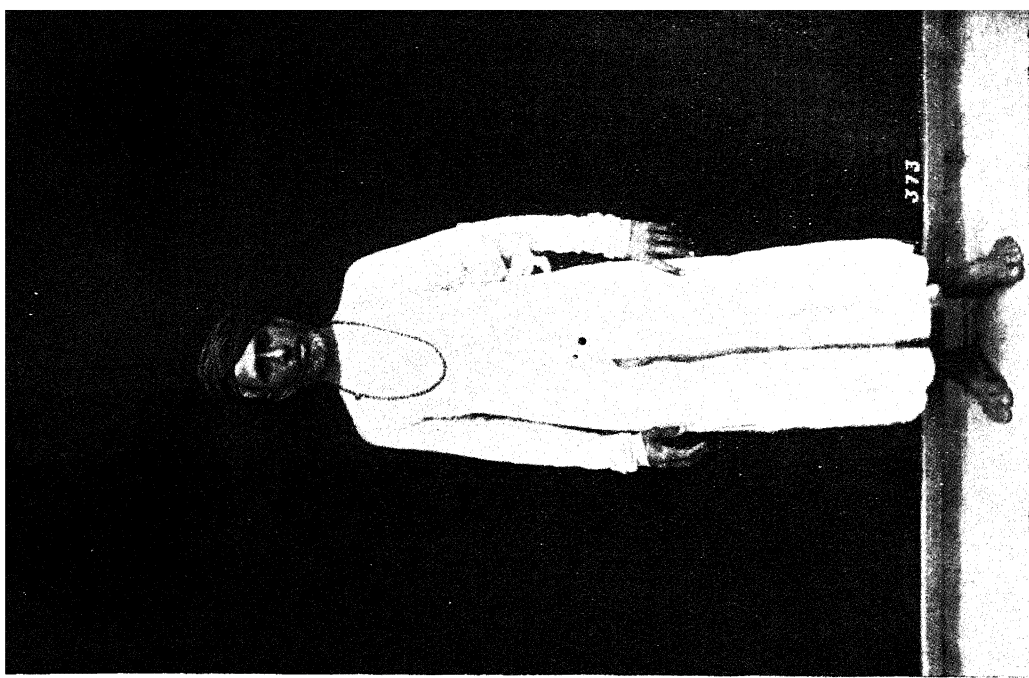
गौड ब्राह्मण

दायमा ब्राह्मण
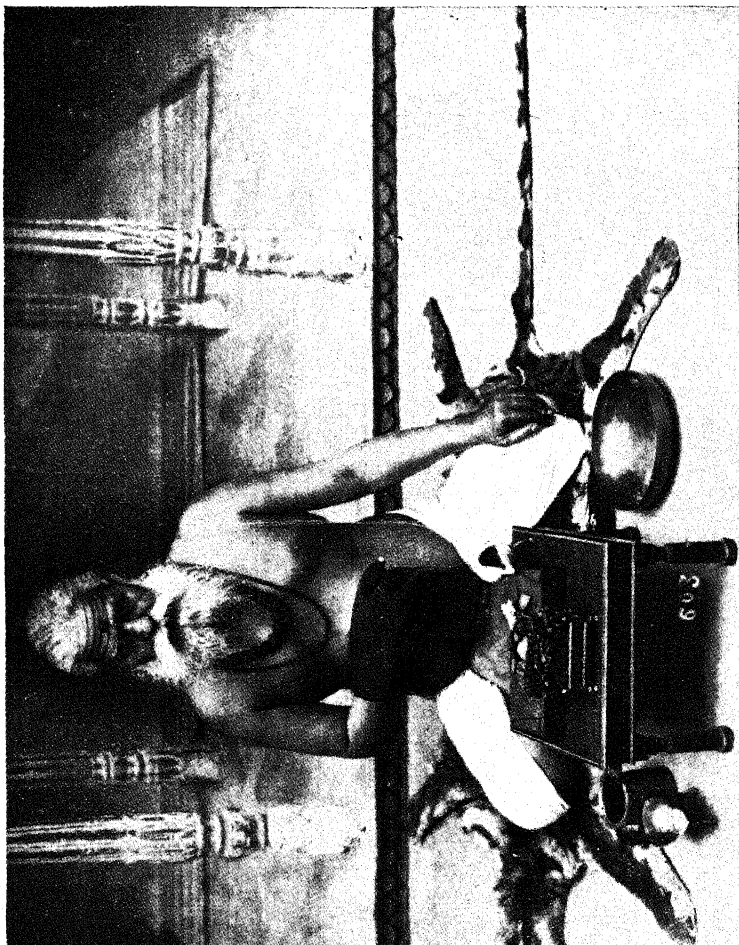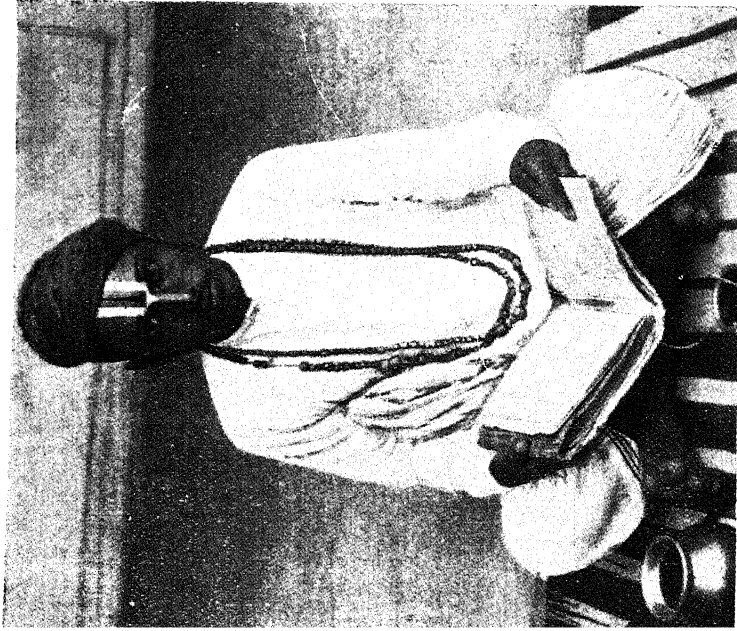
गूजर गौड़ ब्राह्मण

पारिक ब्राह्मण

देश पंजाब प्रान्त के हरियाना स्थान तक था। जनरल कनिंघम का मत है कि गौड़ गौड का प्राचीन नाम है किन्तु सर जार्ज कैम्पवेल ने अपनी पुस्तक इथनालौजी आफ इडिया में लिखा है कि गौड़ शब्द सारस्वत ब्राह्मणों की प्रधान शाखा गग्गर अथवा घरगर का संक्षेप मात्र है। यह गालव ऋषि की सन्तान हैं तथा अकबर के शासन काल में आम्बेर-के राजा मानसिंह के साथ बंगाल से यहाँ आये हैं। वह इनकी १४४४ शाखाएं बताते हैं•जिनमें बहुत थोडी मारवाड में बसी हुई हैं। इनका धर्म वैष्णव है। यद्यपि इनका कथन है कि यह बंगाल से आये, किन्तु यह मांस मछली कुछ नहीं खाते। यह लोग अपनी जाति के नियमों की रक्षा में अत्यन्त आग्रह रखते हैं।

गूजर गौड

गूजर गौड़, गौड़ ब्राह्मणों की ही एक शाखा है। यह अपनी उत्पत्ति गौतम महर्षि से मानते हैं। मारवाड़ का गौरई ग्राम इनका देश था। यह गाँव गुजरात के निकट है इसी से इनका नाम गूजर गौड़ पड़ गया। इनके चार गोत्र और चौरासी खांप हैं। यह प्रधान रूप से शिव के उपासक हैं, किन्तु कुछ लोग विष्णु को भी मानते हैं। यह माहेश्वरी महाजनों के पुरोहित हैं। यह लोग गौड़ ब्राह्मणों के साथ अन्तर्विवाह नहीं कर सकते यद्यपि इनकी रीति रिवाज गौड़ों के ही समान है।

पारिक

पारिक ब्राह्मणों की उत्पत्ति पराशर ऋषि से हुई है। मारवाड़ में यह उत्तर पश्चिमीय भागों से आये और आदि में यह सांभर तथा नागौर में बसे। इन ब्राह्मणों में १०३ खांपें हैं जिनमें से अनेक मारवाड़ में बसी हुई हैं। यह विष्णु के उपासक और वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। अन्य ब्राह्मणों तथा इनकी वैवाहिक रीतियों में यह अन्तर है कि ये लोग वधू को फेरों के पश्चात् चूड़ा पह-नाते हैं तथा इन लोगों में निश्चित की हुई सगाई भंग कर सकने का भी रिवाज है। इनका प्रधान व्यवसाय तो पूजा पाठ है किन्तु ग्रामों में बसनेवाले कृषि अथवा नौकरी भी करते हैं।

खंडेलवाल

यह समझा जाता है कि खंडेलवाल नाम के ब्राम्हण खंडेल महर्षि की सन्तान हैं। तथा जयपुर प्रान्त स्थित खंडेला नामक ग्राम का नामकरण इन्हीं महर्षि के नाम पर किया गया था यह लोग उसी ग्राम के निवासी हैं। इन्हीं दोनों आधारों पर इनका नाम भी खंडेलवाल हुआ। इनकी ५२ खांपें हैं किन्तु मारवाड में बहुत थोडी बसी हुई हैं। यह विशेषतया कृषक हैं तथा अनेक व्यक्ति महाजनों की नौकरी करते हैं।

सारस्वत

सारस्वत ब्राम्ह्णोंका का आदि निवास स्थान पंजाब है। पंजाब में सरस्वती नाम की एक नदी है और उसी नदी के नाम पर यह लोग सारस्वत कहलाये। किन्तु मारवाड में इनकी उत्पति के सम्बन्ध में एक दूसरी ही दन्तकथा प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक समय एक ब्राह्मण के एक कन्या थी। उस कन्या का नाम सरस्वती था। उस कन्या का विवाह दधीचि महर्षि के साथ हुआ था। उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम सारेश्वर था सारस्वत ब्राह्मण उसी दधीचि पुत्र सारेश्वर के वंशज हैं। पर कहानी कल्पना मात्र है। अस्तु:

मारवाड में जाने के पूर्व सारस्वतों का निवासस्थान कन्नौज था। राव सियाजी के कन्नौज छोड़कर मारवाड आने के समय यह लोग भी उन्हींके साथ आ गये थे। बीकानेर से मालानी गये वहां यह जाटों के पुरोहित बन गये। सारस्वतों की ५२ खांपें हैं। जिनमें निम्नलिखित खांपें मारवाड में आबाद हैं:

१. बदर	२. बडओझा	३. ल्होडा ओझा	४. गुडगीला
५. पाठक	६. जोशी	७. मोढ	८. तूगणायत

यह शिव के उपासक हैं और आचरण में उदार हैं, यह वैश्य, क्षत्रिय तथा कायस्थों के साथ भोजन कर लेते है तथा तम्बाकू भी पी लेते हैं। पहाडों पर बसनेवाले सारस्वत मांस भी खा लेते हैं। मारवाड में यह लोग कृषि करते हैं तथा दान दक्षिणा पर जीवन निर्वाह करते हैं। राठोडों की अक्रूर शाखा के पुरोहित सेवडा ओझा सेवंगल्हाग मथेरणा भेंद्वा खांपों के सारस्वत हैं। इनकी पुरोहिताई के सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है:

सदा पुरोहित सेवडा ओझा सेवगल्होड
भट्ट मथेरण मद्दग धुर जाचक राठोड ॥

पुष्करणा

ब्राम्ह्णों की यह जाति पञ्च द्रविडों की अन्यतम शाखा गुर्जरों की एक उपशाखा है। मिस्टर जान विलसन का कथन है कि अजमेर के निकट पुष्कर अथवा पोकर नाम की झील है उसी झील के नाम के आधार पर इनकी जाति का भी नामकरण हुआ है। कर्नल टाड के मतानुसार पहले यह लोग बेलदार थे। इन्होंने प्रसन्न होकर इनको बेलदार से ब्राम्ह्ण बना दिया। तथा पुष्करणा आख्या प्रदान की। तद-नुसार यह पुष्करणा ब्राम्ह्ण प्रसिद्ध हो गये। इनका धार्मिक चिह्न कुदाली है। यह उसकी पूजा करते हैं। कुदाली गैंती की भांति ज़मीन खोदने का एक औजार होता है। इससे भी पूर्व काल में इनके बेलदार होने का प्रमाण मिलता है। मारवाड के ब्राम्ह्ण इनकी उत्पति की इन कहानियों पर विश्वास नहीं करते। उनका मत है कि यह सिंध

के पूर्व निवासी हैं। एक बार श्रीमाल में जो अब मीनमान कहलाता है तथा जसवन्तपुर जिला के अन्तर्गत है दूर-दूर के ब्राम्हण भृगु महर्षि के स्थान पर भगवान लक्ष्मी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए एकत्र हुये थे। उसी अवसर पर इन के प्रतिनिधियों का भी सिंध से प्रथम बार मारवाड में आगमन हुआ। उस समारोह में सबसे प्रथम पूजन करके दक्षिणा देने के प्रश्न पर मतभेद हो गया। गौतम ऋषि के भक्त चाहते थे कि प्रथम गौतमजी को पूजन द्वारा सत्कृत किया जाय। उसके पश्चात् दूसरों का पूजन हो। किन्तु ब्राम्हणों ने इसपर आपत्ति की, अतएव गौतम के अनुयायी सिंध के समागत इनके विरुद्ध खडे हो गये [परिणाम यह हुआ कि वह स्थान छोड कर चल दिये।] इस अपमान का बदला लेने के लिए वे शाल क्षेत्र में तपस्या करने लगे। वहां सारका नामकी एक राक्षसी रहती थी। वह उनकी सहायता में प्रस्तुत हो गयी।

उसने सिंधी ब्राम्हणों की ओर से प्रतिशोध लेना प्रारम्भ किया। और श्रीमाल क्षेत्र की ब्राह्मण कन्याओं को उनके विवाह के समय उठा ले जाने लगी। कुछ समय के पश्चात् श्रीपुंज नाम के एक राजा ने दोनों दल के ब्राम्हणों में समझौता कराया तथा इस धार्मिक विवाद को सुलझाने में जो सहायता सिंधी ब्राम्हणों ने दी उसी के उपलक्ष में इनको पुष्करणा की उपाधि मिली। पुष्करणा शब्द की उत्पत्ति पुष्टि से है तथा पुष्टि का अर्थ हुआ समर्थन-सहारा। सारका राक्षसी का नाम उष्टवाहिनी होने के कारण ऊंटा देवी पड गया था। पुष्करणा इसको अपनी कुल देवी समझ कर इसी की आराधना करते हैं।

पुष्करणे सिंध से मारवाड आये। सिंध तथा मारवाड की भाषाओं में निकटतम सामञ्जस्य है। पुष्करणा शरीर के लम्बे और पुष्ट होते हैं और दाढ़ी भी रखते हैं। ये लोग यद्यपि गुप्त चरित्र के तथा रहस्यपूर्ण होते हैं और षडयंत्र में अत्यन्त दक्ष होते हैं परन्तु जिनकी नौकरी करते हैं उनके प्रति बड़े ईमानदार रहने का दावा करते हैं, इनका किसी प्रकार के व्यापार से सम्बन्ध नहीं है केवल कृषि पर गुजारा करते हैं। इनकी एक बड़ी संख्या राज्य सेवा में नियुक्त है।

कर्नल टाड का कथन है कि महाराज तख्त सिंह के शासनकाल में इनका बड़ा उत्थान हुआ था यहाँ तक कि इस जाति के व्यक्ति दीवान और बख्शी तक हो गये हैं।

इनके चौदह गोत्र तथा चौरासी खांपें हैं। प्रत्येक गोत्र की दो भिन्न कुल देवियाँ हैं। यह अपने ही गोत्र के भीतर विवाह कर सकते हैं, केवल उपास्य कुल देवी का भेद मानते हैं।

नीचे प्रत्येक गोत्र उसकी खांपें तथा कुल देवियों की तालिका दी जा रही है।

	गोत्र	कुल देवी	खांप
१.	भारद्वाज	जाजला, काकरेचा,	टकसाली पदवी व्यास, मथुर
		कपटा, चामुडा पदवी बहोरा	चूलडा, आचार्य
२.	सांडिल्य	डेसू, बोधा, पदवी पुरोहित, हिडाऊ	मूचेड
		सुखमना, कादा, किरता नवला	
३.	गौतम	शिवदा केवलिया पदवी त्रिवाड़ी	माधु
		जोशी सुभद्रा माधा	गोदाना गौतमा
४.	उपमन्यु	शाकमरी ठक्कर	कंडेल दोहा
		सिंहवाहिनी, बटु	मातमा बजड़ा
५.	कपिल	विजया, कवसथलिया पदवी छांगाणी	कौलानी, जड़
		सांगी, मौला पदवी गंठिया	जोशी, जट
६.	चन्द्रहास	सनातन, दगड़ा	पेठा रामा
		सुखमना, परमेणा पदवी मूता	जीवनिया, लांपसिया
७.	लौडन	विर्तन वायती	मरतान्न कुपली
		शंकर्षण आंवलिया	पूछतोडा पाडेचा
८.	पाराशर	चामुडा चोवटिया पदवी जोशी	हरस पणिया
		महाकाली ओझा	बाझा झुंडा
९.	कश्यप	महाजोगनी, बोडा	लोडा मूमतिया
		रक्तदंती· काई	करमण लूद्र पदवी कल्ला
१०.	हिरतस	शुंचित रंगा	रामदेव उपाध्याय
		शारदा अंचु	सेसधारा ताक पदवी मुंता
११.	सनकस्य	आशापुरी बिस्सा	विलोइया बिरंगा
		कात्यायनी टेटर	रक्ता बल्ला
१२.	बच्छस	शिवप्रिया मत्तड	मुच्छड पाडियारिया
		सुखमना बडा	सोमनाथ टोहपसिया
१३.	कैस्यम	रक्ताम्बर कवडिया	कीरायत व्यास
		हरप्रिया वासू	किराड चूरो
१४.	मुद्गल	रक्तदन्ती गोटा	सीहा गोदाणा
		जगनाचकी सोखडा	खीसा बुदाणा

पुष्करणा ब्राह्मण अधिकांश शैव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं किन्तु कुछ विष्णु तथा शक्ति के भी उपासक हैं। सगाई इनके परिवार की स्त्रियाँ तय कर लेती हैं किन्तु पुरुषों को उन्हें अस्वीकार कर देने का अधिकार होता है। कन्या के विवाह अथवा सगाई में रुपया नहीं लिया जाता। इनके यहाँ विवाह की एक विशेषता है कि

वर्ष में एक ही दिन सम्पूर्ण जाति में विवाह सम्पन्न होते हैं। अतः जिन स्थानों में इन लोगों की वस्ती अधिक है वे स्थान वर्ष में एक दिन जगमगा उठते हैं। इन लोगों में फेरों की संख्या आठ होती है। प्रथम चार फेरों में कन्या आगे और वर पीछे होता है तथा अन्तिम चार फेरों में वर कन्या को अपनी बगल में लेकर फेरे लेता है।

पुष्करणा समाज में अन्य अवसरों की अपेक्षा मृतक कर्म में अधिक व्यय किया जाता है। यह लोग निकट सम्बन्धियों को १० दिन पर्यन्त नित्य भोजन कराते हैं और बारहवें दिन अपनी सम्पूर्ण जाति को। सुख के अवसरों के भोज की अपेक्षा बारहवें दिन का यह भोज अधिक आवश्यक माना जाता है। सर मुंडाने की प्रथा इनमें बहुत अधिक है यहाँ तक कि किसी की मृत्यु पर दूर के सम्बन्धियों को भी सिर मुंडाना पड़ता है।

पुष्करणों की खांपों में निम्नलिखित मुख्य हैं।

पुरोहित, व्यास, जोशी, कल्ला, बोहरा तथा उपाध्याय इत्यादि।

पहले पुरोहित बोधा कहलाते थे और राज परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने पर उसका समस्त मृत्यु सम्बन्धी क्रिया-कर्म कराना इन्हीं लोगों के जिम्मे था। राव जोधा ने जब जोधपुर के दुर्ग का निर्माण करवाया विश्वास किया जाता है कि उस समय पुरोहित ने अपनी एक अंगुली काट कर उसका रक्त इस आर्शीर्वाद के साथ दुर्ग की नींव में डाला था कि जब तक पुष्करणा जाति जीवित रहे तब तक राज्य अमर रहे। उस पुरोहित की संतति पोलरा पुरोहितके नाम से प्रसिद्ध हुई। क्षेत्रपाली ब्राह्मण क्षेत्रपाल की संतान हैं। क्षेत्रपाल एक पुष्करणा ब्राह्मण का व भाटी राजपूतों का पुरोहित बताया जाता है। जैसलमेर की राजकुमारी फूलदे का विवाह मारवाड़ के राव सातल जी के साथ हुआ था उसी अवसर पर वह राजकुमारी के साथ जैलमेर से मारवाड़ आया था उसका नाम फूलदे ताल के साथ आज भी सम्बद्ध है। क्षेत्रपाल एक झगड़े मे मारा गया था। अपनी मृत्यु के बाद वह क्षेत्रपाल भैरव के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पूजा जाता है। जोधपुर के विद्यालय भवन के निकट जहाँ उसकी हत्या हुई थी उस स्थान पर उसके नाम का थान स्थापित है। सीरी पुरोहित अथवा घेरवानीं राठोडों के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानी इस प्रकार है कि मारवाड़ औरंगजेब के हाथों में चले जाने पर अल्पवयस्क महाराजा अजीत सिंह एक व्यक्ति जग्गूजी के संरक्षण में दस वर्ष तक रहे इस सेवा के लिए जग्गूजी पुरोहित बना दिये गये तथा दरवार में ताजीम दी गयी। महाराज जग्गूजी को अपने भाई के समान मानते थे यही कारण है कि जग्गूजी के वंशज राठोड नाम से प्रसिद्ध हो गये। यह लोग राठोडों की ही प्रथाओं का पालन करते हैं, उन्हीं के आचरण चित्रण करते हैं।

दूसरी खाँप व्यास है। यह भी राज्य के परम्परागत पदाधिकारी हैं। कर्नल वाल्टर ने लिखा है कि वे सब धार्मिक कार्य जिनमें महाराजा स्वयं भाग लेते हैं उनमें सब कार्य सम्पन्न करवाने का भार इन्हीं पर है राज्य तिलक अथवा विवाह संस्कार इन्हीं के द्वारा होता है। इन लोगों में भी पर्दा प्रथा प्रचलित है। इनकी भी अनेक खाँपें हैं। नाथावत व्यास तापाजी के वंशज हैं। इनको महाराजा मालदेव ने व्यास बनाया था और इन्होंनें ही तापी बावडी की नींव डाली थी। जोधपुर नगर में तापी बावडी एक अत्यन्त प्रचलित जल केन्द्र है। तापाजी के पुत्र नाथा ने इस बावडी को पूर्णता पर पहुँचाया था। उसी नाथा के नाम से इस वंश का नाम नाथावत चला आ रहा है। नाथावत स्त्रियाँ दो दुपट्टें ओढ़ती हैं और बाहर से पानी भरकर नहीं लातीं। गिरधारोत व्यास गिरधरजी के वंशज हैं। गिरधरजी राजा अमर सिंह के साथ मुसलमान सेना से युद्ध करने के लिये आगरा गये थे और वहीं मारे गये। और गिरधरजी के नाम से पूजे जाते हैं। जोधपुर में तापी बावडी के निकट उनका थान प्रतिष्ठापित है। उनका देहान्त श्रावण की तृतीया को हुआ था अत: उनके अनुयायी इस तिथि को शोक दिवस मनाते हैं। उस दिन इनकी स्त्रियाँ नये वस्त्र नहीं पहनतीं और कताई बुनाई अथवा चक्की पीसने का काम भी नहीं करतीं। छटानी व्यास होली के त्यौहार में पगडी नहीं बाँधते केवल एक पोतिया अर्थात् वस्त्र का एक टुकड़ा अपने सर के चारों ओर लपेट लेते हैं। उनका यह विश्वास है कि उस दिन उनके वंश के किसी न किसी व्यक्ति का अनिष्ट अवश्य हो सकता है। इस विश्वास का यह कारण बताया जाता है कि किसी समय उनके एक वंशज ने देवी का अपमान किया था जिसके प्रतिशोध का पाप उनके मत्थे है। जोधपुर में इनकी संख्या अधिक है अत: किसी प्राकृतिक कारण अथवा किसी दुर्घटनावश कोई न कोई ऐसी बात हो ही जाती है जिसके कारण उन्हें अपनी यह धारणा सत्य जान पड़ती है। जूना व्यास प्रारम्भ में पुरोहित थे किन्तु उनका अन्तर्विवाह नहीं होता। पूर्व काल में यह जोशी कहलाते थे और अब व्यास कहलाते हैं।

जोशी भी अनेक खाँपों में बंटे हुए हैं। चंडवानी जोशी यह प्रारम्भ में पुरोहित थे। इनके पूर्वज वसदेव जैसलमेर के रावल देवराज भाटी के प्रथम पुरोहित थे। कहा जाता है कि संवत् ९०० के लगभग एक मुसलमान सेना ने रावल देवराज का पीछा किया उस समय मुसलमान सैनिकों को धोखा देने के लिये वसुदेव ने रावल को अपने वस्त्र तथा यज्ञोपवीत पहना दिया और अपने पुत्र रतनू जी को उनके साथ भोजन करने की आज्ञा दे दी। फलत: रावल मुसलमानों के पंजे से बच गया किन्तु रतनू जी जाति च्युत माने गये। इसलिए रावल ने उनको बारहठ बना लिया और उनके वंशज रतनू चारन कहलाये। वसुदेव के वंशज राव मालदेव

के शासन काल में मारवाड़ आये और जब राव मालदेव रावल की एक पुत्री के साथ विवाह करने लिये जैसलमेर गये तब भाटियों ने उनकी हत्या कर देने का निश्चय किया। रघु जी पुरोहित नाम के एक व्यक्ति ने मालदेव पर यह भेद प्रकट कर दिया, वह अपने कल्याणकर्त्ता को अपने साथ मारवाड़ लेते आये। बस उस समय से इनके वंशज भाटियों के पुरोहित न रहे। इस परिवार ने ज्योतिष का अध्ययन किया और जोशी कहलाने लगे। रघुजी के पुत्र चंडू एक बहुत बड़े ज्योतिषी हो गये हैं जिनका पंचांग चंडू पंचांग के नाम से देश भर में प्रसिद्ध है। चंडवानी जोशी तथा चटानी व्यास इन दो खाँपों में यद्यपि विवाह सम्बन्ध होता है किन्तु इनमें पुरानी शत्रुता है। यथा :

अध बैर दक्खन ने दिल्ली।
अध बैर मूसा ने बिल्ली॥
अध बैर कागज ने कट्टा।
अध बैर चंड ने चट्टा॥

अर्थात् चंडवानी जोशी तथा चटानी व्यास में बहुत पुरानी शत्रुता है। उनमें उतना ही अन्तर है जितना दिल्ली और दक्खिन में, चूहे और बिल्ली में तथा कागज और कैंची में। दक्खिन छोटिया जोशी राजा उदयसिंह के शासन काल में जोधपुर आये थे। यह लोग होली का त्यौहार नहीं मानते तथा उसकी लपट भी नहीं देखते। उनका विश्वास है कि उनका एक पूर्वज होली में जल कर मर गया था। उस आर्य पंथी ब्राह्मण की कहानी सब को याद होगी जिसकी कुमारी कन्या पर राजा उदयसिंह ने दृष्टि डाली थी। ब्राह्मण ने अपनी कन्या को भ्रष्ट होने से बचाने के लिये एक बलिदान कुंड खोदा और अपनी कन्या को काटकर उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े किये तथा मांस के साथ अपने मांस के टुकड़े मिलाकर आया माता के नाम पर हवन कर दिये थे। हवन कुंड की अग्नि शिखा तथा धुएँ की प्रचंडता में उसने राजा को शाप दिया था :

तुम्हारी शान्ति नष्ट हो जाय तथा तीन पहर, तीन दिन अथवा तीन वर्ष के भीतर मुझे बदला मिले। और यह कहते हुए कि मेरा भावी निवास-स्थान डावी बावड़ी हो वह भी उछल कर उसी धधकते अग्नि कुंड में कूद पड़ा। उस समय से जिस प्रेतात्मा ने राजा के मस्तिष्क को घेर रखा है या उसी ने उस डावी बावड़ी में अपना अड्डा जमा लिया और तब से उस जलाशय में अकेले जाने का किसी का साहस नहीं होता। कहा जाता है कि चोटिया जोशियों के एक पूर्वज जिनका नाम बनमाली था उन्होंने इस प्रेतात्मा को वश में कर लिया था और उससे वचन ले लिया था कि वह उनके वंशजों को कभी हानि नहीं पहुँचायेगा। इसी वंश में एक व्यक्ति बालजी नाम का हो गया है वह मेड़ता जिले का हाकिम था।

महाराजा विजयसिंह के शासन काल में उसने पेरिया आटे के साथ दाल भी दिये जाने का नियम बनाया था।

कल्ला ब्राह्मण—इनका विश्वास है कि नक्षत्र बृहस्पति के अस्त हो जाने पर उनका प्रभाव इन लोगों पर नहीं पड़ता। दूसरी जातियाँ बृहस्पति के अस्त काल में शुभ कार्य नहीं करतीं। उसको यह लोग नहीं मानते। उनका विश्वास है कि उनके एक पूर्वज ने वृहस्पति को पृथ्वी पर उतार लिया था और उनसे वचन लिया था कि वह इनके वंशजों को कोई हानि नहीं पहुँचायेंगे। इनका यह भी सामाजिक सम्मान है कि पातर अर्थात् वेश्याएँ इनका कभी अनादर नहीं करतीं। कोई कितना ही बड़ा प्रलोभन उनको क्यों न दे किन्तु वह इसके विरुद्ध जाने के लिये कदापि प्रस्तुत नहीं होतीं। इसका यह कारण बताया जाता है कि पातरें जैसलमेर से फलौदी इन्हीं के साथ आयीं थीं और इन्हीं ने उनका व्यय भार वहन किया था। एक कल्ला चन्दन नाम का ब्रह्मचारी हो गया है जैसलमेर में उसकी पूजा होती है। इसके अनुयायी एक डोरा (सूत का) पहनते हैं। जो साँप के काटने तथा कुत्ते के काटने के विष से सुरक्षित रखता है।

बोहरों में भी अनेक खाँपें हैं। बोहरे जातीय भोजों के मामलों में पथ-प्रदर्शक माने जाते हैं। खाद्य पदार्थों का उनका बनाया चिट्ठा पूरी जाति के लिये माननीय होता है।

उपाध्याय ब्राह्मणों में केवल दो खाँपें हैं। जिनका सम्बन्ध दरवार के कबूतरखाने से है। वह निम्न कहे जाते हैं और दूसरे उपाध्याय परिवार का उनमें वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होता।

श्रीमाली ब्राह्मण

गुर्जर ब्राह्मणों के अन्तर्गत होने के कारण श्रीमाली ब्राह्मण, ब्राह्मणों की पंच द्रविड शाखा से सम्बन्धित हैं। मिस्टर जान विलसन का कथन है कि आबू के उत्तर पश्चिम की भूमि जो आजकल मीनमाल कहलाती है पहले श्रीमाल कहलाती थी। उसी स्थान के नाम पर इस जाति का नाम आधारित है। उस स्थान की भाषा गुजराती भाषा से मिलती-जुलती है। वहीं से यह मारवाड़ पहुँचे। देश के अन्यान्य प्रान्तों में यह लोग गुजराती ब्राह्मण नाम से परिचित हैं। इनके देश-व्यापी प्रसार ने अनेक भागों में अथवा आम्नायों में बाँट दिया है। इनकी जो खाँपें अथवा आम्नाय मारवाड़ में बसी हुई हैं वे मारवाड़ी श्रीमाली तथा मेवाड़ी श्रीमाली कहलाती हैं। इनमें अन्तर्विवाह वर्जित नहीं है। इसके परिणाम स्वरूप गत एक शताब्दी के भीतर ही इनमें दो नवीन खाँपें और उत्पन्न हो गयी हैं। इनमें से एक का नाम रिख और दूसरी का लटकन है। इन नवीन खाँपों की उत्पत्ति

का कारण यह बताया जाता है कि मारवाड़ के मेड़ता नामक नगर के एक श्रीमाली ब्राह्मण ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी थी अतः वह जाति च्युत कर दिया गया था किन्तु वह एक धनवान् व्यक्ति था इसलिये उसने बहुत बड़े भोज का आयों-जन किया और बाह्मणों की बहुत बड़ी संख्या को आमंत्रित किया। जो उस भोज में सम्मिलित हुये वह रिख आम्नाय कहलाये तथा अवशिष्ट व्यक्ति जो उसमें सम्मिलित नहीं हुए उनका नाम लटकनं रखा गया।

किन्तु इन दोनो आम्नायों में विवाह अथवा भोजन का कोई प्रतिबंध नहीं है। जिस वेद को जो मानता है उसके अनुसार इन में १४ गोत्र तथा दो विभाग हैं। प्रथम विभाग के सात यजुर्वेदी तथा द्वितीय विभाग के सात साम वेदी कहलाते हैं प्रत्येक गोत्र की एक अलग कुलदेवी है और पुष्करणा ब्राह्मणों के समान अपने ही गोत्र में यह विवाह नहीं करते। इनके निवास–स्थान तथा व्यवसाय के अनुसार इन में भी ८४ अवटंक खाँपें हैं जैसे जोशी, बोहरा और व्यास इत्यादि। इनके गोत्र खाँप वंश तथा कुलदेवियों की तालिका नीचे दी जाती है :

गोत्र	कुलदेवी	खाँप
१. भारद्वाज	व्यंधुक्षिणी	(१) ओझा भोपल (२) व्यास भोपल (३) त्रिवाड़ी भोपल (४) जोशी भोपल (५) त्रिवाड़ी उनायणा (६) त्रिवाड़ी मिया (७) त्रिवाड़ी चोखाचर (८) त्रिवाड़ी निर्णाकोधा (९) ओझा नवलखा (१०) दवे फाडिया (११) व्यास नवलखा (१२) दवे नरेचा (१३) बोहरा पेटा (१४) जोशी पावटिया।
२. शांडिलस	क्षेमंकुर्या	(१) दवे कीड़िया (२) बोहरा कीड़िया (३) बोहरा धांधलवाडिया (४) बोहरा पांडया।
३. गौतम	अरिष्टा बिबजा	(१) दवे लपाउना (२) दवे सांचल वाडिया (३) ठाकुर लापसा (४) दवे पुछत्रोड़ा (५) दवे गोमिया (६) जोशी गौतमस।
४. कपिल	सुखी	(१) दवे पनौलिया (२) दवे दलवत (३) दवे मुताराम वेचा (४) दवे पुमानेचा (५) दवे जीवानेचा (६) दवे फाडिया (७) ठाकुर मेड़िया (८) ओझा वुंधालिया (९) दवे मान-पुत्र पाठक (१०) ठाकुर कपिजल।

५.	चुनलढा	महालक्ष्मी	(१) दवे हृदियार नकेलवाड़िया (२) दवे वातु-ड़िया (३) जोशी वातुड़िया।
६.	लोडन	चावंडा	(१) दवे कोचर (२) दवे पाठक (३) व्यास कोचर।
७.	वच्छू	वलगोडी	(१) त्रिवाड़ी दासू (२) दवे करनेरिया (३) रिवारी सुंगा (४) जोशी पोचर (५) अवसतिया जेनोनी।
८.	उपमन्नु	नागनेचा	(१) त्रिवाड़ी मेड।
९.	परासर	वत्यकशानी	(१) त्रिवाड़ी गदेह (२) व्यास गदेह (३) त्रिवाड़ी नरेचा (४) त्रिवाड़ी जेखलिया (५) ओझा चन्देशा।
१०.	कश्यप	योगेशवारिया	(१) त्रिवाड़ी जाजडोला (२) त्रिवाड़ो अयाची (३) त्रिवाड़ी कश्यपी देहवारिया (४) तिरवारी वत्सहालिया देहवारिथा। (५) जोशी पौरोत्र (६) जोशी चन्देया (७) जोशी पंचुलिया (८) व्यास मानवुत (९) त्रिवाड़ी लुखचारिया (१०) व्यास पुरेचा (११) त्रिवाड़ी करचंडा (१२) बोहरा जाजडोला।
११.	हरीतस	सिद्ध चामुंडा	(१) ओझा आचार्य
१२.	संकस	वरुणार्ची	(१) त्रिवाडी टोकर (२) तिरवारी बकुलिया (३) ओझा बकुलिया (४) ओझा उनामना (५) व्यास डिबला (६) ओझा टौकर (७) व्यास बकुलिया (८) दवे मटकर (९) त्रिवाडी सरगरा (१०) त्रिवाडी जेखलिया
१३.	कवसूस	कमलेश्वरी	(१) ओझा सुलिया (२) त्रिवाडी सुलिया (३) त्रिवाडी कानोडरा (४) अवस्थी कानोडरा (५) जोशी नरतेचा (६) ठाकुर नरतेचा
१४.	मुद्‌गल	वरतन्ना	(१) दवे दतिया (२) दवे विलरिया (३) दवे चोपनेरिया (४) दवे गढिया

श्रीमाली प्रधानतः शैव हैं। उनकी प्रधान कुल देवी महालक्ष्मी हैं। उनके विवाह की रीतियाँ कुछ विचित्र हैं। जब वर कन्या के घर तोरण स्पर्श करने जाता

पुष्करणा ब्राह्मण

श्रीमाली ब्राह्मण
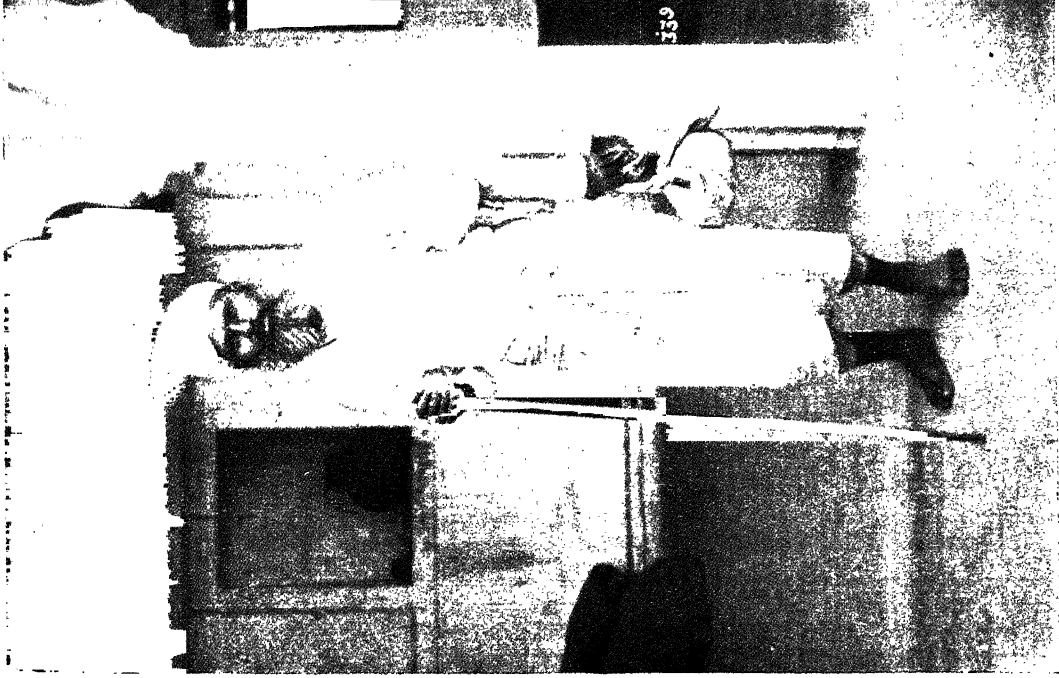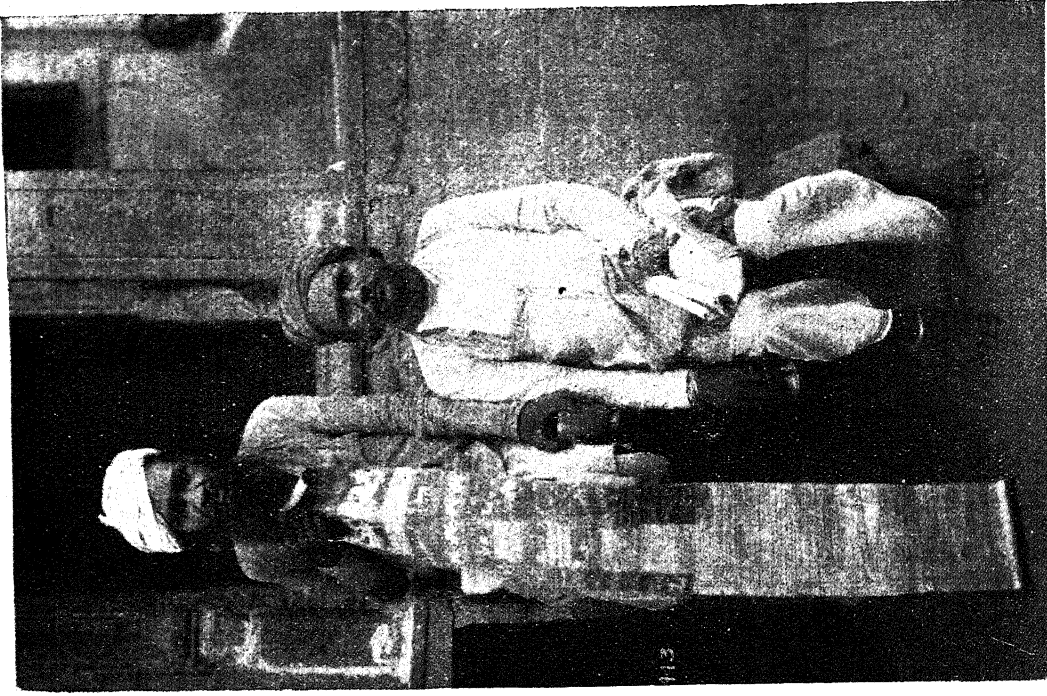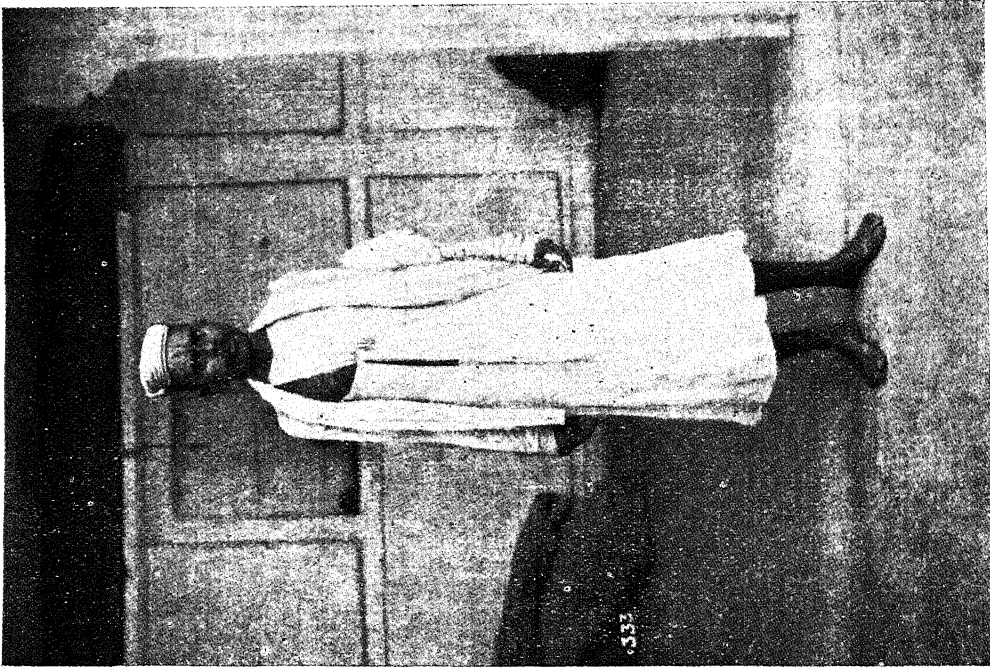
पुरोहित

डाकोत

है तब उसकी माता भी उसके साथ जाती है और वहाँ वर की माता वधू की माता को साथ लेकर चौरी की चार परिक्रमाएँ स्वयं करती है। दूसरे दिन वर अपने मूल्यवान वस्त्र और आभूषण उतारकर केवल एक धोती पहनता है और अपने श्वसुर-गृह जाता है तथा अपनी पत्नी को साथ लेकर चौरी के चार फेरे लगाता है। उसके दूसरे दिन वर अपनी पत्नी को अपनी बगल में लेकर अग्नि की चार परिक्रमाएँ करता है। नाता अथवा करेवा इन में नहीं होता।

श्रीमालियों में मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति उसके पुत्रों में बराबर भागों में विभाजित कर दी जाती है। कदाचित् किसी के वंश में कोई उत्तराधिकारी न हुआ तो वह अपनी कन्या के पुत्र को दत्तक बना लेता है। छोटे-छोटे झगड़े पंचायतों द्वारा तय हो जाते हैं। यह सदा अपनी ऊपरी दिखावे की पवित्रता के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहते हैं और अपनी जाति के व्यक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का स्पर्श किया जल तक ग्रहण नहीं करते। यह लहसुन, गाजर, प्याज तथा मसूर की दाल भी नहीं खाते। यह लोहा पीतल तथा मिट्टी के बरतन में अपना भोजन नहीं रखते तथा वट, पीपल और आक के पत्तों पर भी नहीं रखते। तम्बाकू और मदिरा उनके यहाँ बिलकुल निषिद्ध है।

वह पुरोहिताई का ही व्यवसाय करते हैं तथा हिन्दुओं के विवाह और मृतक कर्म में भाग लेते हैं। देवों के मंत्र उन्हें कंठस्थ रहते हैं, यद्यपि उनका अर्थ वह बिल्कुल नहीं समझते। मिस्टर जान विल्सन का कथन है कि किसी समय इन लोगों में बहुत बड़े-बड़े पंडित हो गये हैं। राजा भोज के समय का संस्कृत का सुविख्यात महाकवि माघ इसी जाति का था। कर्नल वाल्टर का कथन है कि यह लोग कृषि नहीं करते; किन्तु घर-घर से माँग कर अन्न लाते हैं और उसी से अपना निर्वाह करते हैं। यह लोग भीख माँगने के इतने अभ्यस्त होते हैं कि एक समय इनकी जाति का एक बाह्मण मारवाड़ में परगना आफिसर के पद पर नियुक्त किया गया तो उसने सर्व प्रथम यही जिज्ञासा की कि मेरे नियुक्ति पत्र में पेटिया: (अर्थात् एक दिन का भोजन) दिया जाने का निर्देश है कि नहीं। इनमें व्यापारी बहुत थोड़े और बहुत छोटे हैं किन्तु अपना रुपया उधार देकर यह बहुत धन उपार्जित करते हैं। यह लोग यद्यपि अपने जीवन पर अधिक व्यय नहीं करते, तथापि मृत्यु की प्रथाओं में इनका बहुत धन खर्च होता है। कहावत है: "श्रीमाली जितां कमावे और मुआं खावे।"

पुरोहित

मारवाड में पुरोहित ब्राह्मणों की संख्या अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक है। इनकी यजमानी राजाओं तथा जागीरदारों में होने के कारण सब जमीन इन को दान में मिली हुई है जो परिमाण में अत्यधिक है। यह राजाओं और जागीरदारों के परम्परागत

पुरोहित हैं इनका काम राजाओं की कन्याओं के लिए वर ढूंढना उनका सगपन हो जाने पर विवाह की धार्मिक रीतियां सम्पन्न कराना तथा नवीन उत्तराधिकारी के सिंहासनासीन होने पर उनका राज्याभिषेक कराना है। यह लोग स्वयं संस्कृत भाषा के ज्ञान से शून्य हैं। अतएव अपना कर्तव्य पालन करने में अयोग्य होते हैं और भाडे के विद्वान बुलाकर उनसे सहायता लेते हैं। इन लोगों में जातीय नियमों की दृढ़ता भी नहीं होती। यह राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं के हाथ की पकी रोटी खा लेते है तथा ब्राह्मणत्व का मुख्य चिह्न यज्ञोपवीत भी कोई पहनता है और कोई नहीं। ब्राह्मणों में इनका स्थान निम्न है। यह ब्राह्मणों की विभिन्न शाखाओं से निकाले हुए लोगों का समुदाय है और कुछ राजपूत खाँपे भी इनमें सम्मिलित हैं। यह वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। इनकी सगाई की रीति राजपूतों के समान हैं। अफीम यह खूब खाते हैं। विवाह में इनके यहां अग्नि के चार फेरे मात्र होते हैं। इनके पुरोहित अधिकांश श्रीमाली ब्राह्मण हैं। केवल पुरोहितों के सिवाय पुरोहित पुष्करणा ब्राह्मण हैं। पुरोहित शव का दाह करते हैं किन्तु सिर के बाल मुँडाना जरूरी नहीं समझते। सिर के बाल मुंडाने की प्रथा ये लोग केवल धन सम्पन्न परिवार के लिये मानते हैं जो स्वजातीय लोगों को भोज देने की क्षमता रखते हैं। गोद लेने की प्रथा इन लोगों में प्रचलित नहीं है। इनकी सम्पत्ति उत्तराधिकारी के अभाव में इन के सम्बन्धियों में बंट जाती है इसलिए इनकी जमीनों के विभाग होते-होते बहुत छोटे-छोटे टुकडे हो जाते हैं। जो गांव इनके अधिकार में चले जाते हैं उनकी परिस्थिति बिगड़ जाती है। यह कृषि के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यवसाय नहीं करते। प्रत्येक परगने में इनके पास जमीन है। यह जमीनें अधिकतर इन लोगों को मृत्यु के अन्तिम समय के आतुर दान में मिली हुई हैं और बिना लगाना हैं। यह मांगकर भिक्षा नहीं लेते; किन्तु जो मिल जाय उसमें इन्हें कोई आपत्ति नहीं है। राजपूतों के समान यह लोग भी पृथ्वी के स्वामित्व को व्यक्ति की इज्जत मानते हैं।

पुरोहितों में भी नातरायत हैं अर्थात् ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विधवा से नाता अथवा पुर्नविवाह कर लिया है। समाज में इनका स्थान बहुत निम्न है। पुरोहितों की भी अलग-अलग खांपें हैं जिनका विवरण नीचे दिया जाता है:

१, राजगुरु : यह पंवारों के पुरोहित हैं और अपनी उत्पत्ति आब के अग्निकुंड से मानते हैं। इनका कहना है कि प्रथम हमारा पूर्वज राम राम कहता हुआ उत्पन्न हुआ। पश्चात् पंवार मार मार कहता अग्निकुंड से निकला। तब पुरोहित ने राजपूत से कहा "तू परमार हूं गुरु राजेरौ" अर्थात् तू शत्रुओं का नाश करनेवाला है और में तेरा गुरु हूं। इस पर वह पुरोहित स्वीकार कर लिया गया और राजगुरु की पदवी में विभूषित हुआ तथा अजाडी गांव उसे प्रदान किया गया। यह गांव इस समय सिरोही राज्य में सम्मिलित है। राजगुरु पुरोहितों के पास मारवाड के सिवाना तथा पंचभद्रा में भी गांव और जमीन हैं।

मिस्टर विलसन का कथन है कि वैसे इनका क्षेत्र तो केवल राजपूताना हैं किन्तु जहां राजपूत जा बसे हैं वहां यह भी पहुँच गये हैं। यह लोग अपने को भ्रष्ट अर्थात् विकृत ब्राह्मण कहते हैं। यह लोग पारिवारिक पुरोहित होते हैं। इनमें ज्योतिषी भी हैं। जो जान-माल के रक्षक होते हैं। ऋण उगाहते हैं तथा अपने यजमानों के पापों के नैतिक एवजीदार हैं।

इनका दूसरा काम अपने मृतक यँजमानों के फूल गंगा पहुँचाना है। विवाहों में जो दक्षिणा हिन्दू इनको देते हैं वह 'कीक' कहलाती है। इनकी खांपों में से प्रधान है। १, आंवेटा २, करलया ३, हराऊ ४, पिपलिया ५ भंडार ६, सिंधप पीडिया ८, ओझा ९, वरलिचा १०, सीलोरा ११, बाडमेरा १२, नागडा।

सिंधप पुरोहितः यह खांप पहले चौहानों की पुरोहित थी किन्तु अब यह उनके नहीं प्रत्युत अन्य राजपूतों के पुरोहित हैं। चौहानों के पुरोहित दूसरी खांपवाले हो गये। शासन का भोग अब इनको पचभद्रा, शिव तथा सांचोर आदि में प्राप्त है।

ओदीचा पुरोहितः यह अपनी उत्पत्ति उद्दालक ऋषि से बताते हैं यह देवडा राजपूतों के पुरोहित हैं। गौडवार के ग्रामों में इन्हें शासन प्राप्त है और निम्नलिखित खांपों में यह बंटे हुए हैं:

१. फ़ांदर २. लाखा ३. ढमढमिया ४. डिगारी ५. डाबीआल ६ केसरिया ७. हन्नया ८. बोरा ९. मकवाना १०. त्रिवाडी ११ रावल १२. कोपाऊ १३. नेतरड १४. लच्छीवाल १५. पाणेचा १६ दूधवा १७ तिप्तोपा १८ वावरिया।

(३) जागरवाल पुरोहित: इनकी उत्पत्ति वरल ऋषि से मानी जाती है। यह सिंधल राठोडों के पुरोहित हैं और शिव तथा कोटडे जयतारन उन्हीं के साथ आये हुए हैं। जान्नारे गोडवाड और जयतारन में इनके गांव हैं। इनकी खांपों की संख्या अधिक नहीं हैं।

(४) पांच लोड पुरोहित : यह अपनी उत्पत्ति आबू पर्वत के अग्नि कुंड से मानते हैं तथा अपने को पराशर ऋषि के वंशज बताते हैं। इनमें कोई खांप नहीं है तथा सिवाना जिले का बागलोप गांव इन्हें मिला हुआ है।

(५) सीहा पुरोहित : अपने को गौतम ऋषि की सन्तान मानते हैं। यह पुष्कर से मारवाड आये हैं। गोडवाड जिले में इनके पास दो बड़े-बड़े गांव हैं तथा इनकी निम्नलिखित खांपें हैं।

१. सीहा २. केवानचा ३. टाहला ४. राड़बड़ा ५. बोहनिया।

(६) पालीवाल पूरोहित—यह सिसोदिया राजपूतों के पूरोहित हैं। इनका संबंध पालीवाल ब्राह्मण वंश से है। राव सियाजी के पाली उजाड़ देने के बाद

यह पुरोहितों के दल में सम्मिलित हो गये और उनके साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए। इनकी प्रमुख खांपें निम्नलिखित हैं।

१ गूंदोचा २ मोहता ३ वलवचा ४ गोटा ५ साधवा ६ नंदवाना ७ आगसेरिया ८ गोमटीवाल ९ दोकरना १० थानक ११ चडक १२ बालचा १३ मोड १४ मगोरा १५ नाणावाल १६ करमाणा १७ धमानिया।

मेवाड़ के राजा मोकल प्रदत्त अनेक फलते फूलते गांव गोदवाड जिले में इनके पास हैं। मारवाड में यह कहानी प्रसिद्ध है कि–जब राजा मोकल अपना विवाह कर रानी सहित सिरोही से चितौड को लौट रहे थे तब मार्ग में यह गांव रानी ने देखे और उनकी हरियाली रानी की आंखों में समा गयी। उन गावों के प्रति रानी की दृष्टि में तृष्णा का ऐसा आवेग देखकर राना ने रानी से प्रश्न किया कि–क्या वह इन गावों को अपने साथ ले चलना चाहती है। रानी ने उत्तर दिया हां। राना ने चित्तौड पहुंच कर तुरन्त बाह्मणों को बुलाया और उन्हें वे गांव दान स्वरूप प्रदान कर दिये और अपनी देवडा रानी से कहा कि इस कार्य से हमने यह गांव अपने लिए और मृत्यु के पश्चात् आने वाले जीवन के लिये सुरक्षित कर लिये हैं।

७. सेवड़ पुरोहीत : यह जोधा तथा सूंडा राठोरों के पुरोहित हैं। इनका कथन है कि इनके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण थे। कन्नौज इनका निवास-स्थान था और राव सियाजी के साथ मारवाड आये। सेवड श्रीगौड का अपभ्रंश हैं। इनके वंशज मारवाड में पुरोहितों के साथ विवाह-व्यवहार करने लगे इस प्रकार पुरोहित खांप में मिल गये। यह अन्य पुरोहितों से उच्च माने जाते हैं सामाजिक स्थिति में यह श्रेष्ठ हैं और संख्या में भी अधिक हैं। मारवाड के जितने जिले इनके नाम किये गये उन सब पर इनका अधिकार है। लगभग ४०० वर्ष बीते जब राव जोधा ने इनके दामाजी नामक एक पूर्वज को ज़ोधपुर जिले के बरली तथा तिवरी नामक गांव दिये थे। इनके वंश में दामाजी को एक भाग्यशाली पुरुष माना जाता है। कहा जाता है कि यह राव रिडमल के साथ चितोड में रहते थे। जब सीसो-दियों ने रिडमल को मार डाला तब उनके पुत्र राव जोधा वहां से भागे। केवल उनके चाचा इस कारणवश अकेले वहां रह गये कि वह इतनी गहरी निद्रा में सोये हुये थे कि जगाने पर भी न जगे और अपने भाग्य का फल भोगने के लिये अकेले वहां रह गये। उन्हीं के साथ दामाजी भी वहां ठहरे रहे। दूसरे दिन भीमसिंह को बंदी बना लिया गया तथा निश्चय किया गया कि उसे भी मार दिया जाय। जब दामाजी ने तीन लाख रुपये देने तय किये तब उनकी रिहाई हुई। और दामाजी रुपये के बदले कैद में बैठ गये। कुछ दिन व्यतीत होने पर सीसोदियों ने उनसे रुपये मांगे तो उन्होंनें कह दिया कि

मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ मेरे पास इतने रुपये कहां! मैं कैद में बैठा माला फरता रहूँगा। दामाजी का यह उत्तर सुनकर सीसोदियोंने उनको छोड दिया।

राव जोधा ने उनकी इस अपूर्व सेवा के उपलक्ष में तिवरी गांव जागीर के रूप में दामाजी को प्रदान किया। अतएव वह तिवरी के पुरोहित कहलाने लगे। राठोडों के राज्य की सीमा भर में दामाजी के वंशजों का विस्तार हो गया। सम्प्रति उनके वंश-विस्तार की सीमा उत्तर में बीकानेर के नेटी ग्राम तक है और वहीं तक इनके वैवाहिक सगपन होने की सीमा भी है। नेटी ग्राम इतनी दूर तथा एकान्त में स्थित है कि उस गांव में विवाह कर दिये जाने के नाम से अविवाहित कन्याएँ घबडाती हैं। कहावत प्रसिद्ध है:–"कि गई नेटी सौ पाछी नहीं आई बेटी।" अर्थात् जिन कन्याओं का विवाह नेटी में हुआ उनको फिर लौटकर मायके आनेका सुयोग नहीं मिला। माता-पिता बहुधा अपनी कन्याओं को उनसे अप्रसन्न होने पर नेटी में विवाह देने की धमकी दिया करते हैं।

मेवाड़ पुरोहितों की तीन खांपें हैं।

१. आवेराजोत २. मालावत ३. कानावत।

आवेराजोत वंश के पास जोधपुर जिले के तिवरी ग्राम में आठ कोठडियाँ हैं। मालावतों के पास पाली, साजत और जेगरन में ग्राम हैं तथा कानावतों के गांव नागौर जिले में हैं।

८. सौढा पुरोहित: यह सोढल के वंशज होने के कारण सौढा कहलाते हैं। यह महेचा तथा धवेचा रोठोडों के पुरोहित हैं और मल्लानी, सिवाना तथा शिव में इन्हें गाँव मिले हुए हैं। यह भी अपनी वही उत्पत्ति बताते है जो मेवाड पुरोहितों की लिखी जा चुकी है।

९. दूधा पुरोहित: इनका कथन है कि प्रारम्भ में यह श्रीमाली ब्राह्मण थे किन्तु चित्तौड के राना मोकलजी ने इनके पूर्वज दूदाजी को गैर इलाकों से घोडे खरीद कर लाने के लिए बाहर भेज दिया था। घोड़े खरीदने पर अपनी नियुक्ति स्वीकार करने के अपराध में मारवाड ब्राह्मणों ने उन्हें जाति-च्युत कर दिया और यह पुरोहितों में मिल गये। इनके पास कोई बड़ी जागीर नहीं है, किन्तु माफी की जमीन कई परगनों में है। इनकी खाँपें निम्नलिखित हैं।

(१) कतथा (२) व्यास (३) संखवालिया (४) रायथला (५) लापल (६) लाफोजर (७) गाविया (८) पादरवाल (९) मय्या (१०) महीवाल (११) हाडी (१२) लाहाटिया (१३) रेढलिया (१४) रूदवा (१५) गंधरा (१६) मंडवी (१७) केदारिया।

१०. रायगुरु पुरोहित : यह सोनगरा चौहानों के पुरोहित हैं। पाली जालौर तथा गोदवार में इनको जागीरें मिली हैं।

११. मनणा पुरोहित : पूर्वकाल में यह गोयल राजपूत थे। किसी कारणवश पुरोहित में मिल गये।

१२. महीवाल पुरोहित : यह पवारों से पुरोहित बने हैं।

१३. भंवरिया पुरोहित : यह आदि गौड़ ब्राह्मणों के वंशज हैं पूर्वकाल में यह रावलो भाटी राजपूतों के पुरोहित थे; किन्तु जब देरावर का राज भाटियों से छूट गया तब इनकी स्थिति में भी अंतर पड़ गया। मालानी तथा जालोर के परगनों में इनके पास जमीनें हैं।

डाकोत

डाकोत पंचगौड ब्राह्मणों के समुदाय से निकले हुए हैं। मारवाड़ में यह डाकोत, देशान्तरी, जोतगी, थावटिया तथा शनितरिया भी कहलाते हैं और उत्तर पश्चिम प्रान्तों में यह महुरी अथवा भड्डली भी कहलाते हैं।

सर एच. एम. इलिएट भड्डालों को डाकोतों की एक शाखा मानते हैं। बनारस में यह मनरीरिया भी कहलाते हैं पादडी शेरिंग का कहना है कि यह लोग भारतवर्ष के समस्त तीर्थ स्थानों में पथ प्रदर्शक का काम करते हैं और प्रभावशाली हैं।

मिस्टर डी. इवटसन ने इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि एक बार राम के पिता राजा दशरथ ने सब ग्रहों की पूजा की किन्तु शनि को छोड़ दिया। शनि को शान्त करने के लिए दशरथ ने दान देना चाहा; किन्तु शनि से भयभीत होकर ब्राह्मणों ने यह दान स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, तब दशरथ ने अपने शरीर के मैल से डंका नाम के एक ऋषि को उत्पन्न किया जिसने शनि का दान दशरथ द्वारा स्वीकार किया। डंका ऋषि तथा एक शुद्रा के संयोग से इस वंश की उत्पत्ति है। दूसरे ब्राह्मणों ने इस वंश को स्वीकार नहीं किया, तब दशरथ ने उन्हें वरदान दिया कि भविष्य में समस्त ब्राह्मणों को उनकी सन्तान से परामर्श करना पड़ेगा।

मारवाड़ में डाकोतों के सम्बन्ध में यह धारणा चली आ रही है कि डाकोत डँक ऋषि की सन्तान हैं जिसने भडली नाम की भंगन को अपने घर में डाल लिया था इस कारण उसकी सन्तान निम्न समझी गई। किन्तु पिता ब्राह्मण था जिससे डाकोत जनेऊ पहिनते है और अपने को ब्राह्मण मानते हैं परन्तु भडली को धन्वन्तर वैद्य की बेटी बताते हैं और अपनी उत्पत्ति की एक विचित्र कहानी सुनाते हैं। जिसका सारांश यह है कि : जब राजा परीक्षित को तक्षक ने डस लिया तब धन्वन्तरि वैद्य को बुलाया गया; किन्तु मार्ग में तक्षक ने उनको भी काट खाया

जिसके फल से उनकी मृत्यु हो गयी। वैद्य ने अपने पुत्रों को कह रखा था कि जब मैं मर जाऊँ; तो मेरी लाश को जलाना मत और पका कर तुम सब खा जाना। जिससे कि तुम भी मेरी तरह धन्वन्तरि वैद्य हो जाओगे। पिता की आज्ञानुसार वे खाने के लिये मांस पका रहे थे; किन्तु भगवान् यह नहीं चाहते थे कि एक धन्वन्तरि की जगह बहुत से धन्वन्तरि बनकर मृत्यु का प्रतिरोध करें इस लिये उन्होंने ब्राह्मण के वेष में प्रकट होकर धन्वन्तरि के सम्बन्धियों से पूछा कि वह कहाँ हैं ? पुत्रों ने कहा कि वह तो मर गये और हम उनके आदेशानुसार उन्हीं का मांस खाने के लिये पका रहे हैं। भगवान् ने कहा कि तुम ब्राह्मण होकर अपने पिता का मांस कैसे खा सकते हो, इसको फेंक दो। इस पर उनकी बहन सावित्री ने कहा कि देखो यह भगवान् हैं तुमको छलने के लिये आये हैं यह बड़े छलिया हैं। इन्होंने बड़ों बड़ों को छला है। तुम इनका कहना मत मानो और अपने पिता की आज्ञा का पालन करो। सावित्री की बात काटने के लिए भगवान् ने कहा कि यह तुम्हारी बहन भंडली अर्थात् भ्रष्ट हो गई है जो तुमको पिता का मांस खाने को कहती है। इसको घर से निकाल दो नहीं तो तुमको भी भ्रष्ट कर देगी। धन्वन्तरि के पुत्र भगवान् की बातों में आ गये। उन्होंने बहन को घर से बाहर निकाल दिया और मांस को भी फेंक दिया जिसको तत्क्षण चील, तीतर कौए इत्यादि जानवर भक्षण करके अगम दृष्टि हो गये जो शकुन देने लगे और सावित्री का नाम भंडली हो गया और वह जंगल में जाकर तपस्या करने लगी। उसी स्थान पर डँक नाम का ऋषि भी तप करता था। उस वर्ष वर्षा नहीं हुई थी। लोग आकर डँक से पूछते थे वर्षा कब होगी। एक दिन डँक ने भडली से पूछा कि तुमको पता चलता है क्या कि वर्षा कब होगी ? भंडली ने कहा कि क्यों नहीं चलता। पर मैं तब बताऊंगी कि जब आप पहले मुझसे नाता (घरवासा) करना स्वीकार कर लें। डंक ऋषि ने स्वीकार कर लिया तो भडली ने कहा कि आज ही जब आप गाँव में जाकर वापिस आवेंगे तो इतनी वर्षा होगी कि बृक्ष की डालियों तक पानी पहुँच जायगा सो ऐसा ही हुआ और डँक ने भंडली से घरवासा कर लिया। डँक और भंडली के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न हुई वह डाकोत कहलाई। भंडली शकुन ज्ञान में पारंगत थी और डँक ज्योतिष विद्या में निपुण था। दोनों के प्रश्नोत्तर होते थे जिनका संग्रह एक पुस्तक में "भंडली पुराण" के नाम से किया गया है।

नोटः—मर्दुमशुमारी राज मारवाड़ तीसरा हिस्सा पृष्ठ २१२।

डाकोतों में निम्नलिखित खाँपें हैं :—

(१) गौड (२) छिलौदिय (३) मेर (४) रीवल (५) गोरिया (६) पवोसिया (७) जोशी।

कोई-कोई डाकोत ज्योतिष विद्या का अच्छा ज्ञान रखते हैं। शनि के उपासक हैं और शनिवार के दिन डाकोत ही तेल का दान ग्रहण करते हैं। समस्त कठिन अथवा दुर्भाग्यपूर्ण दान जैसे काली वस्तुएँ और गंदे कपड़े जो राहु और केतु के नाम पर दान किये जाते हैं और जिन्हें कोई दूसरा ब्राह्मण लेने के लिए तैयार नहीं होता उन्हें यह स्वीकार करते हैं। ग्रहण के समय का दान जिसमें पुराने वस्त्र, सप्तधान्य (सतनजा) तथा तुला दान भी सम्मिलित हैं यही लोग लेते हैं। तुला दान उस दान का नाम है जिसमें किसी व्यक्ति को तराजू पर बिठा कर अन्न तथा अन्य चीजों से दूसरा पल्ला भर कर तौला जाता है और फिर वह अन्न अथवा उस पल्ले में जो कुछ भी रखा गया हो, वह वस्तु ब्राह्मणों तथा गरीबों में बाँट दी जाती है।

कर्नल वाल्टर ने मालानी गजेटियर में लिखा है कि डाकोत लोग केवल भीख माँगते हैं और कोई धंधा नहीं करते तथा शनिवार के दिन जो दान दिया जाता है वह यही लोग लेते हैं। कदाचित् राजपूत, वैश्य, ब्राह्मण, जाट अथवा किसी भी जाति के हिन्दू को जब शनि की दशा लग जाती है तब वह इन लोगों को एक काली भैंस, काली गाय, काली बकरी अथवा काला कम्बल दान देता है और वे इसके वदले में आराधना कर उस व्यक्ति पर से अपना अनिष्टजनक प्रभाव हटाने के लिये शनिदेव से प्रार्थना करते हैं।

डाकोतों में सगाई की रीति के १० रु. बेटेवाला बेटीवाले को देता है और १ छल्ला लड़की को पहनाता है। लड़की का पिता लड़के के पिता को ६ रु. लौटा देता है। विवाह की रीति के कहीं ६१ रु. और कहीं ८४ रु. लड़कीवाला लड़केवाले से लेता है। स्त्रियों का नाता अथवा करेवा भी होता है। नाता करनेवाले व्यक्ति को विधवा के मृतक पति के परिवारवालों को नाते का दस्तूर जो सत्तर रुपये से अधिक नहीं होता देना पड़ता है। इसके बदले उसे एक लिखित स्वीकृति मिल जाती है और वह स्त्री को अपने साथ ले जाता है। डाकोत स्त्रियाँ लाख की चूड़ियाँ पहनती हैं।

जोशी

जोशी अपने को पंच द्राविड़ समुदाय में मानते हैं। मारवाड़ में यह सांचौरा ब्राह्मण भी कहलाते हैं। कहा जाता है किसी समय मीनमाल में लक्ष्मी और भगवान् के विवाह का उत्सव मनाया गया था उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए यह लोग दक्षिण से मारवाड़ आये थे तथा सांचौर में ठहरे थे तब से ही इनका नाम सांचौरा ब्राह्मण पड़ गया।

इन लोगों में आरम्भ में १८ गोत्र थे परन्तु अब केवल ७ गोत्र मिलते है जो निम्नलिखित हैं :—

सनाढ्य ब्राह्मण

जोशी
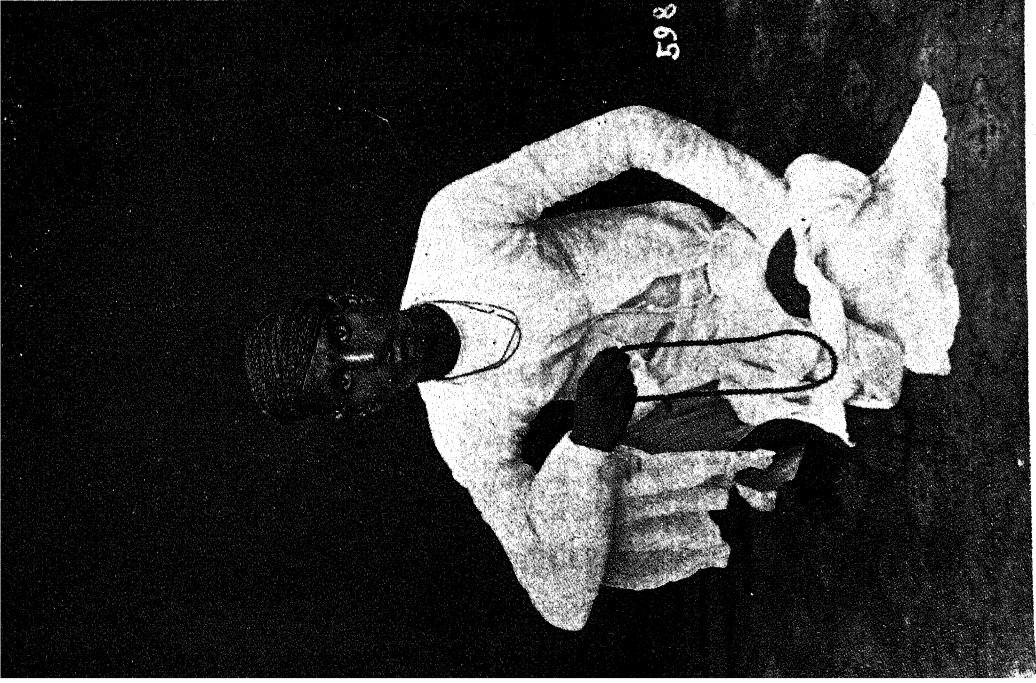
पालीवाल

आचारज

(१) कण्व (२) वत्सस (३) भारद्वाज (४) काश्यप (५) कात्यायन (६) शांडिलस (७) अलमवाज।

मारवाड़ में इनकी खाँपें ये हैं।

(१) जोशी (२) व्यास (३) ठाकुर (४) मोहता (५) दवे (६) राव इत्यादि।

जोशी विष्णु के उपासक हैं और बाल ऋषि और तरुण ऋषि को भी पूजते हैं। मालानी में इनका एक मन्दिर भी है जिसमें काठ की मूर्त्ति स्थापित है।

इनके यहाँ सगाई की प्रणाली यह है कि वर का पिता कन्या के पिता के घर जाता है वहां उसे सात सुपारी तथा एक नारियल भेंट दे दिया जाता है। जोशी ब्राह्मणों में सुपारी का बडा उपयोग होता है। विवाह होनेवाले मास में वर–कन्या का फूलों से खूब श्रृंगार होता है। नाता अथवा करेवा इन में नहीं होता।

जोशी अपनी जाति के अतिरिक्त किसी दूसरे के हाथों की रोटी नहीं खाते। मालानी में यह बढ़मेरा जोशी के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा घी और गोंद का व्यापार करते हैं। जोशी कृषि-कार्य भी करते हैं। कर्नल वाल्टर का कथन है कि इन के साथ रियायती व्यवहार होता है। उपज का केवल चतुर्थांश इन को लगान में देना पडता है तथा आयात और निर्यात कर इन को नहीं देना पडता।

जोशी ब्राह्मणों की स्त्रियां अपने माथे में कांच की टीकी : बिन्दी : लगाती हैं।

आचारज

मारवाड में ब्राह्मणों का एक और वर्ग है जो आचारज अथवा कार्टिया कहलाता है। आचारज आचार्य शब्द का विकृत रूप है। यह लोग मृतक का दाह संस्कार कराते हैं तथा दाह कर्म के पूर्व कफन का कपडा शव के ऊपर से उतारते हैं तथा मृतक के परिवार द्वारा उनके किसी आत्मीय की मृत्यु के होने पर बारह दिनों तक मृतक के निमित्त भोजन ग्रहण करते हैं। उनका वचन है कि हम पंच द्राविड समुदाय में से हैं, किन्तु राजा दशरथ का दाह संस्कार कराने और पंचग्रासी लेने के कारण हम जाति च्युत कर दिये गये थे और तब से ही हमारी इस जाति की उत्पति हुई है। पादडी शेरिंग का कथन है कि यह लोग कान्यकुब्जों की ही सर्यूपारी शाखा की उपशाखा के सवालाखी नाम के ब्राह्मण हैं। उनकी जाति बडी निम्न मानी जाति है और पंजाब में यह गांव के भीतर नहीं घुसने पाते।

आचारज तथा उत्तर भारत के महाब्राह्मण दोनों समश्रेंणीयुता हैं। पादडी शेरिंग के कथनानुसार महाब्राह्मण अथवा महापात्र हिन्दुओं के शोक समय

पर शव का मृतक संस्कार कराने का काम करते हैं। यद्यपि इनके ब्राह्मण नाम क साथ विशेषण शब्द महा जुडा हुआ है जिस का अर्थ होता है बडा परन्तु यह माने जाते हैं अत्यन्त निम्न। यथार्थ में यहां महा शब्द घृणा का द्योतक बन गया है। कोई दूसरा ब्राह्मण इनका स्पर्श तक नहीं करता और यदि भूल से किसी का स्पर्श हो जाय तो वह अपने सब कपड़े धोकर स्नान करेगा।

आचारज लोग उत्तर से मारवाड में आये बताते हैं इनमें कृषि करनेवालों की संख्या अत्यन्त अल्प हैं। इनकी खांपों की सूची इस प्रकार हैं।

१. सिनावड २. दिलीवाल ३. जोशी ४. वनबाला ५. सारस्वत ६. दायमा ७. मामनिया ८. अलावत ९. बागडी १०. रावखड ११ पीपलोदिया।

यह शिव के उपासक होते हैं ओर मांस मदिरा का उपयोग नहीं करते। विधवा का नाता इनमें प्रचलित नहीं है। गोद लेने की प्रथा भी नहीं है। अतः उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति सम्बन्धियों में बंट जाती है।

कान्यकुब्ज : (कनौजिया)

यह उत्तर भारत के प्राचीन नगर कन्नौज के निवासी हैं इसीलिए इनका नाम कनौजिया ब्राह्मण है। यह गौड ब्राह्मणों की ही एक शाखा है। इनका दूसरा नाम पूर्विया भी है। मिस्टर सेलीब्रुक का कथन है कि गौड के राजा आदीश्वर ने कन्नौजियों में से चार व्यक्तियों को एक बार आमंत्रित किया था यह उन्हीं के वंशज हैं। यह लगभग सन् ९०० ईस्वी के आस-पास की बात है। कन्नौजिया ब्राम्हणों में पांच विभाग हैं। १. सखरिया २. सनाढ्य ३. जिझोतिया ४. भूमिहार तथा ५. कन्नौजिया खास। पर एच. एम. इलियट इनको साढे छः गोत्रों में विभाजित करते हैं जिसे षट कुल कहते है किन्तु पादडी एम. ए. शेरिंग के मतानुसार इन में सात गोत्र हैं तथा एक अथवा अधिक वंश उससे सम्बन्धित हैं और एक विशेष उपाधि से विभूषित हैं।

इनके गोत्रों की नामावली उपाधियों सहित यों है।

गोत्र	वंश की उपाधि
१. गौतम	अवस्थी
२. शांडिल्य	मिश्र और दीक्षित
३. भारद्वाज	शुकुल, त्रिवेदी तथा पांडेय
४. उपमन्यु	पाठक और दुबे
५. कश्यप	त्रिवेदी, हरी और तिवारी

६. कात्यायन वाजपेयी
७. गर्ग चौबे

अधिकांश कनोजिया शैव हैं। वैष्णव इनमें बहुत थोड़े हैं। वैष्णव मांस-भक्षी नहीं हैं; शैव मांसाहार करते हैं। मदिरा और तम्बाकू का निषेध दोनों मानते हैं तथा प्याज और लहसुन भी नहीं खाते।

यह लोग अपनी जाति प्रथा के बड़े कट्टर पाबन्द होते हैं और अपनी जाति को छोड़ कर किसी अन्य जातीय व्यक्ति की पकाई रोटी नहीं खाते। इनके सम्बन्ध में "आठ पूर्विया नौ चूल्हे" की कहावत इसी से उत्पन्न हुई है।

विवाह में इन लोगों के यहां सात के स्थान में केवल तीन फेरे अग्नि के चारों और किये जाते हैं। हथलेवा और वर-वधू में ग्रन्थिबंधन भी नहीं किया जाता।

कनौजिया शरीर के लम्बे-चौड़े और बलिष्ठ होते हैं और सैनिक जीवन इनको बहुत पसन्द है। अंग्रेजों की पलटनों में इनकी पर्याप्त संख्या रही। उन पलटनोंने युद्ध-स्थलों में बड़ा नाम कमाया। कनौजिया सैनिक प्रधान फौजों को जल-थल दोनों मार्गों में यात्रा करने के अवसर प्राप्त हुए। परन्तु उन्होंने अपनी जातीय कट्टरता बराबर बनाये रखी।

सन् १८५७ के गदर के प्रसंग में चर्बी लगे कारतूसों के प्रश्न को लेकर आपत्ति करनेवाले प्रथम यही लोग थे। महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में यह लोग मारवाड़ की सेना में भरती किये गये थे और इन पर दरबार का ऐसा विश्वास था कि सरकारी खजाना इनकी सुरक्षा में रखा जाता था और जनानी ड्यौढ़ी पर भी इनका ही पहरा रहता था।

सनाढ्य ब्राह्मण

यह लोग अपने को आदि गौड़ बताते हैं। किन्तु किसी-किसी का मत हे कि यह कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की ही एक शाखा विशेष है। पादड़ी एन. ए. शेयरिंग का कथन है कि भगवान् राम ने लंका विजय तथा रावण के विनाश के निमित्त एक यज्ञ करने की आकांक्षा की। रावण एक ब्राह्मण था, इसलिए ब्राह्मणों ने इस यज्ञ में योगदान देना अस्वीकार कर दिया। सरवरिया ब्राह्मणों ने भी इनकार किया था इसलिए वे भी रामचन्द्रजी की अकृपा के भाजन बने थे। किन्तु सनाढ्य ब्राह्मणों ने रावण के जातीय होने की परवा नहीं की और रामचन्द्र का वांछित यज्ञ पूर्ण करवाया। अतः अन्य ब्राह्मणों ने इनका वहिष्कार कर दिया और यह एक पृथक वंश के रूप में परिचित हुए।

इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात यों प्रसिद्ध है कि रामचन्द्र ने अपने अनुष्ठित अश्वमेध यज्ञ की सम्पन्नता के पश्चात् ब्राह्मणों को भूमिदान देना चाहा–

जिसे लेना कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने अस्वीकार किया। उस समय रामचन्द्र का मनोरथ पूर्ण करने के लिए ब्राह्मणों के प्रत्येक वंश से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित हुआ और प्रत्येक को दक्षिणा-स्वरूप एक-एक गाँव दिया गया। इस प्रकार मथुरा प्रान्त में सात सौ पचास व्यक्तियों को सात सौ पचास गाँव प्राप्त हुए और यों प्रत्येक ब्राह्मण ने अपने अधीनस्थ गावों के नाम से अपने वंश का नाम प्रचारित किया।

सनाढच ब्राह्मण रावसियाजी के साथ कन्नौज से मारवाड़ आये थे। और उस समय से आरम्भ कर महाराज मानसिंह के जीवनकाल तक यह लोग राज के रसीवड़े के मुन्तजिम रहे। इन लोगों में ७५० खाँपें हैं। जिनमें ५१ प्रमुख हैं। और उनमें से केवल सात खाँपें मारवाड़ में बसी हुई हैं। इन सातों के नाम ये हैं:

(१) करोटिया (२) मूंजवाड़ (३) चतुरेला (४) चपला (५) गुंजेला (६) गोला (७) मोटा।

यह लोग वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और अधिकांश घरेलू नौकरियाँ करते हैं। इन लोगों में सगाई स्त्रियों द्वारा स्थिर की जाती है। वर की माता को कन्या की माता नारियल भेंट करती है तथा बिरादरी में गुड़ बांटा जाता है। सगाई के अवसर पर कहीं-कहीं पचास रुपये कन्या के माता-पिता के लेने का दस्तूर है, परन्तु यह असमर्थता की स्थिति में ही होता है।

नि:सन्तान होने पर गोद (दत्तक) लेने की प्रथा भी है और नजदीकी हकदार कुटुम्बियों के कोई न रहने पर दौहित्र भी गोद आ जाता है। आपस के झगड़े पंचायत द्वारा निबटाये जाते हैं और पंचायत वही समझ ली जाती है जो जाति के चार समझदार और प्रामाणिक व्यक्ति बैठकर फैसला कर देते हैं।

पालीवाल ब्राह्मण

पालीवाल ब्राह्मण गौड वंशोद्भव हैं। इनका नाम पालीवाल पाली ग्राम के नाम के आधार पर पड़ा है। मारवाड़ में राठोड़ राज्य की स्थापना के पूर्व मंडोर के राजा के द्वारा यह ग्राम इनको दान में प्राप्त हुआ था। कर्नल टाड का कथन है कि सम्वत् १२१२ अर्थात् सन् ११५६ ईस्वी में कन्नौज के सम्राट के पुत्र राव सियाजी जिन्होंने राठोड़ राजवंश की स्थापना की थी द्वारिका की तीर्थ यात्रा करके गंगा को वापस जा रहे थे। मार्ग में उनके पाली ग्राम पड़ा। पाली निवासियों ने इनसे अरावली के मीनों तथा जंगली सिंह व्याघ्रों से प्राण बचाने की प्रार्थना की; कारण ये सब इनको बड़ा कष्ट दे रहे थे। राव सियाजी ने इन दोनों शत्रुओं से उनकी रक्षा की किन्तु उस पृथ्वी पर अधिकार स्थापित करने का अवसर खोना उनको उचित न जंचा और होली के दिन उन्होंने वहाँ के अगुआ ब्राह्मणों को मारकर पाली पर अपना अधिकार जमा लिया।

पालीवाल ब्राह्मण रक्षाबंधन पूर्णिमा (सलोना) का त्यौहार नहीं मनाते। उनका कथन है कि उस दिन बादशाह गौरी शाह ने उस गाँव पर आक्रमण किया था तथा बहुत-सी गौएं कटवा कर वहाँ के तालाब में डलवा दी थीं। ब्राह्मण अत्यन्त वीरता के साथ प्रतिरोध में जूझे किन्तु उस युद्ध में उनकी पराजय हुई और इतने ब्राह्मण काम आये कि उनके यज्ञोपवीत का वजन नौ मन तोला गया था। तथा उनके शव के साथ इतनी स्त्रियाँ सती हुई थीं कि उनके हाथ की चूडियाँ चोरासी मन उतरी थीं। यह अनुमान किया जाता है कि जो लोग उस अवसर पर अपने प्राण लेकर गांव के पश्चिमी द्वार से भागे थे उन्होंने कृषि का धन्धा अपनाया किन्तु जो पूर्वी द्वार से भागे उन्होंने साहूकारी का व्यवसाय ग्रहण किया। मारवाड़ में पालीवाल प्रायः कृषि-कार्य करते हैं, किन्तु मारवाड़ के बाहर उनकी गणना साहूकारों की एक सम्मानित श्रेणी में की जाती है, अतएव उत्तरीय भारत में यह बोहरा नाम से प्रसिद्ध हैं। मेवाड़ में, यह नंदवाणा कहलाते हैं। इनकी अधीनस्थ भूमि मांगलिक समझी जाती है तथा उस पर इनका परम्परागत अधिकार है। कर्नल वाल्टर का कथन है कि लूनी नदी के तटवर्ती स्थानों के ये प्रधान जमींदार हैं। यह लोग अपने जागीदारों को अपनी उपज का एक भाग कर में देते हैं। पालीवालों को अपनी जातिवालों के अतिरिक्त अन्य कृषकों से गुगरी नाम का एक हक प्राप्त होता है और यह हक भी वस्तु रूप में उपज का एक अंश ऋतु में दिया जाता है। अच्छी फसल पर प्रत्येक कलसी अर्थात् बारह मन के ऊपर साढ़े तेरह पल्ली जो लगभग साढ़े उन्नीस सेर वजन हुआ अर्थात् उपज का षष्टमांश इन्हें मिलता है। कदाचित् कोई पालीवाल स्वयं कृषि कार्य न करे और न अपनी जमीन किसी दूसरे से ही जुतवा सके तो पड़ती जमीन का कर उसे नकदी भुगताना पड़ता है। मालानी में जमीन की कोई नाप नहीं है। लूनी नदी के निकट की भूमि पर एक खेत की नाप आठ से पचीस बीघे तक हुआ करती है। और पालीवाल ब्राह्मण इतनी जमीन का लगान दो रुपये से पांच रुपये तक दिया करते हैं। पालीवाल ब्राह्मणों की अनेक खांपें हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

१. जागिया २. जजिया ३. पूनिद ४. घामट ५. भायल ६. ठेमा ७. पेथड ८. हरजाल ९. चरक १० सांदू ११. कोरा १२. हरदोलयो।

पालीवाल ब्राह्मणों के अन्तर्गत तीन श्रेणियां हैं। प्रथम में पाली तथा जोधपुर परगनों के साठ ग्राम हैं, दूसरी में पंचभद्रा कसावाटी के चोबीस खेड़े हैं और तीसरी में बारह ग्राम मालानी के तथा बारह सिवाना के। इस श्रेणी-विभाजन से उनमें किसी प्रकार का जाति-भेद व्यक्त नहीं होता सब की प्रथाएँ समान हैं और उनमें सब समान रूप से परस्पर सम्मिलित होते हैं। कभी-कभी एक बहुत बड़ा यज्ञ 'विष्णु यज्ञ' के नाम से सम्पन्न किया जाता है

जिसमें बहुत दूर-दूर के पालीवाल ब्राह्मण आमंत्रित किये जाते हैं। इस यज्ञ में एक बृहदाकार हवन कुंड का निर्माण होता है जिसमें बड़ी प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित की जाती है और पिचकारियों से घी डाला जाता है। धन सम्पन्न बड़े लोग बिरादरी में नामवरी कमाने के लिए इस यज्ञ का आयोजन करते हैं। आगन्तुकों को एक रुपया, पीतल का एक लोटा प्रति व्यक्ति दक्षिणा में बाँटते है। सम्वत् १९३७ में ऐसा ही एक यज्ञ मारवाड़ में किया गया था। यह हिलवाड़ा ग्राम में रामकृष्ण कृपाराम ने करवाया था।

मिस्टर जान विलसन का कथन है कि पालीवाल ब्राह्मण कभी अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं करते और अपने विधानों के विपरीत अपनी वधू दाम देकर खरीदते हैं। और वस्तुओं के अतिरिक्त अपने उस काल की स्मृति में जब इनका गुजारा केवल चोरी और डकैतियों पर अवलम्बित था इसके लिए यह घोड़ों पर सवार होकर दौड़ा करते थे। यह घोड़े की लगाम की पूजा करते हैं। इन लोगों में कन्या का पिता विवाह में अपनी कन्या देने के बदले में बड़ी लम्बी रकमें लिया करते हैं और यदि वर वयस्क अथवा विधुर हुआ तब वह रकम और भी लम्बी हो जाती है। यही कारण है कि अधिकांश पालीवाल ब्राह्मण अविवाहित दिखाई पड़ते हैं तथा यही कारण है कि अपनी सांकेतिक बोली में ये पुत्र को डोबका अर्थात् डुबानेंवाला और पुत्री को तारका अर्थात् तिरानेवाली कहते हैं :—

सैयद

जो स्थान हिन्दुओं में ब्राह्मणों को प्राप्त है वही मुसलमानों में सैयदों को है। सैयदों की उत्पत्ति में मातृ वंश तो महम्मद साहब का वंश है तथा पितृ वंश अरब के अली कुरेशी का। अली कुरेशी मोहम्मद साहब के चचेरे भाई थे। असली सैयदों का जन्म महम्मद की बेटी फातिमा से हुआ था। फातिमा अली की बीबी थी। दूसरे सैयदों का जन्म अली की दूसरी बीबियों से हुआ। यह लोग उलवी सैयद कहलाते हैं। इन लोगों में इनके पूर्वजों के नाम अथवा निवासस्थान के नाम के आधार पर अनेक वंश हैं। उदाहरणार्थ हौशिनी, काजिनी, तववई, रिजवी इत्यादि।

यह कहीं-कहीं अपने नाम के साथ सैयद शब्द लगाते हैं और कहीं शाह। मिस्टर जान वीन्स के कथनानुसार पंजाव प्रान्त में रईस सैयद लोग शाह साहब के नाम से तथा साधारण सैयद शाहजी के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। उत्तर पश्चिम प्रान्त के वह बहुसंख्यक मुसलमान जो पूर्व काल में हिन्दू थे इन उपाधियों से खूब लाभ उठाते हैं। बहुतेरे खाँ की उपाधि अपने नाम के साथ जोड़ लेते हैं और बहुतेरे लोग कदाचित् उन्होंने समाज में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया तो सैयद बन जाते हैं। पंजाब प्रान्त जहां मुसलमानी धर्म पूरे बल के साथ प्रचलित किया गया था वहाँ किसी परिवर्तित धर्मी व्यक्ति के कथन के रूप में एक कहावत प्रसिद्ध है :—

गत वर्ष में एक जुलाहा था, इस वर्ष में शेख हूं और आगामी वर्ष यदि अन्न मंहगा बिका तो मैं सैयद हो जाऊंगा।

तात्पर्य यह कि यदि अनाज मंहगा बिका और अच्छा लाभ कमाकर धनवान बन सका तो सैयद की पदवी धारण कर लेगा।

सैयदों में शिया तथा सुन्नी दोनों सम्प्रदायों के लोग हैं। मारवाड़ में केवल सुन्नियों की प्रधानता है। शिया और सुन्नियों का भेद मिस्टर इवटसन ने निम्न शब्दों में अंकित किया है :

सुन्नी इस्लाम के नियमों पर चलते हैं और शिया भी उन्हीं नियमों के अनुयायी हैं, किन्तु भेद केवल इतना है कि शिया सोचते हैं कि कौन नियम माने जायँ। सुन्नियों में चार विचार धाराएँ हैं: हनीफी, शफई, मलीकी तथा हमवाली।

शिया और सुन्नियों का अन्तर केवल सैद्धान्तिक है। शिया विचार का मत है कि सच्चे इमाम का ज्ञान मुसलमानी धर्म के लिए आवश्यक है। सुन्नी इस बात को कोई महत्व नहीं देते। वह अली के अनुयायी फातिमा के पति मोहम्मद की पुत्री और चौथे खलीफा में इसलाम मानते हैं। शिया सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि नबी की मृत्यु के पश्चात् दैवत्व का अधिकार दैवी अधिकार स्वरूप अली को प्राप्त हो गया और अली के पश्चात् उसके दोनों पुत्र हसन और हुसैन को। सुन्नियों की भांति वह अबूब्रक उमर और उसमान को इमाम नहीं स्वीकार करते। वह इनको वलापहारी मानते हैं शिया उम्मियद खलीफों को नहीं स्वीकार करते हैं विशेषत: यजीद को जिसने हुसेन की हत्या की थी। यह लोग मोहर्रम मास के प्रथम दस दिन व्रत रखकर अली तथा उसके दोनों बेटों की मृत्यु पर शोक मनाते हैं तथा मृतकों की कब्रों के प्रतीक स्वरूप ताजिये लेकर उनके साथ जोर-जोर से छाती पीटते निकलते हैं। सुन्नी मोहर्रम का अकेला दसवां दिन मनाते हैं तथा ताजियादारी से घृणा करते हैं। पंजाब तथा अन्य पश्चिमी प्रान्तों में शिया लोगों को रफीजी का नाम दिया जाता है। रफीजी शब्द का अर्थ है रिफ अर्थात् गाली। कारण कि यह लोग प्रथम तीन खलीफों को तथा उनको स्वीकार करनेवालों को गालियाँ देते हैं। रफीजी का अर्थ भगोडे भी होता है। शिया लोग एक बार हुसैन के पौत्र जैद को छोड भागे थे क्योंकि उसने प्रथम दो इमामों को गालियां देने से इन्कार किया था।

सैयद लोग मारवाड़ मुगलों के शासन काल में पहुँचे थे। और दरबार की नौकरियों पर नियुक्त किये गये थे। इन लोगों में हिन्दुओं के ही समान विवाह के पूर्व सगाई हो जाया करती है।

विधवा विवाह इन लोगों में वर्जित नहीं है, किन्तु उच्च श्रेणी के मारवाड-निवासी सैयद करते नहीं है। निम्नस्तर के मुसलमान विधवा का पुनर्विवाह करते हैं। इनकी स्त्रियां घोर परदे के भीतर रखी जाती हैं। यह लिखी पढी होती हैं। उच्च परिवार की जो विधवाएं पुनर्विवाह कर लेती हैं अथवा त्याग दी जाती हैं वह परदे में रहती हैं और अपने पूर्व पति के सम्बन्धियों के सामने नहीं आतीं।

यती

यती शब्द जितेन्द्रीय शब्द का पर्यायवाची है। जितेंद्रीय उस व्यक्ति का नाम है जिसने अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया हो। यती जैन सम्प्रदाय के आध्यात्मिक गुरु होते है; किन्तु विवाह आदि के अवसर पर पुरोहितों के स्थान पर संस्कार सम्पन्न कराने का काम भी करते हैं। इनका काम धर्म प्रचार है जिसके लिए यह व्याख्यान देते हैं। यह ब्रह्मचर्य की महिमा बताकर पशु जीवन के प्रति दया का उपदेश देते है। मारवाड के ओमियां नामके ग्राम के निवासी जो ओसवाल कहलाते हैं यहाँ तक कि वहां रहनेवाले राजपूतों तक को जैन धर्म में दीक्षित करने का बडा कार्य इन्होंने किया है। यती नंगे पांव तथा नंगे सिर रहा करते हैं। बगल में वह एक झोला लटकाये रहते हैं जिसमें जैनियों से प्राप्त भिक्षा अपने भोजन के लिये लाते हैं। इन लोगों में चौरासी गच्छ हैं। प्रत्येक गच्छ का एक गुरु अथवा नेता है। प्रधान गच्छों के नाम इस प्रकार हैं।

गच्छ का नाम	स्थापन समय
१. मंसालिया	सम्वत् १०८०
२. रुद्रपालिया	१२१५
३. महोखाराखरतर	१२५५
४. तपामत	१२८५
५. ल्होडा खरतर	१८८१
६. पिपालिया	१४१५
७. विगडा	१४२२
८. लंका	१५३२
९. आचार्य	१५६४
१०. भावविख्या	१६१६
११. मागरमूर्य	१६८७
१२. रंगविजय	१७००

यती जिन चौबीस तीर्थंकरों की पूजा करते हैं उनके नाम निम्नलिखित हैं :

१. श्रीऋषभदेव २. श्रीअजितनाथ ३. श्री अभिनन्दननाथ

यती

वैरागी

साधु

सैयद
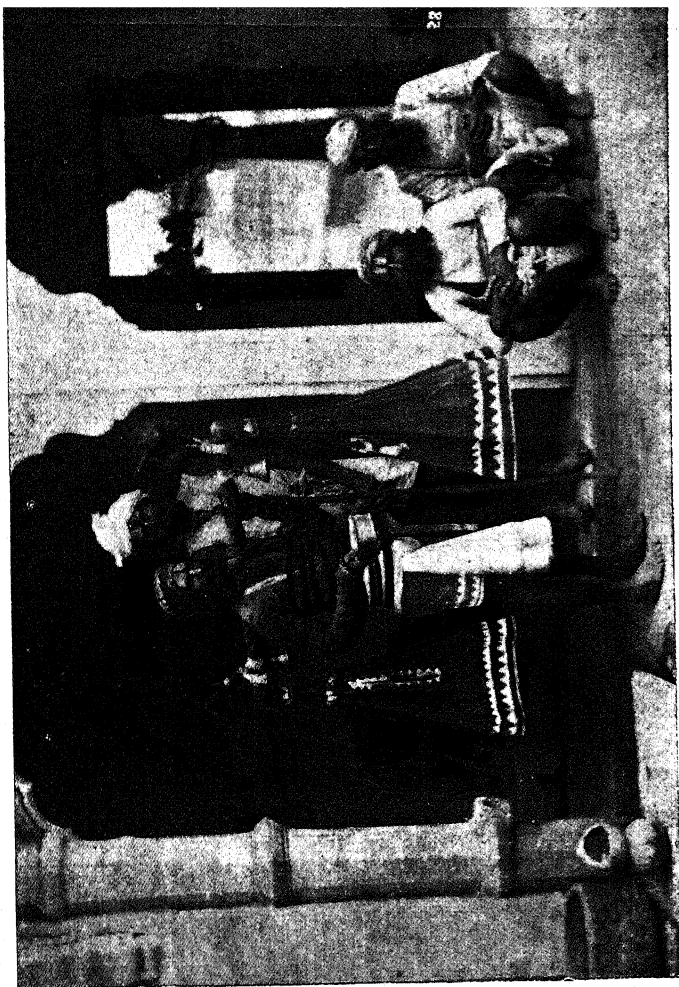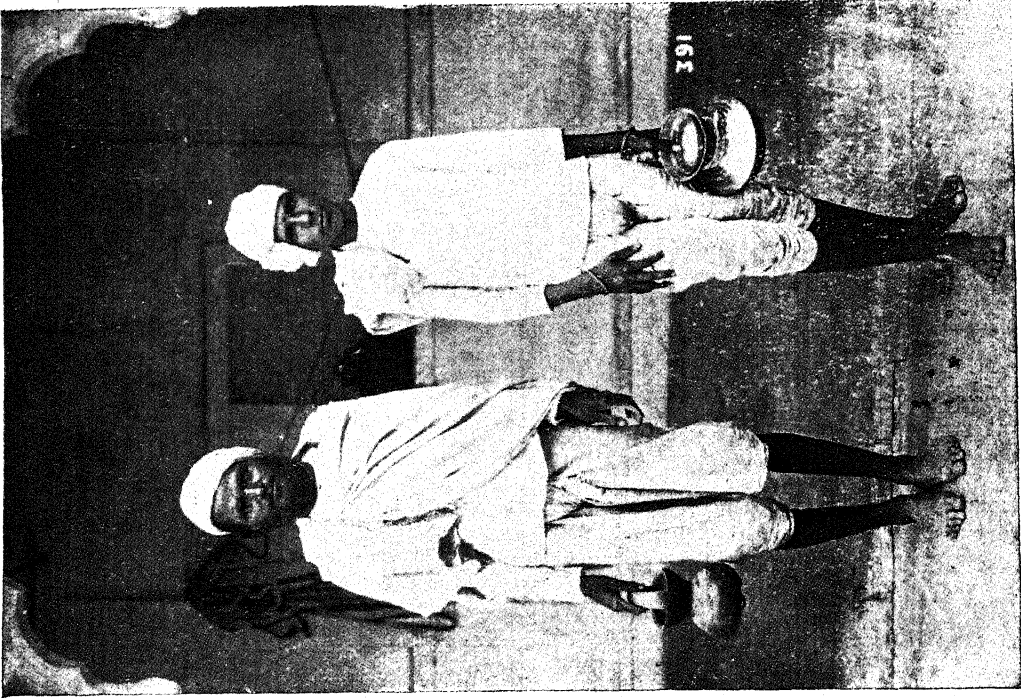
४. श्री संभवनाथ	५. श्री सुमतिस्वामी	६. श्री पद्मप्रभु
७. श्री सुपार्श्वनाथ	८. श्री चन्द्रप्रभु	९. श्री सुविधिनाथ पुष्पदना
१०. श्री शीतलनाथ	११. श्री श्रेयांसिनाथ	१२. श्री वासुपूज्य
१३. श्री विमलनाथ	१४. श्री अनन्तनाथ	१५. श्री धर्मनाथ
१६. श्री शान्तिनाथ	१७. श्री कुन्थनाथ	१८. श्री अमरनाथ
१९. श्रीमल्लिनाथ	२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ	२१. श्री नेमनाथ
२२. श्रीअरिष्टनेमि	२३. श्री पार्श्वनाथ	२४. श्री वर्द्धमानस्वामी : महावीर

इन सब में श्री ऋषभनाथ, श्रीपार्श्वनाथ तथा श्री महावीर स्वामी अधिक महत्वपूर्ण हैं। अनेक यती हिन्दू देवी–देवताओं को भी मानते हैं तथा भैरव भवानी और हनुमान की पूजा भी करते हैं। इनके त्यौहार प्रधानतः भादों के महीने में हुआ करते हैं। इन अवसरों पर यह लोग व्रत रखते हैं तथा मन्दिरों में बैठकर धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करते हैं। दीपावली के त्यौहार को यह विशेष आदरणीय मानते हैं कारण कि उस दिन उनके श्रीमहावीर स्वामी पार्थिवजीवन से मोक्ष प्राप्त किये थे। गुजरात का पालिताना ग्राम इनका प्रमुख तीर्थस्थान है। वहाँ सिधुगिरि का मन्दिर है और प्रतिवर्ष मेला होता है। दूसरा जैन मेला कार्तिक के महीने में खिडी में लगता है और वहाँ के मन्दिर के ठाकुरजी की मूर्ति पास पडोस के ग्रामों में घुमाई जाती है। गोडवाड के जिला फलौदी और वरकना ग्रामों में भी जैन मेले लगते हैं।

अधिकांश यती चिकित्सा–कार्य भी करते हैं और इस नाते वह गुरु कहलाते हैं। यती लोग हाथ की सफाई दिखलाने की भी कला जानते हैं जिसके कारण यह जादूगर भी समझे जाते हैं। मालानी जिला के खेड ग्राम में एक प्राचीन जैन मन्दिर है, ठीक उसी ढंग और रूप का दूसरा जैन मंदिर गोदवाड जिला के नरलाई ग्राम में है। लोगों का विश्वास है कि यती लोग जादू के जोर से यह मंदिर खेर ग्राम से नरलाई में उठा लाये हैं। यती लोग संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता होते हैं उनके पास संस्कृत भाषा की अनेक ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें हिन्दू धर्म का खंडन किया गया है। इसका कारण है कि हिन्दू और जैनियों में प्राचीन काल से विरोध-भाव चला आ रहा है। यती विवाह नहीं करते। वह उच्च जाति के लोगों को अपना चेला बनाते हैं उनकी प्रणाली है कि गुरु का प्रथम चेला उनका उत्तराधिकारी होता है। मृत्यु के पश्चात् उनमें कोई मृत्यु संस्कार की प्रथा नहीं है। यती की मृत्यु पर उसका शरीर फूंक दिया जाता है।

वे यती जो विवाह करते हैं और घरवासियों की अवस्था में रहते हैं "महातमा" कहलाते हैं किन्तु उनकी श्रेणी अलग है और स्थान भी उनका निम्न है। यह राजपूतों और ओसवालों के गुरु भी हैं तथा भाटों के समान उनकी वंशावली भी

रखते हैं जिसकी वह दक्षिणा पाते हैं। उनके यहाँ विवाह में ब्राह्मण विद्वान संस्कार करवाते हैं। यह लोग दत्तक लेते हैं, किन्तु इनकी विधवाएँ पुनर्विवाह नहीं करतीं।

भक्त

पुरोहितों के समुदाय के समान ही भक्तों का समुदाय भी उल्लेखनीय है। इस समुदाय में तीन सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित हैं अर्थात् हिन्दू, जैन और मुसलमान। पूर्वकाल में हिन्दुओं में इतने अधिक मत मतांतर नहीं थे कि जिनके अधिष्ठाताओं ने चमत्कार दिखलाये हों। हिन्दू वेदांत के मतानुसार ब्राह्मण को पार्थिव-जीवन से हटकर साधु अथवा धार्मिक भिक्षुक बन जाना चाहिए। अनेक मत-मतान्तर जो विभिन्न रूपों और रंगों में अपने नियमों तथा सिद्धान्तों का अलग-अलग प्रचार करते हैं इन सब का आरम्भ होना ईसा के सात सौ वर्षों के पश्चात् माना जाता है। यह षट दर्शन कहलाते हैं जैसा कि निम्नलिखित दोहे से प्रकट है :

जोगी, जंगम, सेवड़ू, सन्यासी, दरवेश।
छट्टा रूप जो ब्रह्म का तामें मीन न मेख॥

मिस्टर इवटसन का कथन है कि वैरागी, साधु, जोगी और संन्यासियों के बीच का अन्तर इतना गूढ और सूक्ष्म है कि उसका वर्णन कर सकना कठिन है इसलिए इतना ही कह कर सन्तोष किया जा सकता है कि मारवाड़ में निम्नलिखित प्रकार के साधु बसते हैं :

(१) बैरागी: इसमें वैष्णव साधु तथा दादू पंथी सम्मिलित हैं :
(२) योगी।
(३) संन्यासी : इसमें दशनामी गोंसाई भी सम्मिलित हैं :
(४) समेगी : इसमें ढूंढ़िया और जैन भी शामिल हैं :
(५) फकीर : यह सब मुसलमान हैं :

वैरागी

वैरागी विष्णु के भक्त होते हैं। वह तुलसी के बीजों की माला पहनते हैं तथा मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाते हैं। यह मांस और मदिरा दोनों निषिद्ध मानते हैं तथा जीवों के प्रति दया-भाव को पवित्र समझते हैं। इनमें से कुछ तो संन्यासियों की भाँति ब्रह्मचर्य रखते हैं तथा कुछ गृहस्थ जीवन में रहते हैं। गृहस्थ जीवन में रहनेवाले अधिकांश श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। मन्दिरों में पुजारी का काम करते हैं अथवा घराऊ नौकरियाँ करते हैं। इनमें के ब्रह्मचारी खाडी कहलाते हैं। इनमें के कुछ लोग सारे शरीर में भभूत रमाते हैं और कुछ लम्बी जटाएँ सरपर

धारण किये रहते हैं। पहले हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर इन लोगों तथा संन्यासियों के बीच प्रायः झगड़ा हो जाया करता था किन्तु अब वह बात नहीं रही।

वैरागियों के चार सम्प्रदाय हैं। उनके संस्थापकों के नाम क्रमानुसार (१) रामानुज (२) निम्बार्क (३) माधवाचार्य (४) और विष्णुस्वामी हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय की अनेक गद्दियाँ हैं। प्रत्येक गद्दी का एक महन्त आचार्य है। यह मुख्यतया ब्राह्मण होते हैं। बड़े सदाचार पूर्वक जीवन बिताते हैं तथा अपना सम्पूर्ण समय भगवद् भजन में व्यतीत करते हैं।

विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव हैं। इस सम्प्रदाय को रौद्र सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री विष्णु स्वामी दक्षिण में हुए। इस सम्प्र-दाय का सिद्धान्त है कि ईश्वर शुद्धाद्वैत श्रीकृष्ण रूप एक ही है। इनके मन्दिरों में बालरूप भगवान की सेवा और पूजा होती है। यह वैष्णव सम्प्रदायी, वैष्णव महाराज विजयसिंह के शासनकाल के लगभग सम्वत् १८३६ में मारवाड़ आये थे। इन की अनेक खाँपें तथा दो विभाग हैं। लोहागिरि और ब्रजवासी। रामावत तथा नीमा-वत साधुओं में इनके वैबाहिक सम्बन्ध होते हैं। नाता की प्रथा इनमें नहीं है। दत्तक लेने की भी प्रथा नहीं है और पुत्रके अभाव में चेले सम्पत्ति पर अधिकार पाते हैं। यह लोग मांस, मदिरा का व्यवहार नहीं करते। लहसुन और प्याज नहीं खाते तथा तम्बाकू भी नहीं पीते। शव जलाते हैं। कुछ शस्त्र भी धारण करते हैं तथा राज-सेवा में नियुक्त हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय भी वैष्णव सम्प्रदाय की ही एक शाखा हे। उसका महन्त गुसाईं कहलाता है। यह विवाह करते हैं और गृहस्थजीवन बिताते हैं। गुसाईंजी का पुत्र गद्दी पर होता है; चेला कदाचित् ही गद्दी पाने का सुयोग पाता है। यह गोकुलिया गुसाईंयों के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। बालकृष्ण की पूजा करते हैं और बालकृष्ण की वह मूर्ति जिसके हाथ में लड्डू होता है उपासना में रखते हैं। उपासना में यह इस कल्पना से इतने लीन रहते हैं कि बालकृष्ण के खेलने में कहीं असुविधा न हो, अपने घर की जमीन साफ तथा चौरस रखते हैं। जोरसे बोलते नहीं कि उनसे बालकृष्ण की निद्रा में आघात न पहुँचे तथा उन्हें सुलाने के लिए अनेक बार लोरियाँ गाते हैं। जोधपुर में कृष्ण के अनेक मन्दिर हैं। जोधपुर से दो मील दूर चौपासनी ग्राम में गोवर्धन नाम का मन्दिर है। गोवर्धन कृष्ण का ही दूसरा रूप है। कहा जाता है कि यह मन्दिर उस समय जब औरंगजेब हिन्दू मन्दिरों को विध्वंस करने में उतारू हो रहा था तब गोकुल से उठाकर वहाँ ले जाया गया था। गुसाईं इस ग्राम को वैसा ही पवित्र तीर्थ स्थान मानते हैं जैसा नाथद्वारा को। यह विवाह करते हैं गृहस्थ जीवन में रहते हैं तथा स्त्रियों को कठोर परदे में रखते हैं। दक्षिणी

ब्राह्मणों की एक शाखा भट्ट नाम की है। यह अपनी कन्याएं उन्हीं लोगों में विवाहते हैं। यह लोग अपनी कन्याओं को ससुराल नहीं भेजते उलटा जामाता को अपने घर रख लेते हैं और पुत्र के समान उनके साथ व्यवहार करते हैं। मारवाड़ में इनके अनुयायियों की संख्या यथेष्ट है। महाराज विजयसिंह इनका बड़ा सत्कार करते थे। उन्होंने इनको उच्च सम्मान पूर्ण पदवियाँ दी थीं जिनका उपयोग यह अब तक करते हैं।

साधु

वैरागियों म साधुओं की संख्या अधिक है यद्यपि इनके नियम इतनें कठोर नहीं हैं जितने कि वैरागियों के। वह रामानन्द को—जो वैष्णव थे—तथा रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी को अपना संस्थापक मानते हैं। यह दक्षिण भारत से तीर्थयात्रा में काशी आये थे और प्रत्येक जाति के व्यक्तियों को शिष्य बना लेते थे। उनका सिद्धान्त था :

जाति पांति पूछें नहिं कोय।
हर को भजे सो हरि का होय॥

अर्थात् :—जो भगवान की भक्ति करेगा वही भगवान को प्रिय होगा। इसमें जाति पांति का कोई भेद नहीं है।

थोड़े समय में इनको बहुत से अनुयायी मिल गये। प्रत्येक जाति के लोग इनके सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये और यह सम्प्रदाय चल निकला। यह लोग प्रधानतः ब्रह्मचारी रहते हैं। जिस स्थान में एकत्र रहते हैं वह अखाड़ा कहलाता है। इनमें कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो गृहस्थ जीवन में रहते हैं, विवाह कर लेते हैं और मन्दिरों में पुजारी की नौकरी करने लगते हैं।

मारवाड़ में जाट साधुओं की संख्या अधिक है। यह लोग किसी भक्ति भावना से प्रेरित होकर साधु नहीं बनते बल्कि अकर्मण्यता का जीवन बिताने के लिये। यह धार्मिक जीवन में प्रवृत्त होने के लिये नहीं; प्रत्युत मनुष्य जीवन के उत्तर-दायित्व से बचने के लिये साधु बन जाते हैं। कहावत है :—

मूंड मुंडायां तीन गुण गई माथे की खाज।
मलबा छोड़ा चौधरतां हांसिल छोड़ा राज॥

अर्थात् सर मुडाने में तीन लाभ हैं। एक तो सर की खुजली मिट जाती है दूसरे मलबा चौधरी नहीं लेते और राज अपना हांसिल छोड़ देता है।

साधुओं में अनेक खांपें उत्पन्न हो गयी हैं। उनके तिलक, उनकी खांप के प्रतीक हैं। वैष्णव साधुओं में जो मूर्तिपूजक होते हैं वह रामावत और कुम्भा-

वत साधु कहलाते हैं तथा जो मूर्ति पूजा परित्याग कर देते हैं वह रामसनेही तथा निरंजनी साधु कहलाते हैं। तीसरे दल में अनेक पंथ हैं जो न तो विष्णु को मानते हैं न शिव को। वे एक मात्र ईश्वर पर विश्वास करते हैं। उनमें कबीर पंथी, दादू पंथी तथा नानक पंथी साधुओं की गणना की जाती है।

साधु लोग मठों में रहते हैं जो रामद्वारे कहलाते हैं, किन्तु साधु वेष में कितने छटे हुए बदमाश मिल जाते हैं जो सांसारिक किसी भी वासना का त्याग नहीं करते तथा हिन्दुओं की मूर्खता की बदौलत राजसी भोजन पाते हैं। वह न साधुता के किसी भी नियम का पालन करते हैं और न किसी प्रकार की भक्ति या ध्यान से सम्पर्क रखते हैं। ऐसे छद्म वेषधारी जनों की मनोवृत्ति का परिचय निम्नलिखित एक पद्य से मिलता है :—

दादू पंथी होजा माया
ज़ो तू चाहे इन्द्रियों का भोग
जा खिरापे लेले जोग
जो तू चाहे व्याज बिन ज्ञानी
तऊ गड़े का हो जा निरंजनी
जो तू चाहे भोजन खाया
हो जा रामसनेही माया

रामावत साधु

रामावत साधु रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और विष्णु तथा राम की उपासना करते हैं। पादरी शेरिंग का कथन है कि यह अपने शरीर पर शंख, चक्र, गदा और पद्म की आकृति छापे रहते हैं कारण कि यह विष्णु के चिह्न माने जाते हैं। यह छापें प्रधानतः द्वारिका में ली जाती हैं किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी और ही स्थान पर चेला बनता है तो उसे यह छापें वहीं लगवानी पड़ती हैं।

इनके अनेक गुरुद्वारे हैं। मारवाड़ में प्रधान गुरुद्वारे धुलेरिया, झींतडा, तथा खोड में हैं। झींतड़ा में जनरायजी का एक मंदिर है। चम्पावत सरदार इस सम्प्रदाय के प्रधान शिष्य हैं। खोड ग्राम में नरसिंहजी का मन्दिर है और मेंडतिया सरदार उसके भक्त हैं। रामावत केवल उच्च जाति के व्यक्तियों को ही शिष्य बनाते हैं। अनेक रामावत साधु गृहस्थ धर्म में भी रहते हैं तथा वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं। वह मन्दिरों में पुजारी की नौकरी करके अपना गुजारा करते हैं। इनके महन्त ब्रह्मचारी रहते हैं। महन्तों की मृत्यु हो जाने पर उनके शव को बिठाकर श्मसान भूमि में ले जाते हैं और वहाँ उसे जला देते हैं।

मारवाड़ के रामावत अपने सम्प्रदाय का जन्म जोधपुर जिला के धोलेरिया ग्राम निवासी रामानन्द नामक एक पुरोहित से मानते हैं। यह रामानन्द महाराज अभयसिंह के शासन काल में साधु हुआ था।

कुम्भावत साधु

इस सम्प्रदाय का संस्थापक कुम्भावत नामक एक कुम्भार था। वह अपने भगवत् अनुराग के लिए प्रसिद्ध था। उसी व्यक्ति के नाम से यह सम्प्रदाय चला। तथा इसके अनुयायी कुम्भावत कहलाये। यह राम और कृष्ण की उपासना करते हैं तथा रामानुजी तिलक धारण करते हैं। यह विवाह करते हैं तथा गृहस्थी जोड कर रहते हैं। यह विवाह सम्बन्ध रामावत तथा नीमावत साधुओं से ही जोड़ते हैं तथा इनके शव जलाये जाते हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुछ और साधु भी हैं जैसे : राँकावत और नीमावत इत्यादि। जो अपने संस्थापकों के नाम पर पुकारे जाते हैं यह सब अपने अपने तिलकों द्वारा पहचाने जाते हैं।

रामसनेही साधु

रामसनेही शब्द का अर्थ है राम के प्रेमी। इस सम्प्रदाय के अनुयायी सर्वदा राम राम शब्द का उच्चारण करते रहते हैं। राम सनेहियों में दो विभाग हैं। एक तो वह है जिसका सम्बन्ध मेवाड़ के शाहपुरा के गुरुद्वारा से है और दूसरा वह जिसका सम्बन्ध मारवाड़ के खेडापा गुरुद्वारा से है। पहले थोक का संस्थापक रामचरन नाम का एक व्यक्ति था। रामचरन का जन्म सम्वत् १७७६ में जयपुर में हुआ था। यह जाति का महाजन था। एक रात उसने स्वप्न देखा कि वह एक नदी में बहता जा रहा है उस समय एक वृद्ध साधु ने आकर उसे निकाला। आँखें खुलते ही ही उसने अपने सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया और साधु हो गया। इसके शिष्य चारों ओर फैले हुए हैं और ब्राह्मण राजपूत तथा महाजनों को शिष्य बनाते रहते हैं। गुरु की मृत्यु पर गद्दी पहले चेले को दी जाती है। यह लोग वस्त्र नहीं पहनते केवल एक लंगोट लगाते हैं तथा चादर ओढते हैं। पर विवाह नहीं करते और भिक्षा द्वारा गुजारा करते हैं। यह रामद्वारों में रहते हैं। इनके शव जलाये जाते हैं।

खेडापा के रामसनेही अपनी उत्पत्ति रामावत साधुओं से बताते हैं यह लोग रामानन्द स्वामी के एक शिष्य अन्तानन्द के चेले हैं। इनका प्रधान गुरुद्वारा मारवाड़ के खेडापा गाँव में है। यह वस्त्र तथा आभूषण पहनते हैं तथा कोई-कोई व्यापार भी करते हैं इन का एक गुरुद्वारा बीकानेर जिले के सीथल ग्राम में भी है। इनके महन्त रामदास तथा मालदास दोनों मांझी जाति के व्यक्ति थें अतः पहले यह इस जाति के
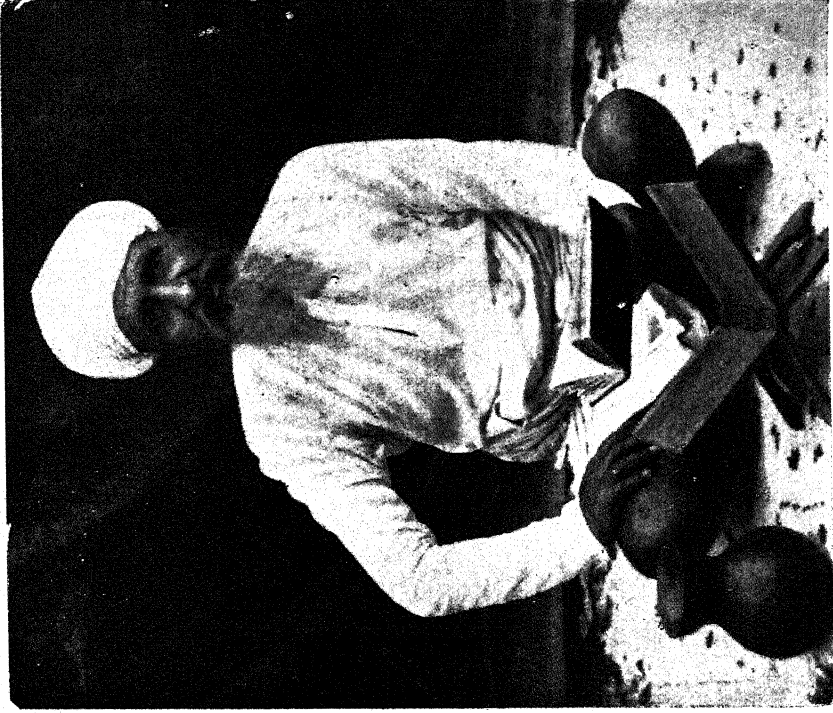
रामावत साधु

कुम्भावत साधु

कबीर पंथी
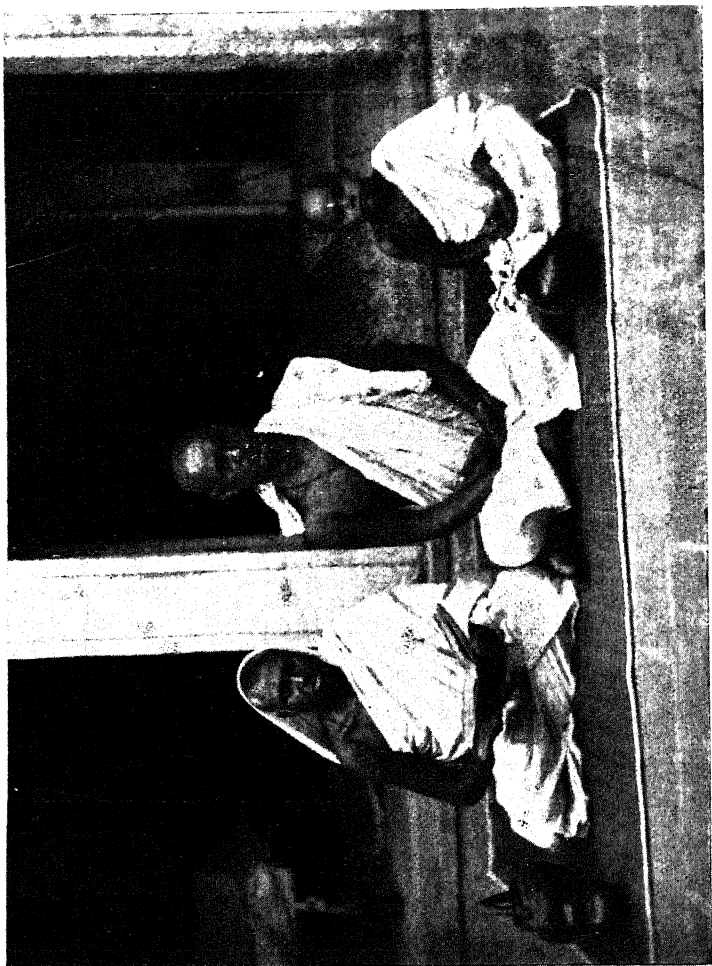
रामसनेही साधु

व्यक्तियों को भी चेला बनाते थे; किन्तु अब केवल उच्च वर्णों के लोगों को ही शिष्य बनाते हैं। पहले यह विवाह भी किया करते थे, किन्तु अब इनके महन्त ब्रह्मचारी हैं।

निरंजनी साधु

निरंजनी साधु हरिदास के बनाये नियमों को मानते हैं। हरिदास मारवाड़ के नागोर जिले का एक जाट था। कहावत है कि एक दिन वह आखेट में गया और वहाँ उसने एक गर्भवती मृगी को तीर मार दिया। उस निरीह प्राणी को मारने के पश्चात् उसे इतना पाश्चात्ताप हुआ कि उसने अपने कपड़े फाड़कर फेंक दिये तथा बारह वर्ष के लिए, ईश्वर की आराधना करने एक जंगल में चला गया। इसलिए कि उसने निरंजन निराकार की उपासना की उसके मत के अनुयायी निरंजनी कहलाये। उसने बावन चेले बनाये थे जिनमें से प्रत्येक ने निरंजनी साधुओं की एक शाखा स्थापित की। इनमें कुछ व्यक्ति ब्रह्मचारी रहते हैं। तथा निहंग साधु कहलाते हैं। यह एक खाकी गुदडी अपने पास रखते हैं। इनमें से अनेक गाँवों में रहनेवाले गृहस्थ होते हैं जो विवाह करते हैं और नाता भी कर लेते हैं। यह माँस नहीं खाते और न लहसुन तथा प्याज खाते हैं। इनकी स्त्रियाँ सफेद छींट का घाघरा अथवा पेटीकोट पहनती हैं और यही उनकी पहचान है। यह निम्न जातिवालों के हाथ का पानी नहीं पीते। इन लोगों के यहाँ मृतक जलाये जाते हैं।

कबीर पंथी

लगभग ६०० वर्ष बीते, जब यह पंथ रामानन्द के एक अत्यन्त विख्यात शिष्य कबीर ने स्थापित किया था। कबीर जाति का जुलाहा था। कबीर की शिक्षा कबीर की वाणी के रूप में दूर-दूर तक विस्तार पा रही है। कबीर का जीवन महान था और उसकी मृत्यु थी एक रहस्य। डाक्टर हंटर का कथन है कि कबीर की मृत्यु पर हिन्दू उसके शव का दाह करना चाहते थे और मुसलमान अपने मजहब के अनुसार गाडने पर उतारू हो गये थे; जिस समय दोनों झगड़ रहे थे कबीर एक दम से उठकर बैठ गये और बोले कि कफन के नीचे देखो। जब लोगों की दृष्टि कफन की ओर आकर्षित हुई तब कबीर वहाँ से अदृश्य हो गये। लोगों ने देखा कि कफन के नीचे सुन्दर फूलों का एक ढेर लगा है। हिन्दुओं ने उसमें के आधे फूल लेजाकर अग्नि में समर्पित किये और अवशिष्ट आधे मुसलमानों ने लेजाकर अपनी प्रथा के अनुसार दफना दिये।

कबीर का नाम एक सच्चे ईश्वर भक्त और प्राणिमात्र के हित-चिन्तक निर्वैद महात्मा के रूप में आज भी जीवित है और चिरकाल तक जीवित रहेगा। आज भी बंगाल के सुदूर दक्षिण पुरी में कबीर के मठ के द्वार पर उपस्थित हो उत्तरी भारत के यात्री एक चम्मच भर चावल का जल प्रसाद-रूप में प्राप्तकर धन्य

होते हैं। कबीर पंथी विवाह नहीं करते और प्रत्येक जाति के व्यक्ति को अपना चेला बना लेते हैं। वह गेरुए वस्त्र पहनते हैं और शव को बैठी हुई स्थिति में दफनाते हैं। मारवाड़ के महाराज विजयसिंह के शासन काल में कबीर पंथियों का आगमन हुआ था।

दादू पंथी

इस सम्प्रदाय के संस्थापक महात्मा दादू अहमदाबाद निवासी एक नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १६०१ ई० में हुआ था, 'कुछ लोगों का कथन है कि यह जाति के धुनिया थे। पादरी एम. ए. शेरिंग ने कहा है कि दादू कबीर के शिष्य थे, किन्तु दादू पंथी इसे अस्वीकार करते हैं क्योंकि दादू कबीर के दो सौ वर्ष पश्चात् हुए। कहा जाता है कि दादू की अवस्था तेरह वर्ष की थी और वह एक दिन अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे उस समय उनकी एक वृद्ध साधु से भेंट हुई जिसने दादू के मुंह में थूक दिया। कहा जाता है कि साधु के रूप में भगवान ने इसप्रकार सत्य धर्म की दीक्षा दी। उसके पश्चात् वह मारवाड़ आये और वहाँ से जयपुर प्रान्तवर्ती नराणा नामक गाँव में जाकर निवास किया। उस जमाने में कछवाहा राजपूतों की अन्यतम जिसका नाम खांगरोत नामक खांप के सरदार की जागीर में वह गाँव था। दादू इस गाँव में अपने सम्प्रदाय की गद्दी स्थापित करना चाहते थे, किन्तु खांगरोत सरदार इस विचार के विरुद्ध था अत: बड़े लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् दादू को इस कार्य में सफलता मिली। इसके अनन्तर दिल्ली के बादशाह को दादू की महत्ता का पता लगा और उसने उनको दिल्ली आमंत्रित किया। कहा जाता है कि दादू के दिल्ली पहुँचने पर अकबर ने उनसे प्रश्न किया :—

अकबर पूछे फक्कड़ को तीनों बात डी।
अहरन, हथौड़ा, संडासी पहले कौन घड़ी॥

इसका भावार्थ यह हुआ कि निहाई, हथौड़ी और संडसी किसी भी काम के लिए तीनों एक साथ आवश्यक होती हैं। किन्तु इन तीनों में से कौन सी चीज पहले बनाई गई। कहा जाता है कि इसका उत्तर दादू ने निम्नलिखित दोहे में दिया :—

एक शब्द में सब किया ऐसा समरथ सोय।
आगे पीछे वह करे जो बल हीना होय॥

इसका भावार्थ यह हुआ कि वह इतना बलवान है कि उसने सब चीजें एक साथ बनाईं, आगे पीछे वही बनाते हैं जो असमर्थ होते हैं।

यथा समय अकबर ने एक दरबार किया और उसमें दादू को भी बुलाया गया। किन्तु दादू के बैठने के लिए उस दरबार में कोई स्थान नहीं बनाया। जब अकबर ने आँख उठाई तो देखा कि दादू सिंहासन पर बिराजमान है। दादू का यह चमत्कार देखकर लोग चकित हो गये। दादू का शरीरांत सम्वत् १३६० में तराना ग्राम में हुआ।

दादू का उपदेश उनके कहे हुए पांच हजार छन्दों में है जो 'दादूवाणी' नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। उनके १५२ शिष्य थे, जिनमें से ५२ ने देश के विभिन्न स्थानों में गद्दियाँ स्थापित कीं। दादू पंथी केवल उच्च जाति के व्यक्तियों को शिष्य स्वीकार करते हैं। दादू पंथ की दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व उस व्यक्ति को चोटी कटा देने के साथ ही सिर मुंड़वा देना पड़ता है। इसके पश्चात् दादू का पवित्र मंत्र उनके कान में फूंक दिया जाता है और वह दादू पंथ का सदस्य स्वीकार कर लिया जाता है। दादू पंथी, हिन्दुओं के अनेक देवी–देवताओं को नहीं मानते, केवल एक ईश्वर को मानते हैं। दादू पंथी मांस और मदिरा का व्यवहार नहीं करते, किन्तु वह किसी भी उच्च हिन्दू जाति का पकाया हुआ भोजन कर सकते हैं। यह एक नुकीली टोपी और ढीला चोंगा पहनते हैं। मृत्यु के पश्चात् उनके यहाँ शव जलाया जाता है।

दादू पंथियों के दो विभाग हैं। एक तो उन लोगों का है जो विवाह करते हैं तथा घर बार बना कर रहते हैं। दूसरे विभाग में वे लोग हैं जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करतें हैं और निहंग कहलाते हैं। इन्हीं की एक खांप का नाम नागा है। खोज करने पर पता लगा है कि मारवाड़ के मारोठ, सांभर, नावां और पर्वतसर परगनों में अनेक दादू पंथी गृहस्थ-परिवार आबाद हैं। इनके वैवाहिक सम्बन्ध जयपुर राज्य के अनेक स्थानों में होते हैं। विवाह संस्कार ब्राह्मण कराते हैं। दादू पंथी यद्यपि बहुत धर्मपरायण व्यक्ति होते हैं किन्तु जीवन-निर्वाह के लिए वे सांसारिक काम भी करतें हैं। खेती करने के अतिरिक्त रुपये भी कर्ज देते हैं। ऋणग्रस्त व्यक्तियों के साथ इनका व्यवहार अत्यन्त कठोर होता है। इनमें वे लोग जो किसी समाज से सम्बन्ध नहीं रखते विरक्त कहलाते हैं। भगवाँ वस्त्र धारण करतें हैं तथा घर-घर घूमकर भिक्षा लाते हैं। कुछ लोग भभूत भी रमाते हैं और लम्बी जटा रखते हैं।

नागा दादू पंथियों की खांप के संस्थापक सुन्दरदास नामक एक साधु थे। सुन्दरदास राजपूत जाति का व्यक्ति था। वह जब दादू के पास पहुंचा तब वह सशस्त्र था और उसी परिस्थिति में वह शिष्य स्वीकार कर लिया गया था। यही कारण है कि उसके चेले सैनिक व्यवसाय करते हैं। जयपुर राज्य में यह महत्वपूर्ण

सैनिक माने जाते हैं किन्तु इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि रामजी की मूर्ति लड़ी लड़ी न लड़ी। वह जमकर युद्ध नहीं कर सकते अतः सैनिक की अपेक्षा लुटेरे अधिक अच्छे होते हैं। नागा साधु आजीवन अविवाहित रहते हैं। वस्त्रों के स्थान पर केवल एक लंगोटी लगाते हैं और एक छोटी धोती लपेटते हैं इसीलिए नागा अथवा नंगे कहलाते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि वह पारिवारिक जीवन से एकदम अलग हो जाते हैं। यह चेले बना बनाकर अपनी संख्या बढ़ाते हैं। किसी समय इनसे कर्ज लेने में लोग बहुत भयभीत होते थे कारण कि इनका व्यवहार कठोर होता था। बहुधा इनका ऋण न चुकने पर यह ऋणी व्यक्ति की सन्तान तक उससे छीन कर अपना चेला बना लेते हैं।

नानक पंथी

इस नाम के सम्प्रदाय के व्यक्ति सिख कहलाते हैं। यह गुरु नानक के शिष्य हैं। पादरी एम. ए. शेरिंग का कथन है कि इस पंथ के साधू दीक्षा लेकर विवाह नहीं करते और भगवाँ वस्त्र पहनते हैं। उदासियों के समान इन में नागा पंथी नहीं होते। यह लोग सब जाति के हिन्दुओं के घर का पका भोजन खा लेते हैं। यह किसी देव विशेष की मूर्ति नहीं पूजते प्रत्युत गुरु नानक रचित अपने पवित्र ग्रन्थ साहब की पूजा करते हैं।

जोगी

जोगी गोरखनाथ पंथ के मतानुयायी हैं। इनका विश्वास है कि गोरखनाथ अब भी जीवित हैं। यह शिव की पूजा करते हैं।

मिस्टर विल्सन ने लिखा है कि जोगी 'योगी' शब्द का अपभ्रंश है और पातञ्जलि के वेदान्त की विचारधारा के अनुयायियों पर लागू है। इस विचारधारा के अनुसार योग के अभ्यास से मनुष्य इसी पार्थिव जीवन में जो चाहे सो प्राप्त कर सकता है। अर्थात् पंच तत्वों पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। किन्तु इस जमाने में जोगी का केवल इतना ही अर्थ रह गया है कि यह लोग कान फडवाकर भगवाँ वस्त्र पहन लेते हैं। ये यौगिक विचार की कोई बात जानें अथवा न जानें इस की कोई परवाह नहीं। इनके बारह मठ हैं। यह माँस और मदिरा दोनों में अनुरक्ति रखते हैं। इनमें ब्रह्मचारी कोई एक आध ही होते हैं अन्यथा सब विवाह करते हैं। यह नेपाल को अपना तीर्थ स्थान मानते हैं। मृत्यु के पश्चात् इनके शव गाड दिये जाते हैं। इस क्रिया को यह लोग 'समाधि' कहते हैं।

जोगियों के दो थोक हैं। एक कनफटा और दूसरा जोगेश्वर स्वरूप अथवा आयसजी। कनफटे योगियों में नाथ लोग बहुत सम्मानित माने जाते हैं। यह

दादू पंथी

नानक पंथी

जोगी
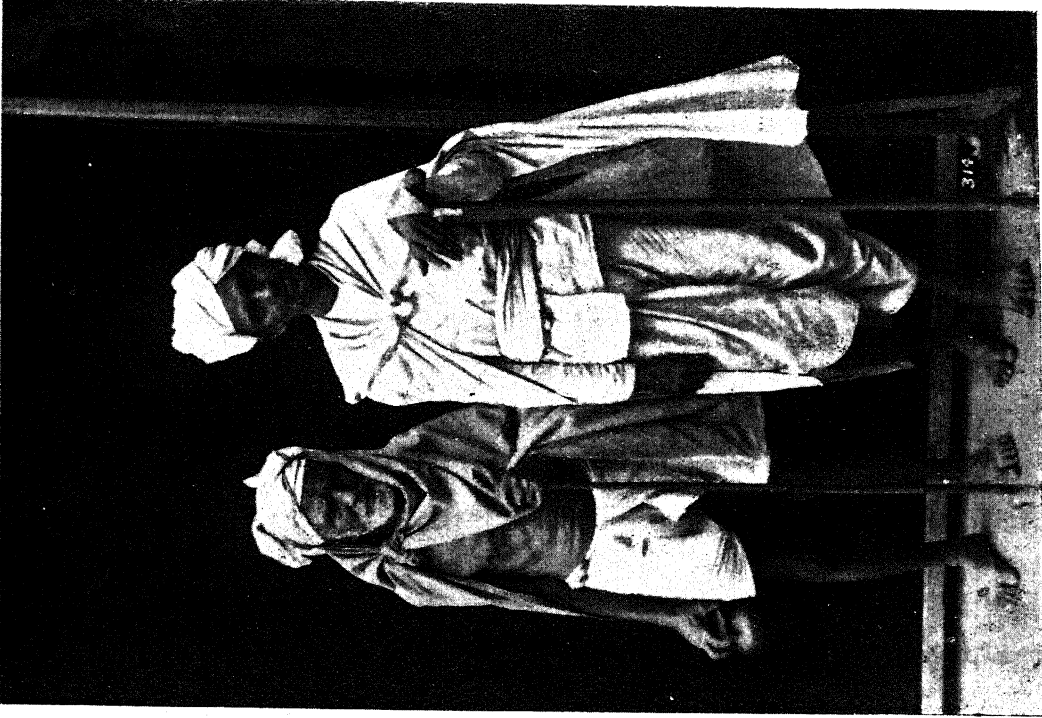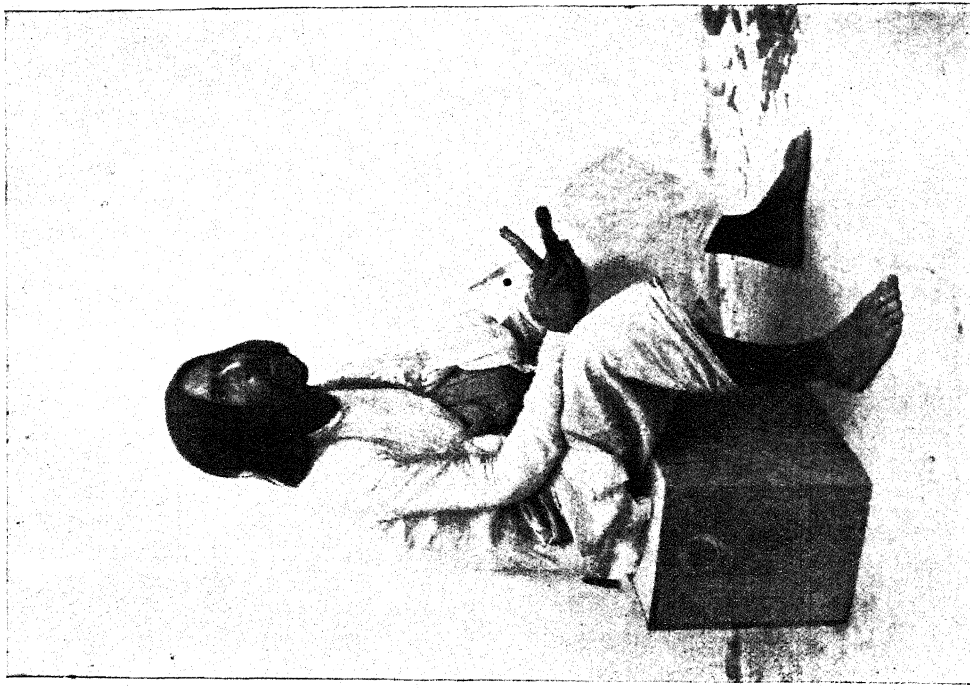
संन्यासी
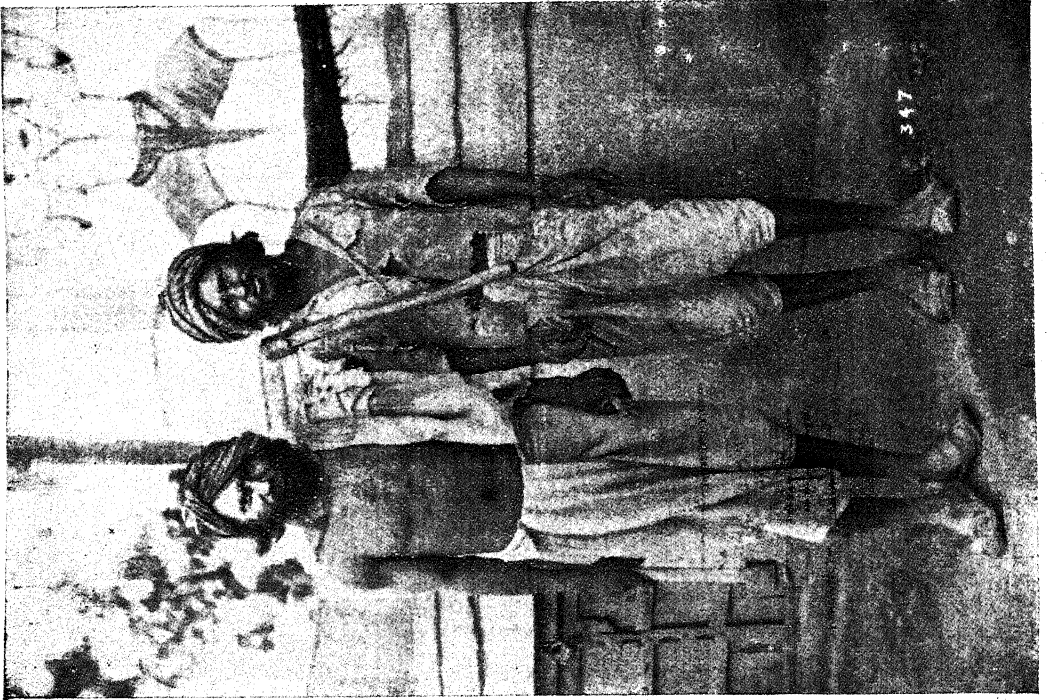
जालन्धर नाथ के शिष्य हैं। इन लोगों में स्त्रियों को छोड़कर, पुरुषों के लिए अपने कान फड़वा कर उनमें गोल मुंदरें पहनना अनिवार्य है। कान फड़वाने के पूर्व यह लोग औघड़ कहलाते हैं। इन लोगों में घरबारी भी होते हैं जो विवाह तथा नाता अथवा करेवा भी करते हैं। इन लोगों की एक पक्की जाति है इसमें अनेक वंश के राजपूत हैं तथा जेसलमेर के भाटी मुख्य रूप से सम्मिलित हैं।

यह लोग अनेक राजपूत खाँपों के गुरु हैं। कर्नल वाल्टर का कहना है कि इनका एक गुरु था जिसका नाम मल्लीनाथ था। मालानी स्थान इन्हीं के नाम पर बसाया गया था और गरीबनाथ नामक एक गुसाई इसका बसानेवाला था। इन लोगों में विवाह एक दम वर्जित है और यदि कोई किसी स्त्री के झगड़े में पकड़ा जाता है तो वह मंदिर से तत्क्षण बाहर निकाल दिया जाता है तथा फिर कभी वहाँ नहीं आ पाता। मंदिर के बाहर वह स्त्री रख सकता है चाहे विवाह करके चाहे रखेली के रूप में। राजा मानसिंह नाथ पंथियों का बहुत सत्कार करते थे। उनके समय में यह नाथ पंथ अत्यन्त प्रभावशाली था। महामंदिर के आयसजी को अब भी असाधारण अधिकार प्राप्त है।

मसानियाँ जोगी इनसे निम्नस्तर के माने जाते हैं इन लोगों का विकास भी महामंदिर के नाथों से ही है। यह लोग मुर्दों पर का कफन ले लिया करते थे इसीलिए ये मसानिया जोगी कहलाते हैं तथा इनका स्थान भी निम्न हो गया। यह नाथों के घर विवाह नहीं कर सकते। उनके गुरु चिरियानाथ थे जिनकी समाधि मारवाड़ में पलासनी ग्राम में बनी हुई है तथा यहीं इनका गुरुद्वारा है। यह जोधपुर में अधिक हैं और भीख माँगने अथवा मजदूरी का व्यवसाय करते हैं। यह शव को कपड़े की एक झोली में डालकर ले जाते हैं और उसे बैठी हुई स्थिति में दफनाते हैं। यह चेले के कान इसलिए फाड देते हैं कि वह इनका दल छोडकर पुनः किसी जाति में सम्मिलित न हो सके। इनकी कहावत है :

राख लगाई ने धोदे
और कान फडाई ने बोदे।

अर्थात् शरीर पर जमी हुई राख धोकर कोई व्यक्ति अपनी जाति को पुनः लौट सकता है किन्तु कान फडा लेने पर वह ऐसा नहीं कर सकता।

जालन्धरनाथ के बारहवें शिष्य ने इनकी जो शाखा चलाई उसका नाम कालबेलिया जोगी पड़ा। रावल जोगी भी इसी श्रेणी में होते हैं। यह जोगी निम्न श्रेणी के भिखारी माने जाते हैं। इन दोनों का मारवाड़ के डिगाई ग्राम में एक ही गुरुद्वारा है। तीर्थ यात्रा करके ये हिंगलाज जाते हैं और मंदिरों के चढोकों से इनकी गुजर बसर होती है। इनमें के अनेक लोग साँप पकड़ने या संपेरे का पेशा करते हैं तथा

जादू भी दिखलाते हैं। यह भंगी, साँसी, मीना और भीलों के हाथ का छोड़कर समस्त हिन्दू-मुसलमानों के हाथ का भोजन ग्रहण करते हैं। इन लोगों में अनेक खाँपें हैं और यह नाता भी करते हैं। यह अपने पास मिट्टी का एक खप्पर रखते हैं, जिसे आपस के झगड़ों में फोड देते हैं। कहावत है :

जोगी-जोगी, लड़ें और खप्परों की हानि।

संन्यासी

संन्यासी स्वामी शंकराचार्य के मत के अनुयायी कहलाते हैं। मिस्टर इवटसन का कथन है कि यह केवल उस चतुर्थ अवस्था का नाम है जिससे कि प्रत्येक ब्राह्मण को गुजरना चाहिये। किन्तु अब यह अलग एक श्रेणी के रूप में शैव साधुओं का एक दल हो गया है जिनमें तीन भेद हैं। यथा संन्यासी, दंडी, और शामी।

यथार्थ में संन्यासी उन लोगों का नाम है, जो पार्थिव संसार; यहाँ तक कि अपने शरीर तक की चिन्ता का परित्याग करते हैं किन्तु इनमें अनेक व्यक्ति ऐसी प्रथाओं का भी परिपालन करते हैं जो अत्यन्त कठोर होती हैं। उदाहरणार्थ कुछ लोग अपना शरीर वृक्ष से उलटा लटका देते हैं अर्थात् शिर नीचे और पाँव, तथा ऊपर कुछ लोग असीमित समय तक अपना एक हाथ ऊपर को उठाये रहते हैं। बहुतेरे काँटों के बिछावन पर लेटते तथा बैठते हैं। यह लोग गर्मियों की जलती हुई धूप में भी बैठते हैं।

दंडी वह लोग कहलाते हैं जो अपने हाथ में एक दंड रखते हैं तथा इसी दंड के कारण उनका नाम दंडी स्वामी हुआ। दंडी अग्नि, धातु या धातु से बने हुए पात्र तक को स्पर्श नहीं करते इसलिए अन्य हिन्दुओं के समान वह अपना भोजन स्वयं नहीं पका सकते। धातु के न छूने के कारण वह पैसे कौडी को भी आवश्यक नहीं समझते और न उसका व्यवहार ही करते हैं। वह गेरुये रंग की एक कफनी मात्र अपने पास रखते हैं और कोई भी वस्त्र नहीं रखते। यद्यपि सिद्धान्त रूप से उनके पास एक पैसा भी नहीं होता तो भी वह भिक्षा नहीं माँगते। दूसरों पर उनकी चिंता का भार रहना उनकी प्रधान विशेषता है। इतना होने पर भी वह भूखों नहीं मरते उनको ब्राह्मण, गुसाईं अथवा अन्य उच्च जाति के लोग भोजन देतें रहते हैं। वह विवाह नहीं करते और न कहीं अपना घर बनाते हैं। अर्थात् संसार में अपनी कहलाने-वाली उनके पास कोई भी वस्तु नहीं होती। पड़ रहने के लिए एक छोटी चटाई, एक वस्त्र जो वह पहनते हैं उसी का तकिया, एक डंडा तथा जल रखने का एक कमंडल, बस यही उनके जीवन की सांसारिक सम्पत्ति होती है।

शामी, गुसाईं तथा अतीथ भी कहलाते हैं। कर्नल वाल्टर ने लिखा है कि यह लोग माँस और मदिरा के खाने-पीने वाले होतें हैं। इनके शरीर मृत्यु के पश्चात्

फूंके नहीं जाते। वरन् पृथ्वी में दफना दिये जाते हैं। यह महादेव के उपासक होते हैं। गुसाईं अनेक श्रेणियों के होते हैं। कुछ अपने शव को बैठी दशा में दफन करते हैं और कुछ सीधा लेटा कर। इनके शव उसी स्थान पर जहाँ जीवन काल में रहे हैं दफन कर दिये जाते हैं। वहाँ मिट्टी का एक ऊंचा चबूतरा बना दिया जाता है जिस पर महादेव की मूर्ति स्थापित कर दी जाती है। मारवाड़ के इलाकों में इनमें के अनेक लोगों के पास गाँव हैं और वे धनवान हैं। जो गृहस्थ हैं वह कृषि करते हैं किन्तु अधिकांश भिखारी हैं और लोगों के दान पर जीवित हैं। इन लोगों में दस भेद हैं जो दसनामी कहलाते हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं:

१. गिरि २. पुरी ३. भारती ४. वन ५. अरण्य ६. पर्वत ७. सागर ८. तीर्थ ९. आश्रम १०. सरस्वती।

यह शिव के उपासक होते हैं तथा देवी-पूजा भी करते हैं। यह लोग प्रधानत: घरबारी होते हैं और आपस में विवाह करते हैं। यह अपने अन्य विभागों में भी विवाह कर सकते हैं केवल एक ही गुरुद्वारे के शिष्य होने चाहिए। गुरुद्वारे के सम्बन्ध से ही यह खांप मानते हैं। ब्राह्मण इनके विवाहों में संस्कार कराता है। यह मांसाहारी होते हैं। और मृत्यु के पश्चात् इनके शव गाड़े जाते हैं।

गृहस्थों में जो शस्त्र धारण करते हैं वह महापुरुष कहलाते हैं। यह प्रधानत: राज्य में सिपाही की नौकरी करते थे।

उच्च जाति के व्यक्तियों को यह चेला बनाते हैं। पहले उनका सर मूंडा जाता है और हाथ में खप्पर दे दिया जाता है, तब कान में पवित्र मंत्र फूंक कर वह चेला बना लिया जाता है और वह शामी पंथ का सदस्य हो जाता है। इन लोगों में जो अधिकार पुत्र को होते हैं वही चेलों को भी, तथा सगे और सौतेले, वैधानिक अथवा अवैधानिक, सब प्रकार के पुत्रों को समान अधिकार होता है। चेले भी उसी परिवार में विवाह कर सकते हैं जिसमें कि पुत्र। कहीं-कहीं चेलों को प्रधानता दी जाती है। औरस अथवा असली पुत्र "विंदका" कहलाते हैं और आत्मिक पुत्र अर्थात् चेले "नादका" कहलाते हैं।

शामियों की स्त्रियाँ शामन कहलाती हैं। वह साधारण स्त्रियों के समान वस्त्र पहनती हैं। जो स्त्रियाँ हिंगलाज का तीर्थ कर आती हैं तथा गृहस्थी का परित्याग कर देती हैं वे पुरुषों के वेष में रहने लगती हैं। घाघरे के स्थान पर धोती तथा अंगरखा पहनती हैं और सर पर पगड़ी बांधती हैं। इनका नाम भी बदल कर अवधूतनी हो जाता है।

शामियों में अनेक लोग विवाह नहीं करते तथा निहंग अथवा अवधूत का जीवन गुजारते हैं। वह अपने शरीर पर भस्म लगाते हैं। बाघ अथवा मृगचर्म, एक

कमंडल तथा एक चिमटा अपने साथ रखते हैं और ये लम्बे बाल भी रखते हैं। यह लोग गृहस्थ लोगों से भोजन के प्रत्याशी रहते हैं। शामी लोगों के महन्त ब्रह्मचर्य रखते हैं। प्रत्येक खाँप का महन्त होता है और उनके ऊपर भी एक महन्त होता है जो दशनामी महन्त कहलाता है।।

समेगी

समेगी जैन साधुओं की एक खांप है। यह यती लोगों के अनेक जत्थों से निकल कर बनी है। लगभग सोलहवीं शताब्दी में अहमदाबाद में आनन्द विमल सूरी नाम के एक व्यक्ति ने इसकी स्थापना की थी। समेगी साधु पीले वस्त्र पहनते हैं और भ्रमण करते हैं। यह एक स्थान पर २७ दिन से अधिक नहीं ठहरते। इनके नियम तथा त्योहार वही होते हैं जिन्हें यती मानते हैं किन्तु मूर्तिपूजा नहीं करते। यह ढूँढियों के समान अपने मुँह पर कपड़ा नहीं लटकाते। बल्कि अपने हाथ में एक कपडा लिये रहते हैं जिसे बोलते समय मुँह के सामने लगा लेते हैं। यह विवाह नहीं करते परन्तु इनके दल में स्त्रियाँ होती हैं और वह भी पीले वस्त्र पहनती हैं। पुरुष तथा स्त्री दोनों एक डंडा अपने पास रखते हैं। ब्राह्मण इनके किसी संस्कार में भाग नहीं लेते। यह प्रत्येक जाति के व्यक्ति को चेला बनाते हैं। यह भिक्षा पर गुजारा करते हैं। पीला वस्त्र भी भिक्षा में ही प्राप्त करते हैं। किन्तु उसका मूल्य ग्यारह रुपये से अधिक न हो। अन्यथा वह अस्वीकार कर देते हैं। इनके शरीर मृत्यु के पश्चात् जलाये जाते हैं और जलाने के पूर्व शव को स्नान कराया जाता है।

ढूंढिया

जैन धर्म के समस्त पंथों में से यह पंथ सर्वाधिक धर्म परायण है। सम्वत् १५४५ में जती पंथ के लूंका गच्छ से इसका जन्म हुआ था। मिस्टर इवटसन का कथन है कि कट्टरपंथी जैनियों ने इनको बहुत दुःख दिया था जिससे संतप्त होकर इन्होंने किसी ढूंढे (टूटे फूटे खंडहर) में छिप कर उनसे अपनी प्राण रक्षा की थी यही कारण है कि इनका नाम ढूंढिया पडा। इनमें दो समुदाय हैं। एक का नाम बाईस पंथी और दूसरे का तेरह पंथी। बाईस पंथी उस समुदाय का नाम है जिसे बाईस अनुयायियों ने अपनी सम्मिलित शक्ति से प्रारम्भ किया था तथा तेरह पंथी का आरम्भ तेरह व्यक्तियों के संयुक्त परिश्रम से हुआ था। कहा जाता है कि सम्वत् १८३१ में तेरह पंथी बाईस पंथियों से ही निकले थे।

बाईस पंथी केवल उच्च जातियों के लोगों को ही शिष्य बनाते हैं तथा तेरह पंथी केवल उनको शिष्य बनाते हैं जिनके साथ बैठकर वह भोजन कर सकें। शिष्य का प्रवेश इनके यहां एक बड़ा उत्सव और शुभ उपलक्ष्य समझा जाता है

ढूंढिया

समेगी
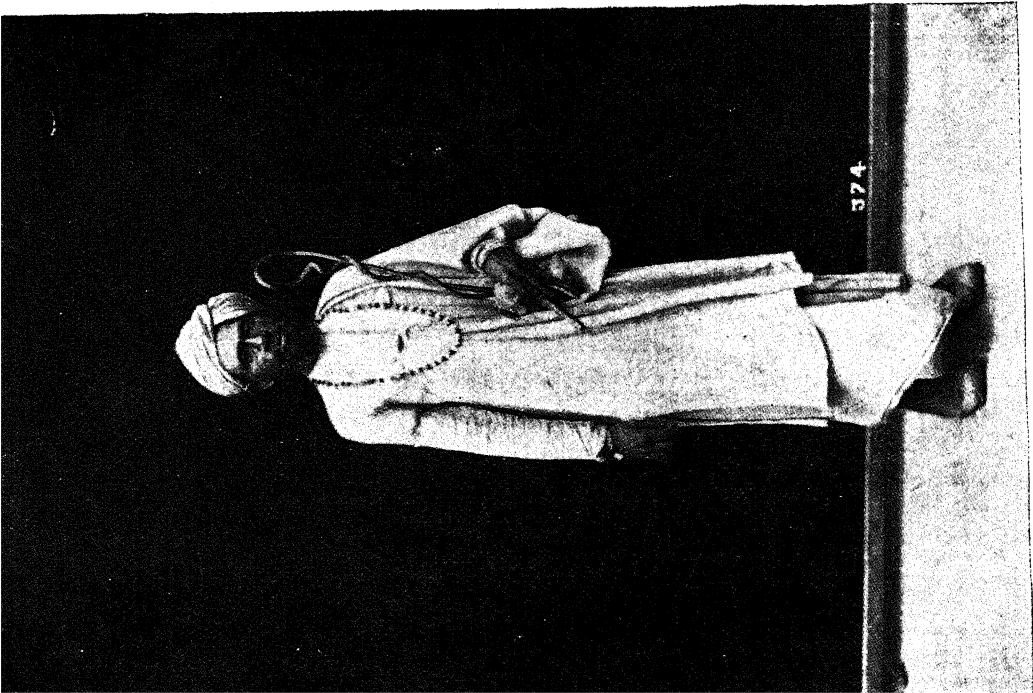
फकीर

मंदिर सेवक

तथा बडी धूमधाम से मनाया जाता है। शिष्य होने के प्रत्येक प्रार्थी को शिष्य बनने के पूर्व अपने माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों से आज्ञा प्राप्त करनी पडती है। तत्पश्चात् शिष्य बनने के एक सप्ताह पूर्व से ही वह सुन्दर और मूल्यवान वस्त्राभूषण धारण करता है तथा पालकी पर बैठ कर बडी शान और ठाठ-बाट के साथ नगर के बाहर किसी मंदिर अथवा उद्यान में ले जाया जाता है जहां वह शिष्य होने के दिन तक अत्यन्त सुन्दर वस्त्र व भोजन का उपभोग कर सुख का जीवन व्यतीत करता है। सुन्दर वस्त्र पहनता है, उत्तम स्वादिष्ट भोजन करता है, इत्र लगाता है तथा मनोहर सुगन्धित पुष्प बिछाता है, सूंघता है और धारण करता है। शिष्य बनने के दिन उसके सर के बाल मुँडवा दिये जाते हैं और साधु वेष धारण करवा दिया जाता है। उस समय गुरु उसके सिर के बाल नोच लेता है और कानों में पवित्र मंत्र फूँक देता है तथा संसार त्याग की शिक्षा उसको देता है। उस समय के नोचे हुए बालों को बडी उत्कंठा से लोग प्राप्त करते हैं और पुत्र जन्म की कामना रखनेवाली स्त्रियां उनके यंत्र बनाकर अपनी दाहिनी भुजा में बाँधती हैं। इसके पश्चात् उपस्थित लोगों को मिठाई और नारियल बांटे जाते हैं। नया शिष्य वह रात उसी स्थान पर व्यतीत करता है जहां पर दीक्षित हुआ हो। दूसरे दिन वह उस स्थान को त्यागता है और पुनः छः महिने तक उस स्थान पर नहीं जाता।

ढूंढिया सम्प्रदाय के लोग पका फल कभी नहीं खाते। ये अपने मुँह के सामने एक पट्टी लटकाये रहते हैं; जिससे उनके मुख में कोई कीट-कीटाणु प्रवेश न कर सके। वह मोर के पंखों की बनी एक झाड़ू सदा अपने साथ रखते हैं जिससे भूमि को झाड़ कर बैठते हैं। जीव दया का ये इतना अधिक विचार रखते हैं कि यदि बिल्ली चूहा पकड़ने लगे अथवा किसी बच्चे के पालने में सांप प्रवेश करे तो भी बाधा नहीं देंगे।

ये भिक्षा पर गुजर-बसर करते हैं तथा जो खाद्य पदार्थ भिक्षा में प्राप्त करते हैं उन सब को एक में मिला डालते हैं तत्पश्चात् खाते हैं। जो भोजन करने से शेष रह जाता है उसे वह पृथ्वी में गढ़ा खोदकर गाड़ देते हैं। किसी दूसरे को नहीं देते। वह न कभी क्षौर (हजामत) बनवाते हैं न स्नान करते हैं सदा नंगे पैर चलते हैं और ऐसा सफेद वस्त्र पहनते हैं जिसकी लागत नौ रुपये से अधिक न हो। उस वस्त्र को वह कभी नहीं धोते और जब वह पुराना हो जाता है तब उसे फाड़ कर फेंक देते हैं। वह रात को बाहर कभी नहीं निकलते और न कभी दीपक जलाते हैं। वह कभी किसी सवारी का उपयोग भी नहीं करते और शायद ही कभी रेल पर यात्रा करते हों। वर्षाकाल में वह एक ही स्थान पर ठहरे रहते हैं और भादों के महीने में अनेक व्रत करते हैं।

मृत्यु होने पर इनके गृहस्थ भक्त जैनी अथवा सरावगी इनके शव को बैकुंठी में बिठा, श्मशान ले जाते हैं और जला देते हैं। मृत्यु के पश्चात् इनका कोई और संस्कार नहीं होता।

फ़क़ीर

मारवाड़ में मुसलमान फकीरों के चार फिरके बसे हुए हैं जिनके नाम नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) मदारी (२) कलंदर (३) जलाली (४) बेनवां।

मदारियों की उत्पत्ति मकनपुर के वदीउद्दीन शाह से हुई है। वदीउद्दीन शाह जिन्दाशाह मदार भी कहलाते हैं। मिस्टर इवटसन का कथन है कि यह व्यक्ति यहूदी से मुसलमान हुआ था। इसका जन्म सन् १०५० ईस्वी में एलप्पो नगर में हुआ था और यह ३८३ वर्ष जीवित रहकर मकनपुर में मरा। कहा जाता है कि मकनपुर में मकनादेव नाम का एक दानव रहता था जिसको इसने वहां से निकाला था। लोगों का विश्वास है कि वह अब भी जीवित है और इसीलिए इसका नाम जिंदाशाह है। कहा जाता है कि मुहम्मद साहब ने इसको बिना सांस लिये जीवित रहने का आशीर्वाद दिया था तथा इसके भक्त आग से जलते नहीं हैं तथा साँप और बिच्छू उन्हें काटते नहीं हैं। यह सांप और बिच्छू के काटे की चिकित्सा भी करते हैं। स्त्रियों को इसके मकबरे में प्रवेश करते ही ऐसी यंत्रिणा होती है मानो वह जीवित जलाई जा रही हों।

इस फिरके के फकीरों का पेशा भीख मांगना है। यह लोग अपने पास लोहे का हथोड़े के आकार का एक अस्त्र रखते हैं। और जिस व्यक्ति से यह पैसा मांगें और वह न दे तो यह उसी के सामने उस अस्त्र की नोक से अपना शरीर फोड़कर रक्त निकाल देते हैं। यह एक ऐसा श्राप स्वरूप है कि इनकी सूरत से मन में भ्रम और घृणा का संचार होता है। इनमें अनेक लोग मेलों में लकड़ी के झूले खड़े करके उन पर लोगों को झुलाकर पैसा कमाते हैं। और अनेक नौकरी तथा मजदूरी भी करते हैं। यह लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं तो अन्य मुसलमानों की भांति सलाम नहीं करते प्रत्युत् "फज्ले मौला" "यादे मौला" शब्द उच्चारित करते हैं। यह मलंग भी कहलाते हैं यद्यपि मि० इवटसन इनको मदारियों की एक अलग शाखा बताते हैं।

कलन्दर फिरके के फकीरों का कथन है कि करबला के युद्ध में वह इमाम हुसेन के कासिद अर्थात् संवाद वाहक थे। अब भी मोहरम मास की सात तारीख से दस तारीख तक इनमें का एक व्यक्ति हरे वस्त्र पहनकर और हाथ में नंगी तलवार लेकर एक ताजिये से दूसरे ताजिये तक दौड़-दौड़ कर अपने पूर्वजों के पुराने पद संवादवाहकी का कर्त्तव्य पालन करने का स्मरण दिलाता है। इनके नाम से भी प्रतीत होता है कि

सम्भवत: यह लोग बूअली कलंदर के अनुयायी होंगे। इन लोगों के स्त्री और बच्चे होते हैं और इनका धन्धा भीख मांगना है।

बेनवां अपनी उत्पत्ति का सम्बन्ध ख्वाजा हसन बमरी के साथ जोडते हैं। यह एक बडी लम्बी टोपी पहनते हैं। यह बडे मसखरे होते हैं, इनका व्यवसाय भी भीख मांगना है।

जलाली, बुखारा के सैयद जलालउद्दीन के अनुयायी हैं। इस फिरके के प्रवेशार्थियों को अपना पूरा शरीर मुडवा देना पडता है तथा सब वस्त्र फूंक देने पडते हैं। तब इनको, दाहिने कंधे पर दाग देकर दीक्षा दी जाती है।

मुसलमानों में कादिरी, चिश्ती, नक्शबंदिये इत्यादि और भी अनेक फकीरी फिरके हैं, किन्तु अब यह सैयद कहलाना चाहते हैं, इसीलिए इनका वर्णन फकीरों के शीर्षक के अन्तर्गत नहीं किया जा रहा है।

मिस्टर इबटसन का कथन है कि कादिरी फिरके के लोग बैठ कर घंटों रटा करते हैं, "तू पथ प्रदर्शक है, तू सत्य है, और केवल तू है, तेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है।"

चिश्ती फिरके वाले "अल्लाह या अल्लाह हो" कहते हैं और कहते हुए उछलते-कूदते हैं और उस समय तक कुलाचें भरते हैं जब तक बेदम नहीं हो जाते। इनकी यही पूजा विधि है।

मिस्टर इबटसन के कथनानुसार नक्शबंदिये ख्वाजा पीर मुहम्मद नक्शबंद के शिष्य हैं। यह लोग चुपचाप बिना हिले-डुले सिर नीचे झुकाकर तथा आँखें पृथ्वी पर जमाकर ईश्वराधना करते हैं। मारवाड़ में यह लोग दिन में आटा मांगते हैं तथा रात में एक जलता हुआ लैम्प हाथ में लेकर निकलते हैं और दुकान-दुकान पर कौड़ी मांगते हैं। यह लोग मारवाड़ी भाषा बोलते हैं; परन्तु इनकी स्त्रियाँ सिंधी भाषा का प्रयोग करती हैं।

मंदिर सेवक

मारवाड़ में पुजारियों की एक पृथक् जाति है। यह सूर्य के उपासक हैं। इनका दूसरा नाम भोजक है। कांगड़े के कर्नल जेनकिन के मतानुसार इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के भोज शब्द से है जिसका अर्थ खिलाना है। जयपुर में ये लोग व्यास कहलाते हैं।

पूर्वकाल में ये ब्राह्मण थे, इनमें गूजर गौड़ ब्राह्मणो के छ: गोत्र, खंडेलवालों के छ: गोत्र तथा पुष्करणा ब्राह्मणों के चार गोत्र शामिल हैं।

यह भी कहा जाता है कि यह शाक द्वीप के मग ब्राह्मण हैं, यहाँ आन पर इन्होंने भोज वंश की कन्या के साथ विवाह किया था उन्हीं से यह वंश चला है। इसी से इसका नाम भोजक पड़ा है। कृष्ण के पुत्र साम्ब को कुष्ट हो गया था, उस व्यथा से मुक्ति पाने के निमित्त उन्होंने सूर्य-मन्दिर का निर्माण कराया था और उस मन्दिर की पूजा का भार मग ब्राह्मणों को दिया गया था। उसी समय से यह वंश पुजारी का कार्य करता चला आ रहा है। इनकी विवाह तथा सगाई की प्रथाएँ महाजनों की प्रथाओं से मिलती हैं, किन्तु मृतक सम्बन्धी संस्कार और प्रथाएँ ब्राह्मणों के संस्कार तथा प्रथाओं के समान हैं। यह ब्राह्मणों की भाँति यज्ञोपवीत पहनते हैं; किन्तु ब्राह्मण इनको अपने में नही गिनते। इस परिस्थिति का कारण सम्भवत: यह है कि यह लोग अधिकांश जैन मन्दिरों के पुजारी हैं तथा ओसवालों के हाथ का वना भोजन ग्रहण करते हैं।

कर्नल वाल्टर ने इनको एक निम्न जाति का ब्राह्मण बताया है। इनका गुजारा दान वृत्ति द्वारा होता है और यह ओसवालों के पुरोहित हैं। यह ओसवालों के घरों में रसोईये का काम भी करते हैं। यह स्वयं तो सूर्य के उपासक हैं किन्तु नौकरी जैन मन्दिरों की पूजा करने की करते हैं।

मिस्टर इवटसन के मत से यह लोग नाई, ब्राह्मण, राजपूत तथा जोगियों की एक मिश्रित जाति हैं। इनके विवाह इन्हीं के समुदाय में होते हैं।

वंशोच्चारक

भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में वंशोच्चारण करने का व्यवसाय करनेवाली जाति का नाम शायद ही सुना जाता हो; किन्तु राजपूताने में ऐसी जातियों का एक समुदाय है और इस समुदाय में निम्नलिखित छ: जातियां उल्लेखनीय हैं:

१. चारण २. भाट ३. मोतीसर ४. रावल ५. भिरासी ६. डूम।

प्रत्येक का पृथक् वर्णन आगे दिया जाता है:

चारण

राजपूताना के राजपूतों के पश्चात् यही जाति है जो मनोरंजक कही जा सकती है। इस जाति के नाम की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर जान विलसन ने लिखा है कि पशु चराने के आधार पर इस जाति का नाम चारन पडा है। चारन अपनी जाति को हिन्दू देवताओं की श्रेणी में समझते हैं। वे अपना आदि निवासस्थान हिमालय की पर्वतश्रेणियाँ बताते हैं। उनका कथन है कि महादेव जी के पास सिंह तथा नादिया दो विपरीत पशु होने के कारण उनके प्रबन्ध में उन्हें बडी असुविधा होती थी। अतएव उन्होंने भाट जाति की सृष्टि कर उनके प्रबन्ध का भार उन्हें सौंप दिया किन्तु भाट नादिया की रक्षा में असफल सिद्ध हुए। सिंह बार-बार नादिया को

मार खाता था और महादेवजी को बार–बार नादिया उत्पन्न करना पडता था। इस कठिनाई से बचने के लिए महादेवजी ने चारन नाम की एक अधिक साहसी तथा स्फूर्तिमय जाति की सृष्टि की और उन्होंने यह भार उसे सोंप दिया। उसके पश्चात् फिर कभी सिंह ने नादिया का संहार नहीं किया।

सर जान विलसन का यह भी कथन है कि यह जाति बडे-से-बडे किन्तु अज्ञ राजाओं और सरदारों के वंश परम्परा के इतिहास की ज्ञाता है, अत: ऐसें व्यक्ति अपने प्रभुओं के कृपापात्र हो जाने के कारण उनके वंशबखान के साथ-साथ परामर्शदाता भी हो गयें। चारणों के प्रति राजाओं के मन में एक रहस्यपूर्ण भय होने के कारण ये लोग उनके हृदय पर ऐसा प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं कि विपद्काल में वह सांत्वना के लिए इन्हीं का मुंह ताकते हैं शान्तिमय सुखकाल में अपनी कीर्ति तथा उत्थान इन्हीं लोगों पर अवलम्बित समझते हैं।

चारन गंगा के मैदानों से अपने राजपूत स्वामियों के साथ दक्षिण की ओर आये। जब इनके राजपूत राजा विदेशी आक्रमणकारियों से परास्त हो गये और अन्त में आन्तरिक कलह के कारण जब वे अपना प्रधान निवास-स्थान छोडने के लिए विवश हुए तब ये दो दलों में बंट गये, तथा जो दल जहां जाकर बसा वह उसी स्थान के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उदाहरणार्थ मारवाड में जाकर बसनेवाला दल "मारूचारन" कहलाया और कच्छ देश में जाकर बसनेवाला दल "कछेला चारन" कहलाने लगा।

इन दोनों दलों के बीच रोटी-बेटी का व्यवहार तक बन्द हो गया है। सर जान मूकम के कथनानुसार कछेला चारनों का विवाह राजपूतों के यहां हो जाता है किन्तु मारवाड में यह प्रथा प्रचलित नहीं हैं। चारन शक्ति के उपासक होते हैं तथा कृषि का धन्धा करते हैं। इन लोगों की स्त्रियों के रीति-रिवाज राजपूतों में प्रचलित प्रथाओं के समान है; किन्तु उत्तराधिकार में सम्पत्ति के विभाजन की प्रथा सर्वथा भिन्न है। इनकी सम्पत्ति सम्पूर्ण जाति में विभाजित होती है और इतने भाग किये जाते हैं, जिनकी गणना कठिन है। इस कुप्रथा के फलस्वरूप यह सदा मुकदमेवाजी में लिप्त रहते हैं। पिछले दिनों इन लोगों में इतना विवाद बढ़ गया था कि राज्य को वट्दर्शन नाम की एक विशेष कचहरी केवल इनके विवादों का निर्णय करनें के लिए स्थापित करनी पड़ी थी।

इस जाति के व्यक्ति बडे विश्वसनीय माने जाते हैं यहाँ तक कि बहुधा यात्रियों की मार्ग–सुरक्षा का भार इन्हीं को सौंपा जाता हैं। किन्तु ये लोग बडे कठोर याचक होते हैं। मागने के अवसरों पर इतनी लम्बी–चौडी मांगें पेश करते हैं जिनकी पूर्ति कठिन हो जाती है और इनकी मांग की पूर्ति न होने पर यह भयंकर हठ करते हैं; यहां तक कि अपने शरीर में अपने हाथों से आघात करते हैं और धेरना

दिये घंटों जमे रहते हैं। कभी-कभी इनकी इस बुरी आदत का बहुत बुरा परिणाम होता है।

राजपूत राजाओं की कीर्ति के सुगायक होने के कारण "मारू चारनों" का सामाजिक स्थान सदा ऊंचा रहा है। दरवारों में उन्हें सदा उच्चस्थान प्राप्त रहा। प्रत्येक हर्ष के अवसर पर उन्हें बडे-वडे पुरस्कार मिले हैं। उनको अनेक गांव और जमीन माफी में मिली हैं। मारवाड़ में उनके पास चार लाख रुपये प्रतिवर्ष की आय की जागीरें उन्हें प्राप्त हैं। वहां करनीदान, नाम के चारण हो गये हैं। राजा अभय सिंह ने उनको बहुत कुछ दिया था। चारन जाति के अनेक व्यक्तियोंने अपनी काव्य तथा वाक् शक्ति के प्रभाव से मुगल बादशाहों के दरबार में भी स्थान प्राप्त कर लिया था।

'मारू चारण' विढुत की उपाधि पाकर प्रसन्न होते है तथा कुलस के नाम से अप्रसन्न। नाता अथवा करेवा इनमें नहीं होता। इनकी स्त्रियाँ परदा पसन्द होती हैं। इस जाति में अनेक खाँपें हैं जिनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं।

१. रोहडिया २. रतनू ३. सोदा ४. आसिया ५. मीसण ६. वणसूर ७. लालस ८. आडा ९ सिंडायच १०. कविया ११. जगत १२. सूंगा १३. गूंगा १४. सुरताणियाँ १५. दधवाडिया १६. मेडू १७. देवल १८. मेंगू १९. नांदू २०. खिडिया इत्यादि इत्यादि।

रोहडिया चारन राठौड वंश के "पोलपात" हैं। पहले यह लोग भाटी थे। चन्दा नाम के इनके एक पूर्वज भाटी थे। रायपाल राठोड ने उनका विवाह एक चारन कुमारी से कर दिया था। उसी समय से यह चारन माने जाने लगे। मूंदियाड ठिकाने के मालिक इन्हीं के वंशज हैं। दरबार में उन्हें ताजीमी सरदार का सम्मान प्राप्त है। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कर्नल वालटर ने लिखा है कि एक उच्च श्रेणी के भांटी का एक उच्च श्रेणी की अन्य जाति कि स्त्री से प्रेम हो गया था। यह दोनों अपना घर त्याग कर लूनी नदी के किनारे डरभरा ग्राम में जाकर बस गये। नदी के उस किनारे का जल पीने योग्य न था अत: अपने पीने के लिए यह उस पार के तट से लाते थे। उस पार का जल स्वच्छ तथा मीठा था किन्तु जब नदी बाढ पर होती तब भी इनमें का एक अथवा दोनों बिना अपने वस्त्र तक भिगोयें नदी पार से जल लेकर लौट आते। उनके इस चमत्कार के कारण लोग इन्हें पुण्यात्मा मानते हैं और इस चमत्कार के किसी देवता का आशीर्वाद। अब इनके वंशज भारत के अन्य प्रान्तोमें भी बसे हुए है।

रतनू चारणों की उत्पत्ति पुष्करणा ब्राह्मणों से हुई है। पुष्करणा ब्राह्मणों के परिच्छेद में इसका विवरण दिया जा चुका है। सोदा चारण मेवाड़ के राजवंश के पोलपात हैं और वहां उनका बड़ा मान है।

मारू चारणों की एक शाखा का नाम तिरवारी चारण है। इनकी उत्पत्ति एक तिरवारी जाति की स्त्री से बताई जाती है। प्रसिद्ध है कि आडा खांप के चारण दुरसाजी ने इस स्त्री को फांस लिया था। इस खांप के लोग जालौर तथा गोडवाड परगनों में अधिक आबाद हैं। इनका सामाजिक स्थान निम्न है तथा मारू चारणों के साथ इनका सम्पर्क नहीं है। नेग के अवसरों पर अन्य चारणों की अपेक्षा इनको आधा नेग मिलता है।

कछेला चारण प्रधान रूप से व्यवसायी हैं। यह या तो व्यापार करते हैं अथवा पशु चराते हैं। ये सरकारी कर नहीं देते और यदि कर की वसूली में इनके साथ कडाई का व्यवहार किया जाता है तो यह भी अपने हठ पर उतर आते हैं। मारू चारणों के समान राजपूती वीरता के बखान में यह अधिक पटु नहीं होते; किन्तु व्यापार में इनकी सूझ प्रखर होती है। इन में नाता अथवा करेवा प्रचलित है, परन्तु रुपये पैसे के देने-लेने की जरूरत नहीं पडती। इन लोगों में अपने भाई की विधवा को भी नाता की रीति से अपनी स्त्री बनाया जा सकता है।

कछेलों का दूसरा नाम गडवी है। यह कच्छ से मारवाड आये थे और पहले पहल मालानी के सनदरी नाम के स्थान में बसे थे। कर्नल वाल्टर का कथन है कि इस स्थान के मुखिया का नाम शीना था उसी के नाम के आधार पर इस स्थान का नाम शीनादरी रखा गया था। पूर्वकाल में यह स्थान 'सरना' कहलाता था। सरना अर्थात् ऐसा स्थान जहाँ शरण लेकर मनुष्य कानून के पंजे से बच सके।

कछेला चारणों की भी अनेक खाँपें हैं जिनमें की प्रधान खाँपों के नाम इस प्रकार हैं :

१. बलसी २. देवाद ३. सलकण ४. चाँपा ५. ईंडा ६. नागिया ७. कडुवा ८. कच्छा ९. भोजक १०. बाडुआ ११. खरता १२. बाटी १३. मेंदमल १४. भाटी १५. तूंबेला १६. कोलिया १७. दहिया

एक जाति चरनिया भम्मी है। मृतक पशुओं को उठाना भम्भी जाति का काम है। कहा जाता है कि एक कछेला चारण ने एक बार एक मृतक बछडा उठाकर फेंक दिया था अतः वह जातिच्युत कर दिया गया था और उसके वंशज

चरनिया भम्भी के नाम से प्रचलित हुये। इनकी स्त्रियाँ पैरों में चांदी के गहने नहीं पहनतीं। कहावत है कि चारनों की नौ खाल स्त्रियों को चमत्कारिक शक्ति प्राप्त है अतः उनका बड़ा सम्मान है। इन स्त्रियों को लोडियाल के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है क्योंकि यह लोईयां अर्थात् कम्बल के समान ऊलन की बनी एक चादर ओढ़ती हैं। प्रसिद्ध है कि करनीजी ने बीकानेर की नींव डालने में राव बीका की सहायता की थी अतः करनीजी की एक देवी के समान पूजा होती है। चारन लोग करनीजी की शपथ को अत्यन्त गम्भीर मानते हैं। एक बार अवारजी ने मालानी में बहनेवाली हकडा अथवा कग्गर नदी को अपने चमत्कार से सुखा दिया था। कछेला स्त्रियां शक्ति की साक्षात् मूर्ति मानी जाती हैं। लोग इन स्त्रियों से बहुत भयभीत रहते हैं। कारण यह है कि वे दोपहर तक नीम का दातोन अपने मुंह में डाले रहती हैं कि इनके किसी शाप इत्यादि का प्रभाव किसी पर विपरीत न पड़े।

भाट

वंश परम्परा की इतिहास मर्मज्ञता ही भाटों का भी व्यवसाय है। यह परम्परागत पारिवारिक वंशावली-वक्ता होते हैं। मिस्टर विल्सन भाट शब्द की उत्पत्ति भट्ट या भट्टी शब्द से समझते हैं इन शब्दों का अर्थ परिपालक अथवा संरक्षक है और यह अलंकार स्वरूप साधुओं तथा विद्वान ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त होता है।

पादरी एम. ए. शेरिंग के मतानुसार भाटों की जाति एक दोगली, जाति है। उसकी उत्पत्ति की तीन कहानियां प्रसिद्ध हैं। एक के अनुसार इनकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से हुई। दूसरी के अनुसार पिता क्षत्रिय तथा माता एक विधवा ब्राह्मणी थी और तीसरी के अनुसार यह ब्राह्मण पिता और शुद्रा माता की सन्तान हैं; किन्तु इनमें से किसी भी कहानी का कोई प्रमाण नहीं हैं। सर हैनरी इलियट इनकी एक बिलकुल ही भिन्न जन्म कहानी कहते हैं उनकी कहानी के अनुसार इन का जन्म शिवजी की भौं के पसीने से हुआ। कहा जाता है कि शिवजी ने पार्वतीजी का दिल बहलाने के लिए इनकी सृष्टि की थी, परन्तु इन लोगों ने पार्वतीजी की किंचित् भी प्रशंसा नहीं की, अकेले शिवजी की ही विरुदावली गाते रहे। अतः स्वर्ग से च्युत करके यह पृथ्वी पर फेंक दिये गये तथा आवारगी का जीवन इन्हें भोगने को दिया गया।

मारवाड़ में भाटों की निम्नलिखित तीन खांपें बसी हुई हैं:

१. ब्रह्म भाट २. वाटी भाट ३. रानी मूंगा भाट.

ब्रह्म भाटों की उत्पत्ति ब्रह्मा के एक कवि नाम के पुत्र से मानी जाती है। ये लोग उत्तर पश्चिम प्रान्त तथा गुजरात में अधिक हैं। उन प्रान्तों में

चांरण

भाट

रावल
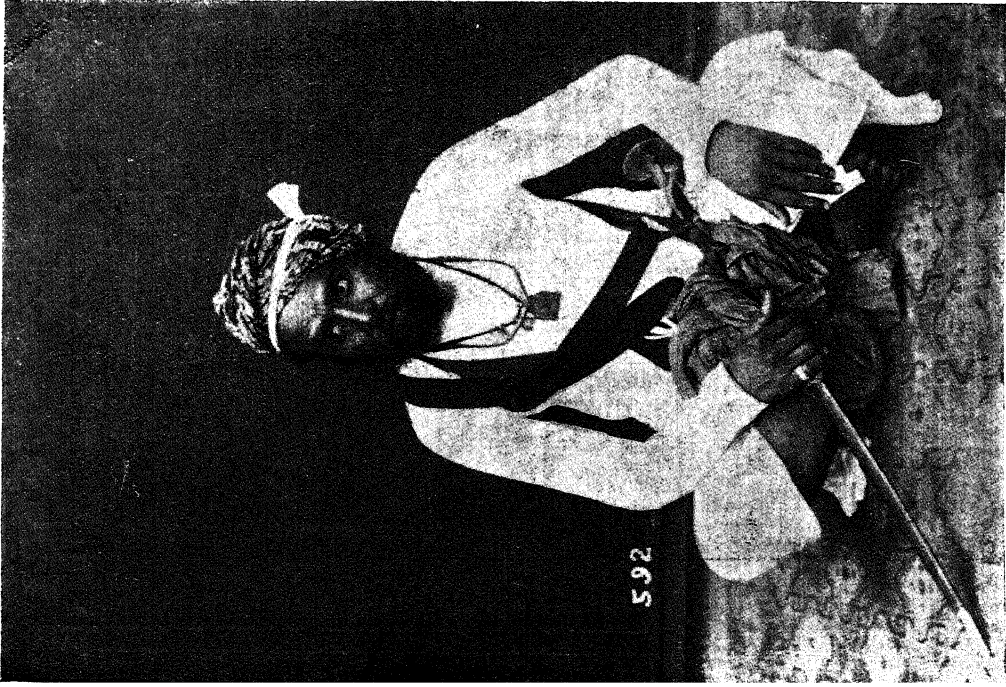
मोतीसर

इनका वही स्थान है जो चारनों का मारवाड़ में है। इनकी रीतियां और प्रथायें सब वही हैं जो ब्राह्मणों में प्रचलित हैं। इस जाति में अनेक महान् तथा उद्भट विद्वान व्यक्ति हो गये हैं। यह मांस खाते हैं, किन्तु शराब नहीं पीते। वाटी भाटों को यह अपने से निम्न श्रेणी का मानते हैं अतः उनके यहां विवाह नहीं करते।

यह जाति एक अत्यन्त प्राचीन जाति है। महाभारत तथा अन्य हिन्दू पुराणों में निम्नलिखित बारह नामों से इनका उल्लेख हुआ है:

१. ब्रह्म राव २. सूत ३. मागध ४. वन्दी ५. सरस्वती पुत्र ६. स्तुति पाठक ७. वादी ८. नन्दीकार ९. राय १०. भूत ११. नन्दी १२. कानी.

राजपूताने में वाटी भाटों की प्रधानता है इनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई है तथा इस जाति के रीति-रिवाज और प्रथाएँ सब राजपूतों की-सी ही हैं। राजपूतों की वंशावली तथा वंश विवरण के खाते इनके पास रहते हैं और विवाह तथा विवादों के अवसर पर इन लोगों के पास के खाते प्रमाण स्वरूप देखे जाते हैं। कर्नल वाल्टर का कथन है कि राजपूत इन लोगों से इतने भयभीत रहते हैं जितने कि चारनों से हिन्दू। इनकी माफी में गांव और भूमि मिली हुई है विवाह के अवसरों पर इन्हें बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त होते हैं और यदि यह किसी से असन्तुष्ट हो जाते हैं तो उसका कविता तथा गीतों में दुर्नाम करते हैं।

पुर्वकाल में यह परिवार राजपूतों के माथे और उन्हीं के साथ मारवाड़ आया। ये कलबी लोगों की उत्पत्ति परिहारों से प्रमाणित करते हैं अतः कलबियों से भी इनको पुरस्कार मिलता है।

भाटों के ग्राहक अथवा यजमान इनको राजा की भांति सम्बोधित करते तथा उन्हीं के समान इनका आदर और सत्कार भी करते हैं। इन्हें ऊंचे आसन पर बिठाते हैं तथा बढ़िया भोजन खिलाते हैं। भाट भोजन कर चुकने पर अपने जूठे पात्र यजमानों को साफ करने के लिये छोड़ देते हैं। यदि कोई इन्हें भाट कह देता है तो वह चिढ़ जाते हैं और फिर सरलता से प्रसन्न नहीं होते। इन लोगों की इन बातों के कारण ही पुष्करणा ब्राह्मणों ने इनका सम्पर्क एकदम त्याग दिया है। भाटों ने भी इनसे क्रुद्ध होकर इनके वंश के इतिहास के खाते जला दिये हैं।

भाट जाति में सगाई के अवसर पर वर का पिता कन्या के पिता को एक आध गहना तथा १६ रुपये अथवा १८ रुपये भेंट करता है और कन्या का पिता इस उपलक्ष में अपनी बिरादरी और संबंधियों में अफीम बाँटता हैं। विवाह में केवल चार फेरे होते हैं। तोरन, समेला तथा पड़जानी की प्रथाएँ अन्य जातियों के ही समान इनमें भी हैं। वधू के पिता को चौरासी रुपये वर का पिता देता है।

नाता की प्रथा इनमें प्रचलित है और इस अवसर पर विधवा के पिता को चालीस रुपये दिये जाते हैं। नाता की रीति रात के समय सम्पन्न की जाती है और नाते जानेवाली महिला की बिदाई घर के मुख्य द्वार में नहीं बल्कि किसी और मार्ग से होती है।

निकटतम सम्बन्धी की सन्तान को गोद लेने की प्रथा इनमें प्रचलित है। वाटी भाटों में ब्रह्म भाटों को मिलाकर निम्नलिखित खांपें हैं :

१. ब्रह्म भाट २. वाटी भाट ३. चन्द्रीसा भाट ४. बूना भाट ५. शासनी भाट ६. बोरवा भाट ७. तूरी भाट ८. कैदारी भाट।

चन्द्रीसा भाट ब्राह्मणों, राजपूतों, कलबियों, पीटलो, सुतारों, कुम्हारों, नाइयों तथा दरजियों के वंश के बहीखाते रखते हैं तथा इन जातियों से पुरस्कार पाते हैं।

बूना भाट बैल लादते हैं तथा पालीवाल ब्राह्मणों के यहां से दान भी पाते हैं।

शासनी भाट विशेषतया सांचोर के जिले में ही हैं। इनके पास शासन जमीन है।

बोरवा भाट मारवाड़ और ढुंढार में आबाद हैं तथा राजपूतों की वंशावली रखते हैं।

तूरी भाट मोचियों तथा भेगवालों के भाट हैं।

कैदारी: लाल वस्त्र पहनते हैं तथा रात में घूम-घूम कर ग्राम में भीख मांगते हैं। कैदारी भाटों को वासुदेवा भी कहते हैं।

उपरोक्त समस्त खांपों में पुन: अनेक नख हैं। उन नखों मे ही इनके विवाह होते हैं। अपनी खांप में कोई विवाह नहीं करता।

रानीमूंगा भाट केवल रानियों की वंशावली रखा करते हैं इनका नाम रानीमूंगा इसीलिये है कि यह केवल रानियों के दिये दान पर ही संतोष करते हैं तथा राजाओं की चिन्ता नहीं करते। इनका कथन है कि इनके एक पूर्वज जिनका नाम हरिकरण था उनको सीताजी ने भाट-पद दे दिया था अत: इनका यह व्यवसाय रामचन्द्र के समय से आरम्भ हुआ था। यह ब्रह्म भाटों के यहां विवाह नहीं करते, किन्तु वाटी भाट के यहां कर लेते हैं। इनके यहां विधवा का नाता या पुनर्विवाह प्रचलित नहीं है।

इनमें एक और भाट होते हैं जो वाटी बंका भाट कहलाते हैं। और केवल भाटों की ही वंशावली रखते हैं। ये लोग साधारण भाटों के हाथ का भोजन नहीं करते। ये केवल जोधपुर में बसे हुए हैं।

भाट चारन

मारवाड़ में भाटों की ही एक जाति और भी है उसका नाम भाट चारन है। कहा जाता है कि भुज के राजा का एक चारन था जिसका नाम मावल था। उसका गोत्र बरसडा था। उसके दो कन्याएँ थीं। एक बार गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के यहां विवाह था। सावल उस विवाह के अवसर पर गुजरात जाते समय अपनी दोनों कन्याओं को भी साथ लेता गया। चारनों का एक और दल भी त्याग लेने वहाँ गया था किन्तु अन्धकार तथा मौसम की खराबी के कारण उन लोगों को खुले मैदान में और वह भी जमीन पर सोने के लिये लाचार होना पड़ा था उन कन्याओं को इन लोगों का यह काम अच्छा नहीं लगा उन्होंने समझा कि इन लोगों ने लोभ में पड़कर यह पतन और अपमान स्वीकार किया है अतः उन्होंने शपथ खाली कि उन लोगों के साथ विवाह नहीं करेंगी। मावल को इस बात से चिन्ता हुई अन्त में मालवान नाम के एक भाट के साथ वह एक कन्या का विवाह करने में सफल हुआ। इस संयोग से उत्पन्न संतति भाट चारन कहलायी। यह लोग भाटों अथवा चारनों, इन दोनों में से किसी से व्याह सम्बन्ध नहीं करते इनके विवाह सम्बन्ध इन्हीं के भीतर होते हैं। दूसरी कन्या का विवाह चन्दा नाम के एक भाटी राजपूत के साथ हुआ। उसका पुत्र नन्दा कवि हुआ और मारवाड़ के राजा रायपाल के यहाँ पोलपात हो गया।

रोहडिया चारन इनके वंशज हैं।

मोतीसर

जिस प्रकार राजपूतों की प्रशंसा के गीत चारन गाते हैं उसी प्रकार चारनों की कीर्ति का बखान मोतीसर करते हैं और जिस प्रकार चारन राजपूतों के दान पर आश्रित रहते हैं उसी प्रकार मोतीसर जाति के लोग चारनों के दान पर निर्भर है। कर्नल वाल्टर का कथन है कि मोतीसर जाति मारवाड की एक अनोखी जाति है। वास्तव में यह भिखारियों की ही एक जाति है। इन की उत्पत्ति की कहानी के अनुसार यह आठ राजपूत वंशों के समिश्रण से उत्पन्न हुए हैं। गुजरात के सिद्धराज जयसिंह का एक भतीजा मानकराव स्मरण शक्ति का बडा बलवान था। एक बार मावल नाम के एक चारन ने सिद्धराज जयसिंह की प्रशंसा में एक कविता रची मानक ने वह कविता सुनते ही याद कर ली और अवसर पडने पर उसे अपनी रचित बता कर तुरन्त सुना दी। इस प्रकार मावल को उसने एक करारी मातदी। मावल ने तब किसी प्रकार दूसरी रचनाएँ सुनाकर मानक के पिता को प्रसन्न किया और मानकराव तथा उसके अन्य साथियों को मांग लिया। इस प्रकार मावल ने उन पर अधिकार प्राप्त कर उनको चारन बनाया। मानकराव तथा उसके सब साथियों को मिलाकर उनकी संख्या आठ थी और मावल उन सब को मोतीसर

कहता था। इन्हीं आठ व्यक्तियों से यह वंश चला और उसका नाम मोतीसर पड गया।

मोतीसर जाति में लोग विद्वान नहीं हैं किन्तु काव्य कला में इनकी निपुणता प्रसिद्ध है। ये लोग जब भिक्षा मांगने चारनों के घर जाते हैं तब वहाँ इनका अच्छा सम्मान होता है। जिस प्रकार राजपूत विवाह के अवसर चारनों के त्याग बांटते है उसी प्रकार विवाह के अवसर पर चारन मोतीसर लोगों को मुक्तहस्त होकर त्याग बांटते हैं।

मोतीसर जाति की रीतियां रिवाजें और प्रथाएँ सब चारनों की प्रथाओं के समान हैं।

रावल

रावल चारनों के भांड अथवा नक्काल होते हैं। मारवाड़ में ये लोग केवल सोजत और जैतारन के परगनों में आबाद हैं, और थोड़े से गुजरात में भी वसे हुए हैं। यह अपनी जाति की उत्पत्ति एक ब्राह्मण से बताते हैं। कहा जाता है कि एक समय जूनागढ़ का रावल (वहाँ का राजा रावल कहलाता है) आखेट के लिये एक दिन वन में गया। मार्ग में उसे प्यास लगी और पानी के लिये वह एक घर पर पहुँचा वह घर एक चारन का था उस घर में एक चारन–युवती थी राजा उस पर आसक्त हो गया। चारन युवती राजा का सम्मान करने के लिए राजा के मस्तक पर तिलक लगाना चाहती थी किन्तु राजा ने तिलक लगवाने से इन्कार कर दिया। सुन्दरी इस बात से क्रुद्ध हो गयी और राजा को शाप दिया। उस शाप के फलस्वरूप राजा तुरन्त हिजड़ा हो गया और नाचने–गाने लगा। अनेक वर्षों तक राजा अपने हिजड़ेपन के कारण उस गांव के मनोरंजन का सामान बना रहा। राजा के साथ एक ब्राह्मण भी उस गाँव में जाया करता था। जब राजा की मृत्यु हो गयी तब वह ब्राह्मण राजा के स्थान पर वहाँ नाचने–गाने लगा। लोगों ने उसे रावल की उपाधि दे दी, अत: उस ब्राह्मण से जो वंश चला वह रावल कहलाया।

रावल जाति चारण जाति की भिक्षुक जाति है और विशेषत: इस जाति के लोग चारणों को ही अपना तमाशा दिखाते हैं। शीतकाल में ये लोग १२, १२ व्यक्तियों का दल बनाकर गाँव-गाँव घूमते हैं और अपना तमाशा दिखाते हैं। किन्तु यह तमाशा तभी करते हैं जब वहाँ कम-से-कम एक चारण उपस्थित हो। यदि कहीं चारण की उपस्थिति असम्भव हुई तो यह चारण के नाम का घास का एक पुतला बनाकर उसे चारण मान लेते हैं और उसी को अपना तमाशा दिखाते हैं। कदाचित् कोई चारण किसी रावल का तमाशा देखना अस्वीकार करे अथवा भिक्षा देने में उस रावल को असन्तुष्ट कर

दे तो वह रावल गाँव-गाँव घूम कर उसकी निन्दा करता फिरेगा। कभी-कभी ये लोग ऐसे चारण के नाम का एक पुतला बनाकर उस पुतले का अपमान करते हैं ग्रीष्मकाल की रात में रावल अपना तमाशा नहीं दिखाते। उनका कहना है कि रात उनके तमाशे के लिए पर्याप्त नहीं होती।

मीरासी

मीरासी मुसलमान होते हैं। भाटों की भांति इनका व्यवसाय भी वंशावली का बखान है और मुसलमानों में इनका वही स्थान है जो भाटों का राजपूतों में है। मिस्टर इबटसन मीरासी शब्द की उत्पत्ति अरबी के "मीरास" शब्द से मानते हैं। मीरास का अर्थ है परम्परा से प्राप्त। बहुधा लोग मीरासी का संक्षिप्त बनाकर "मीर" मात्र बोलते हैं। तथा सैयद जाति के लोग अपने नाम के पहले मीर शब्द का उपयोग करते हैं परन्तु इन दोनों मीर शब्दों में कोई सामंजस्य नहीं हैं। दोनों शब्द एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। मीरासी मुसलमान गायन वाद्य व्यवसायी बारह फिरकों में से एक फिरका है। यह स्वयं भी गायक होते हैं तथा औरतों को गान और नृत्य सिखलाते हैं।

मेवाड में मीरासियों के तीन फिरके आबाद हैं :

१. जोडा, २. कालेट, ३. कानौता।

ये तीनों फिरके धर्म परिवर्तित हिन्दू हैं और मुसलमानों की सुन्नी जमात से सम्बंधित है। इन तीनों में अन्तर्विवाह प्रचलित है, परन्तु नक्कारची और ताशेवाले अर्थात् ढोल बजानेवालों में यह विवाह नहीं करते। जोडा लोग मुलतान से मारवाड आये थे और कालेट अपने को डीडवाना के देशी पठानों के वंशज मानते हैं।

कनोता मीरासी अपनी उत्पत्ति एक गौड ब्राह्मण से मानते हैं। किसी मुसलमान बादशाह के पास चन्दन नाम का एक व्यक्ति बांसुरी बजाने पर नौकर था। भिवानी के कुछ कायस्थ बादशाह के खजाने में काम करते थे, किन्तु किसी अपराध के कारण बादशाह ने उनको कारागृह में डाल दिया था। चन्दन ने उनके छोडे जाने की प्रार्थना की और बादशाह ने उनका छोडना इस शर्त पर स्वीकार किया कि चन्दन मुसलमान हो जाय। चन्दन ने बादशाह की शर्त स्वीकार कर ली और मुसलमान हो गया परिणाम स्वरूप कायस्थ छोड दिये गये। जब वह कायस्थ मारवाड आये तब चन्दन भी उन्हीं के साथ चला आया। चन्दन ने डीडवाना के निकट एक कुंआ बनवाया था जो आज भी चन्दन कुई के नाम से प्रसिद्ध है। कायस्थ चन्दन की सेवाओं को भूले नहीं है और भिवानी के कायस्थ वंश के लोग चन्दन के वंशजों को विवाह तथा मृत्यु के अवसरों पर एक प्रकार के कर के रूप में कुछ न कुछ अब भी देते हैं।

मीरासियों की स्त्रियां भी गायक होती हैं। पूर्वकाल में वे नीले वस्त्र पहनती थीं परन्तु अब पाजामा और अचकन पहनती हैं। इन लोगों की विधवाएं नाता नहीं कर सकतीं।

डोम

मारवाड के डोम मिरासियों तथा ढोलियों के फिरके से भिन्न नहीं हैं। सर एच. एम. इलियट के मतानुसार ये भाटों से उत्पन्न एक मुसलमान फिरका है और मिरासी तथा पखावजी के नाम से परिचित है। मिरासी तथा ढोली डोमों को उतना ही निम्न मानते हैं जितना कि राजपूत राँधडों को अथवा महाजन किराड़ों को। अवध में डोम भंगी माने जाते हैं। इनके तथा मिरासियों के रिवाजों में कोई अन्तर नहीं है।

लेखक

अग्रिम परिच्छेद में लेखक श्रेणी की जातियों का वर्णन है जिनमें कायस्थ खत्री तथा ओसवाल प्रधान हैं।

कायस्थ

मारवाड़ में लेखन व्यवसायवालों में प्रधान जाति कायस्थ है। कायस्थों की वंशोत्पत्ति तथा पद्म पुराण के अनुसार यह जाति ब्रह्मा के पुत्र चन्द्रगुप्त की सन्तान है। सर जान मकूम के मतानुसार इस जाति की उत्पत्ति तथा अक्षरों का आविष्कार समकालीन हैं अर्थात् इस जाति की उत्पत्ति ही शारीरिक परिश्रम के लिये नहीं बल्कि बौद्धिक कार्यों के लिये हुई है। इसलिए कायस्थ विद्या के अध्ययन की ओर ही प्रवृत्त रहते हैं। सर एच. एम. इलियट कायस्थ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के "काय" जिसका अर्थ शरीर है तथा "स्थ" जिसका अर्थ स्थिति है यों दोनों को मिलाकर मानते हैं। उनका कथन है कि जब परशुराम ने क्षत्रियों का संहार किया और क्षत्रिय जाति की स्त्रियों ने भाग कर प्राण बचाये। उस नर-संहार के समय जिन स्त्रियों की गर्भ स्थिति थी, उनके जो सन्तान उत्पन्न हुई वही कायस्थ कहलायी।

चन्द्रगुप्त के बारह बेटे थे। उनमें से प्रत्येक के नाम से कायस्थों की एक एक शाखा का जन्म हुआ। इस प्रकार कायस्थ वंश में बारह शाखा है। जिनके नाम निम्नलिखित हैं :

१. माथुर २. भटनागर ३. श्रीवास्तव ४. सकसेना ५. सूर्यध्वज ६. अम्बिष्ट ७. गौड ८. कर्ण ९. वालमीकि १०. अष्ठाना ११. कुलश्रेष्ठ १२. निगम
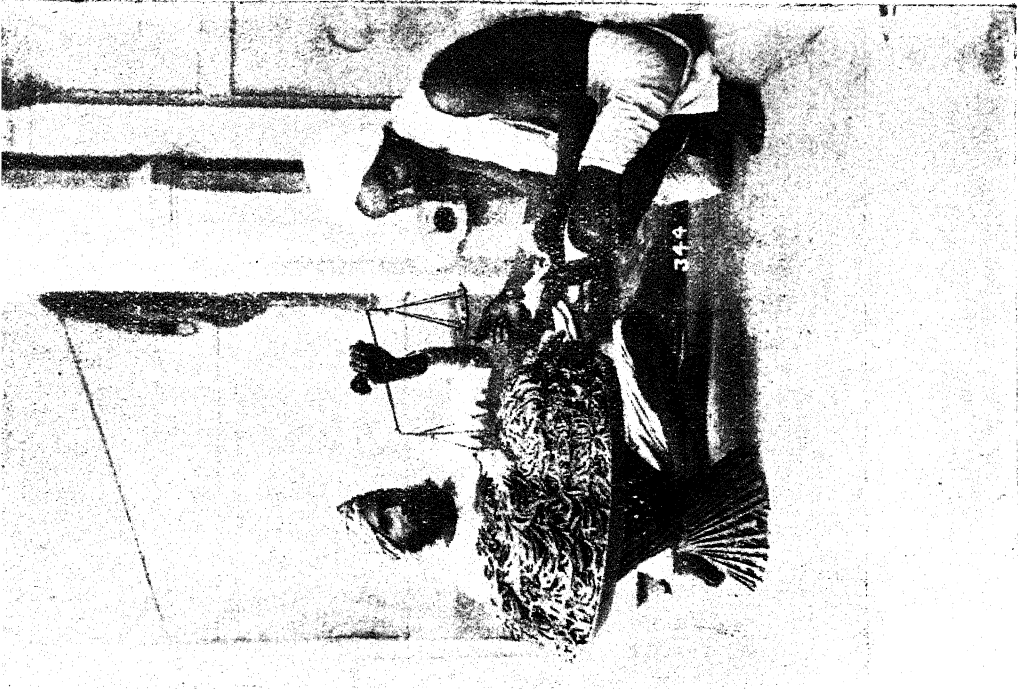
खत्री

मिरासी

कायस्थ या पंचोली
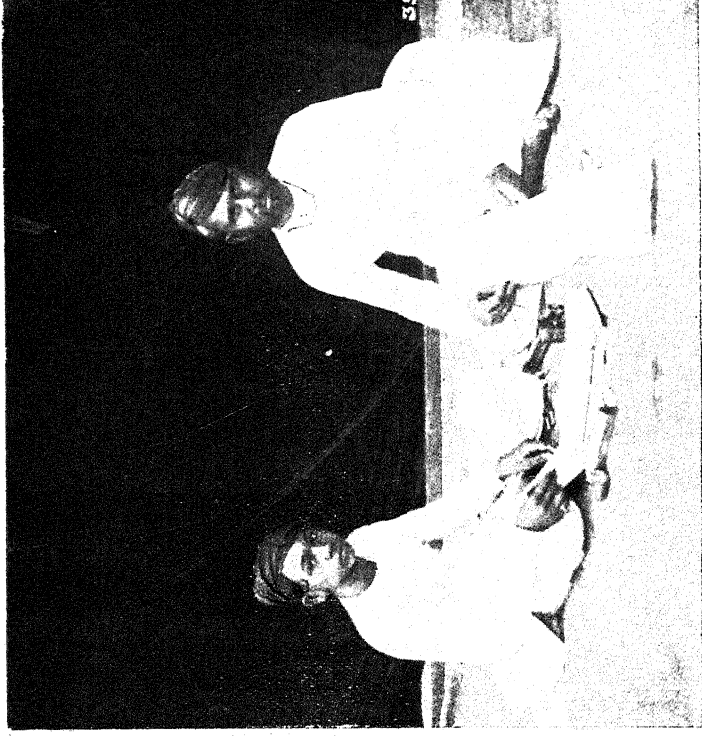
डोम

मारवाड में कायस्थों के दो विभाग हैं। एक देशी अर्थात् इसी देश के निवासी और दूसरे परदेशी अर्थात् उस स्थान से बाहर के निवासी।

समस्त देशी कायस्थ माथुर वंशीय हैं। वह मथुरा के आदि निवासी हैं। इसी से उनका नाम माथुर हुआ है। उनका स्थानीय नाम पंचोली है। इस नाम की उत्पत्ति पंचोलपुरा शब्द से जान पड़ती है। पंचोलपुरा देहली प्रान्त के एक ग्राम का नाम है। सम्भवत: यह पंचोलपुरा से मारवाड़ आये थे। कुछ लोगों का कथन है कि पंच तत्त्वों की जानकारी के कारण इनका नाम पंचोली पड़ा है। एक दूसरा सिद्धान्त और यह हं कि आरम्भ में चार जातियाँ बनाई गई थीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र परन्तु कायस्थों का व्यवसाय इन चार जातियों में से किसी के भाग में नहीं है इसी से एक पाँचवी जाति की आवश्यकता प्रतीत हुई और कायस्थों की सृष्टि की गई। इनका पंचोली नाम इसलिए पड़ा कि 'पंच' का अर्थ है पाँच तथा 'ली' का अर्थ है श्रेणी अर्थात् पाँचवीं श्रेणी। अस्तु

पंचोली कायस्थों में चौरासी खांपें हैं और वे एक अपनी खांप को छोडकर अन्य सभी खांपों में विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं। मारवाड में इनकी जो खांपें हैं उनकी सूची नीचे दी जाती हैं :

१. मानक भंडारी २. झामरिया ३. भिवानी ४. नारनौलिया ५. नाग ६. खोजा ७. गाडरिया ८. लवारिया ९. मेरतवाल १०. सिरभी ११. मनीजीतवाल १२. छरछोलिया १३. उतरेलिया १४. नेपालिया १५. ककरानिया १६. कोली १७. गलगोटिया

उपरोक्त खांपों की सूची में से मानकभंडारियों की खांप अत्यन्त प्राचीन है। सातवीं शताब्दी की समाप्ति के लगभग मानिकभंडारी खांप के मूल पुरुष कुलपतराय मथूरा से चलकर सांभर के चौहान राजा मानकदेव के पास उपस्थित हुए और उन्होंने ही सर्व प्रथम सांभर झील के पानी से नमक बनाने की प्रणाली का आविष्कार किया। यह कार्य राजा मानकदेव के लिए स्थायी लाभप्रद हुआ। इसलिये उन्होंने कुलपतराय को अपना कोषाध्यक्ष नियत कर लिया और उनकी उस सेवा के उपलक्ष्य में वार्षिक वृत्ति नियत कर दिया, जो आज भी उनके वंशजों को दी जा रही है। मानकभंडारी कुलपतराय की ही पदवी थी। मानकभंडारी खांप के जितने भी कायस्थ हैं, वे सब कुलपतराय के ही सन्तति-क्रम में हैं।

इनके पश्चात् झामरिया तथा भिवानी खाँप के कायस्थों का स्थान है। मारवाड़ में इन की संख्या भी बहुत है। खीमसी नाम का व्यक्ति पहला झामरिया पंचौली था जिसे गयासुद्दिन तुगलक ने खाटू का सूबेदार नियुक्त किया था। जब

ईंदा राजपूतों की सहायता से राव चूंडा ने मंडोर का दुर्ग बादशाह से छीन लिया और बादशाह ने अपनी सेना मंडौर पर भेजी तब वह खीमसी की ही मध्यस्थता थी जिसके कारण मंडौर का दुर्ग राव चूंडा के हाथों में बना रह सका था। राव चूंडा ने खीमसी की इसी सेवा से प्रसन्न होकर खीमसी के पुत्र धनराज को अपना प्रधान अर्थात् मंत्री नियुक्त कर लिया था। उस समय से झामरिया पंचौली निरन्तर उच्च पद ग्रहण करते चले आये है और यह बात उनके रहने के प्रासादोपम विशाल भवनों से भी सिद्ध है।

भियाजी भिवानियों के पूर्वज थे। वह बहुत थोडी अवस्था में ही मारवाड चले आये थे। भियाजी के पिता सोदा देहली के बादशाह के पास नोकर थे। बादशाह ने उनसे अप्रसन्न होकर उनकी हत्या की आज्ञा दे दी थी। भियाजी ने अपने रसोइये के साथ भाग कर मारवाड के खाटू ग्राम में शरण ली थी वहां खीमसी ने अपनी कन्या उनको ब्याह दी।

परदेशी अथवा बाहरी कायस्थों में सकसेना, माथुर, भटनागर और श्रीवास्तव हैं जो इसी शताब्दी में मारवाड आये हैं। ये लाला के नाम से सम्बोधित होते हैं।

निगम तथा गौड कायस्थों का मारवाड में अब कहीं पता नहीं चलता परन्तु प्राचीन लेखों से प्रमाणित है कि चौदहवीं शताब्दी के लगभग ये लोग मारवाड में नगणय नहीं थे। निगम भीनमाल में बसे हुए थे तथा गौड लाडनू में।

देशी-परदेशी दोनों प्रकार के कायस्थ अपने निवास-स्थान के चलन के अनुसार रीति-रिवाजों में थोडा अन्तर रखते हुए भी आपस में विवाह सम्बन्ध करते हैं। देशी पंचोलियां में विवाह के अवसर पर वर की ओर से एक सौ दस रुपये कन्या के माता-पिता को दिये जाते है। बरात के प्रस्थान के समय वर की माता घोड़ी की पूजा करती है। जब वर, कन्या के घर तोरन पर जाता है तब कन्या का मामा कन्या को साथ लेकर वर की सात परिक्रमा लगाता है। उसके पच्चात् चार फेरे चौरी पर हवनकुंड के लगाये जाते हैं प्रथम तीन फ़ेरों में वर आगे और कन्या पीछे रहती है चौथे फेरे में कन्या आगे और वर पीछे हो जाता है। कायस्थ देवी की पूजा करते हैं तथा आश्विन के महीने में नवरात्र का व्रत रखते हैं। इन लोगों में पुरुष तो मांस तथा मदिरा का खान–पान करते हैं परन्तु स्त्रियां मांस तथा मदिरा का सेवन नहीं करतीं। ये इस मांस को बाहरी तरकारी कहते हैं कारण यह खासकर नित्यप्रति के रसोई घर से बाहर अलग पकाया जाता है।

कायस्थों में परदे की पाबन्दी है किन्तु देशी कायस्थों में इसके व्यवहार में अधिक कठोरता नहीं है। इनके घर की स्त्रियां एक शाल ओढकर बाहर निकलती हैं। वे बाहर से पानी भर कर नहीं लातीं और न चर्खा कातती हैं। इन लोगों में विधवा का पुनर्विवाह अथवा नाता प्रचलित नहीं है।

किसी समय में कायस्थों की जाति एक महान जाति थी। मुसलमानी शासन-काल में कायस्थ वड़े-बड़े पदों पर आसीन रहे। कायस्थ लिखाई-पढाई के अतिरिक्त दूसरा व्यवसाय नहीं करते। सर जान मकूम के कथनानुसार दूसरा व्यवसाय करना यह पाप समझते हैं। यह होली तथा दीवावली के अवसरों पर दवात की पूजा करते हैं।

खत्री

मारवाड़ में खत्रियों का उतना महत्व नहीं है, जितना कि पंजाब में। सर जार्ज केम्पबेल के मत से पंजाब में सब प्रकार की लिखा–पढ़ी का कार्य इन्हीं लोगों के हाथों में है।

इनका कथन है कि पूर्वकाल में हम क्षत्रिय थे। अस्तु मारवाड़ में ये सिन्ध तथा जैसलमेर से आये थे। कुछ थोड़े बहुत पंजाब से भी आये। अब ये लोग भाँति-भाँति के व्यवसाय करते हैं। इनकी जाति के अनेक लोग पुरुषों के साफे तथा स्त्रियों की साड़ियाँ रंगते हैं। कर्नल वालटर का कथन है कि मारवाड़ प्रान्त में कपड़ों की रंगाई अनोखी होती है। खत्री दूकानदार, भंगियों के हाथों जिस स्वतन्त्रता से सौदा देते-लेते हैं महाजन दूकानदार वैसा नहीं करते। महाजनों से इन लोगों का स्थान निम्न माना जाता है। इन लोगों में बारह खाँपें हैं और प्रत्येक खाँप में आठ नख हैं। इनमें से निम्नलिखित मारवाड़ में आबाद हैं:—

(१)	कीरी	(७)	दारा	(१३)	मीचू
(२)	गीरा	(८)	धारा	(१४)	गजकंद
(३)	भूत	(९)	मूचा	(१५)	डंव्वर
(४)	बाछड़ला	(१०)	सरसेरा	(१६)	दजफार
(५)	छूछा	(११)	वादी	(१७)	सोनी
(६)	डलोरा	(१२)	जलेचा	(१८)	गेला

ये लोग प्रधानतः शैव हैं और इनके आचार्य सारस्वत ब्राह्मण हैं। ये दोनों एक साथ भोजन कर सकते हैं। कहा जाता है कि सारस्वत ब्राह्मणों के पूर्वज सुरेश्वर ऋषि ने परशुराम के हाथों से इन लोगों की रक्षा की थी। इसी के उपलक्ष में सगाई के अवसर पर सुरेश्वर के वंशजों को चार रुपये मिलते हैं और विवाह के अवसर पर सोलह रुपये।

कन्या के विवाह में खत्री अन्य महाजनों की भाँति रुपये नहीं लेते, नाता की प्रथा भी इनमें नहीं है।

मारवाड़ में यह लोग मांसाहार नहीं करते तथा ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और महाजनों को छोड़ किसी और के हाथ का भोजन भी नहीं ग्रहण करते।

इनकी स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं और छींट का पेटीकोट पहनती हैं जिनकी लम्बाई पर बूटे छपे होते हैं और जिसे आड़ीबेल कहते हैं।

ओसवाल

मारवाड़ ओसवाल महाजनों का देश होने के कारण यहाँ अन्य महाजन जातियों की अपेक्षा ओसवाल महाजनों की आबादी सब से अधिक है। इस जाति के कितने ही व्यक्ति राज्य में मुत्सद्दी तथा मुंशी पद की नौकरियों पर काम करते रहे हैं। इनका एक बड़ा भाग देश तथा विदेश में व्यापार में संलग्न है। ये प्रधानतः सम्पन्न लोग हैं। कर्नल टाड का कथन है कि खेरतारा जाति का अपढ़ समुदाय सहस्रों की संख्या में अपने व्यक्ति भारत के भाग में निरन्तर भेजता रहता है। यह ओसी ग्राम के निवासी होने के कारण ओसवाल कहलाते हैं। ओसी ग्राम अब ओसियों के नाम से विख्यात है और जोधपुर से तीन मील उत्तर की ओर इस ग्राम के खंडहर विद्यमान हैं। अनुमान है कि यहाँ एक लाख परिवारों की बस्ती थी और उन सब का व्यवसाय व्यापार था। ये लोग अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं।

मिस्टर इवटसन का कथन है कि राजपूताना के गवर्नर जनरल के एजेंट मिस्टर लारेंस के मतानुसार जैनियों के दो विभाग हैं—एक विभागवाले दिगम्बर अथवा सरावगी कहलाते हैं और दूसरे श्वेताम्बर अथवा ओसवाल। किन्तु ओसवाल नाम जाति-द्योतक है धर्म-द्योतक नहीं। धर्म से तथा ओसवाल शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसकी उत्पत्ति की कहानी इस प्रकार है:—आबू के राजा भीमसेन पंवार तथा उसके पुत्र ओपलदेव के बीच मतभेद हो जाने के कारण ओपलदेव अपना देश छोड़कर मंडोर के राजा के पास चला गया। मंडोर के राजा ने उसका आदर-पूर्वक स्वागत किया और उसे ओसियां गांव भेज दिया जहाँ उसने अपना पूर्ण अधि-कार जमा लिया। इस घटना के थोड़े दिनों के पश्चात् रत्नप्रभूसूरि नामक एक जैन साधु अपनें शिष्यों सहित वहाँ पहुँचा और भिक्षा मांगी, किन्तु उसे इन्कार कर दिया गया। राजा के इस कार्य से यती ऐसा क्रुद्ध हुआ कि उसने अपने मंत्र-बल से राजा के घर एक सांप भेज दिया जिसने राजा के पुत्र जगचन्द को डस लिया और जगचन्द की मृत्यु हो गई। जब लोग जगचन्द का शव दाह करने के निमित्त लिये जा रहे थे, तब यती ने राजा को कहलवाया कि यदि राजा उसकी बात मान ले तो वह राजा के पुत्र को जिला सकता है। राजा ने यती की बात मानना स्वीकार कर लिया परिणाम स्वरूप यती ने एक दूसरा सर्प राजा के पुत्र के पास भेजा जिसने उसके शरीर का समस्त विष चूस लिया। फलतः जगचन्द पुनः जीवित हो गया और राजा की

स्वीकृति के अनुसार सावन सुदी ८ सम्वत् २८२ को आधे ओसियां गाँव ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे गांव की अवशेष बस्ती भी जैनी बन गई तथा दो भागों में विभाजित हो गई। जिन्होंने पहले धर्म परिवर्तित किया था वह बीसे कहलाये और जिन्होंने बाद में जैन धर्म स्वीकार किया वह दस्से। दस्से और बीसे दोनों ही भोजन तो एक दूसरे के यहाँ कर लेते हैं परन्तु विवाह नहीं करते।

इस ओसवाल जाति में निम्नलिखित राजपूत वंशों के लोग शामिल है।

पंवार, सीसोदिया, राठोड, चौहान, सोलंखी, सांखला, कुरात, पडिहार, बुराना, गोयल, भौयल, दैदा, भाटी, मकवाना, कछवाहा तथा गौड।

यद्यपि ओसवाल आरम्भ में सब राजपूत थे और मुख्यत: मुत्सद्दीगिरी का व्यवसाय करते रहे हैं, किन्तु अब ये साढे बारह गोत्र की महाजन जाति वाले कहलाते हैं।

मुत्सद्दी ओसवाल अपने को अन्य ओसवालों में श्रेष्ठ मानते हैं। अन्य ओसवालों का व्यवसाय व्यवहार महाजनी अथवा जागीरदारों की कामदारी है।

मुत्सद्दी ओसवालों की बहू बेटियां परदा प्रथा की पोषक हैं और बिना रथ की सवारी के सो भी चारों ओर से नौकर चाकरों से घिरे हुए, कभी पैदल बाहर पग नहीं रखतीं।

ओसवाल प्रधानत: जैनी है। वे पारसनाथ और महावीर स्वामी तथा जैनियों के अन्य महापुरुषों पर जिन्हें तीर्थंकर कहते है भक्ति रखते हैं। इन में कुछ थोडे लोग वैष्णव धर्म भी मानते है। इनका समुदाय सिग कहलाता है और ये लोग अपने नेताकी शपथ से वाध्य होते है।

ओसवालों के पुरोहित जैन धर्म के यती होते है और शुभ कार्य के लिए मुहूर्त्त शोधन में वह ब्राह्मणों से भी अधिक माने जाते हैं।

जोधपुर में पुष्करणा उपाध्याय गोत्र के ब्राह्मण तथा श्रीमाली ब्राह्मण इनके विवाह संस्कार संपादित करते हैं तथा जोधपुर के बाहर सेवक लोग। इनकी जाति में वधू के पिता को वर का पिता जितना निश्चय हो जाता है उतना रुपया नगद देता है और यह रकम व्यवहार कहलाती है।

ओसवाल किसी की मृत्यु हो जाने पर मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए कोई संस्कार नहीं करते, किन्तु मृत्यु के पांचवें सातवें तथा नवें दिन बिरादरी को भोज दिया जाता है जिसे नवान्हिया कहते हैं तथा सिर मुंडाते हैं और पगडी-बंधन का संस्कार सम्पादित करते हैं।

ओसवालों में नाता प्रचलित नहीं है।

ओसवाल जाति की अभ्यन्तर जातियों का एक इतना बडा गोरखधन्धा है कि एक जैन साधू ने कई वर्ष निरन्तर परिश्रम कर एक सूची बनाई जिसमें उन एक हजार आठ सो खांपों का पता लगा था। उसके पश्चात् एक दूसरे जैन साधु ने उसके पास एक एक सौ पचास नामें की दूसरी सूची भेज दी जिसके कारण घबडाकर उसने अपना उद्योग छोड दिया।

मुत्सद्दी ओसवालों में प्रधान और प्रभावशाली वंश मोहनोत, भंडारी, लोढा और मोहता हैं।

मोहनोत

खेड के शासक राव राजपाल राठोड के मोहनसी नामक एक पुत्र था। वह एक बार जैसलमेर गया और वहां के दीवान की कन्या पर आसक्त हो गया। दीवान जाति का श्रीमाल था उसने मोहनसी के विरुद्ध रावल से शिकायत की। रावल ने मोहनसी का धर्म परिवर्तन कराकर सम्बत १३९१ में दोनों का विवाह करा दिया। मोहनसी की प्रथम पत्नी भाटी राजपूत थी। उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई थी उसके वंशज मोहनिया राठोड नाम से परिचित हुए तथा दीवान पुत्री से उत्पन्न होनेवाली सन्तान के वंशज मोहनोत कहलाये।

अनेक शाखाओं के पश्चात् मोहनोत वंशीय मारवाड पहुंचे और वहां उन्होंने राज्य–सेवा में प्रधानता प्राप्त की। महाराज गजसिंह के शासन काल में जयमल ने बडी प्रतिष्ठा लाभ की। महाराज विजयसिंह और महाराज वखतसिंह के जमाने में सूरत राय की तूती बोली और महाराज मानसिंह के शासन में ज्ञान मल का बोलबाला रहा। महाराज जसवन्तसिंह के शासनकाल में उनके पास प्रसिद्ध इतिहासज्ञ नेणसी मोहनोत की प्रधानता रही। पर पीछे अप्रसन्न हो कर महाराजने उसे कारावास में बन्द कर दिया और एक लाख रुपया उसके छुटकारे का नजराना मांगा। नेणसी ने महाराज को एक लाख रुपये देने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना अधिक श्रेयस्कर समझा। नेणसी के अन्तिम वाक्य निम्नलिखित कहावत में अंकित हैं।

लाख लखारां ईनीपजे वड पीपल रे साख
नटिया सूंता नैनसी तम्बो देन तलाक।

अर्थात् लाख लखेरे लोग बड़ और पीपल के वृक्षों से निकाल कर लाते हैं मोहता नैनसी इन्कार कर गया है। तांबा (एक पैसा भी) देने की तलाक (शपथ) है।

मोहनसी वंश के कुछ लोग मारवाड़ में ठाकुर कहलाते हैं और कुछ मोहनोत। किशनगढ़ और उदयपुर में यह लोग मेहता कहलाते हैं।

मोहनोत

भंडारी

सींघी

लोढा
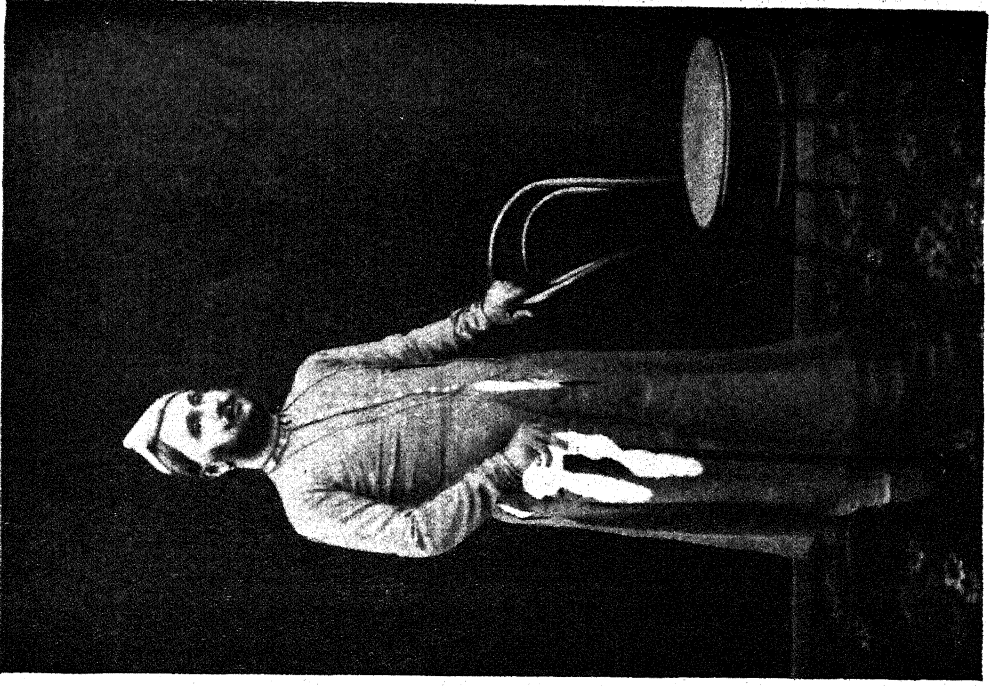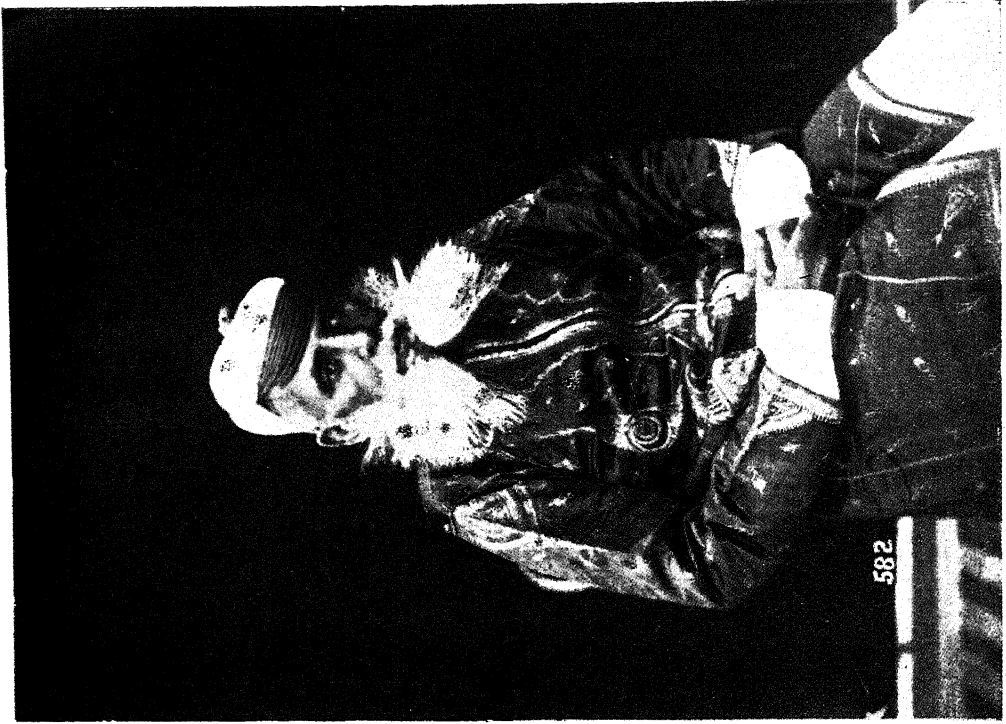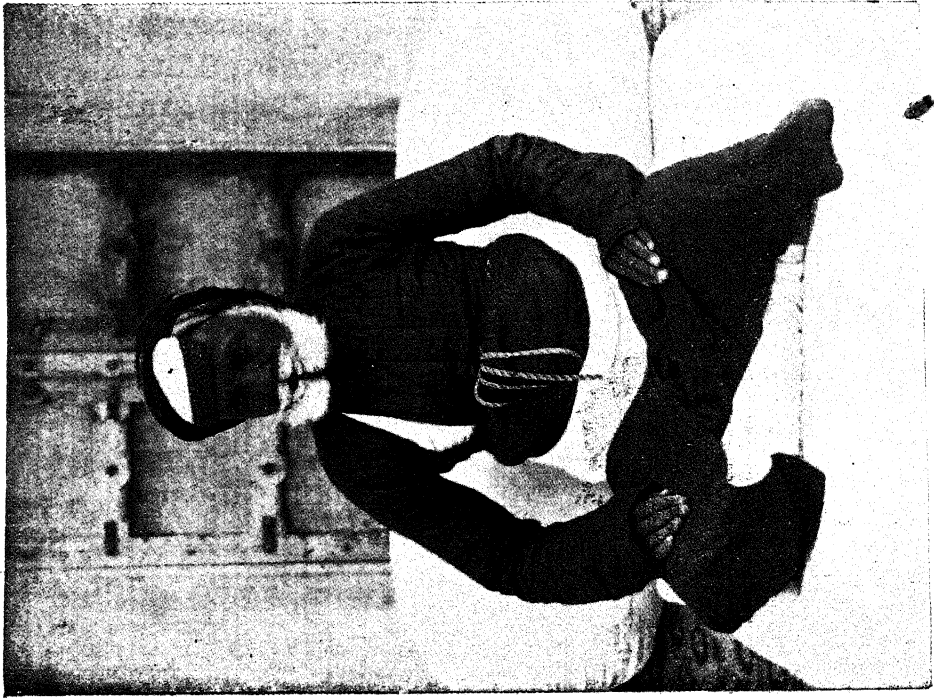
ये लोग जैनी थे किन्तु नैनसी के वंशज महाराज विजयसिंह के समय से वैष्णव हो गये थे।

मोहनोत काले रंग का जूता नहीं पहनते और नीम की लकड़ी नहीं जलाते। उनकी कुलदेवी नागनेची है उनके साथ नीम का वृक्ष सम्वन्धित है। वे अपने बच्चों का मुंडन संस्कार इन्हीं देवी के मन्दिर में करवाते हैं।

भंडारी

भंडारी अपने वंश की उत्पत्ति अजमेर के चौहान वंश से मानते हैं। कहा जाता है कि उनके पूर्वज लाखनसी चौहान साँभर और नाडोल के शासक थे। वह निसन्तान थे अत: सन्तान प्राप्ति के लिए उन्होंने अपनी कुलदेवी आशापूरा की मानता की। समय पाकर उनके चौबीस पुत्र हुए जिनमें के एक पुत्र ददराव को भंडार का कार्य सुपुर्द था। यही कारण है कि ददराव की सन्तान भंडारी नाम से प्रसिद्ध हुई। सम्बत् १०४९ में जैनियों के यती ने जिसका नाम जसभद्रसूरि था, लाखनसी के पुत्रों को जैनी बना लिया था।

भंडारी रावजोधा के शासन काल में मारवाड़ आये थे। उस समय अपने नेता भंडारी की आधीनता में इन्होंने मारवाड़ राज्य की बड़ी सेवा की। जब राव जोधा के विरुद्ध मेबाड़ की सेनाओं ने चढ़ाई की थी तब झिलवाड़े में भंडारियों ने ही उनका मोर्चा लिया था। भंडारियों को इस बात का गर्व है कि उन्होंने अपने स्वामियों के लिए स्वामि-भक्ति के बड़े और उत्कृष्ट कार्य किये हैं और इसी के उपलक्ष में उन्होंने दीवान बख्शी तथा मुसाहिबत के उच्च पदों का उपभोग किया है। कर्नल वाल्टर का कथन है कि महाराजा अजीतसिंह के दिल्ली प्रवास के दिनों में भंडारी रघुनाथ ने ही महाराजा से नाम पर मारवाड़ का शासन किया था। निम्नलिखित दोहे में इसका प्रमाण पूर्ण रूप से सुरक्षित है:

अजो दिली रो पातसा राजा तो रघुनाथ।

अर्थात् अजीतसिंह दिल्ली का बादशाह है, मारवाड़ का राजा तो रघुनाथ है।

भंडारियों की रीति-रिवाजें सब ओसवालों के ही समान हैं। इनकी कुलदेवी आशापुरा का मन्दिर नाडोल में है जहाँ वर्ष में दो बार मेला लगता है। ये लोग काली गाय, काली बकरी अथवा काला भैंसा खरीद कर कभी नहीं लेते परन्तु मुफ्त मिलनें पर ले लेते हैं।

भंडारी अधिकांश में राज्य की नौकरी करते हैं। इनमें भी कई खाँपें हैं उनमें आपस में अन्तर्विवाह प्रचलित नहीं हैं। स्त्रियाँ परदा रखती हैं और अन्य ओसवालों की भाँति सिर में बोर नाम का जेवर नहीं पहनतीं।

सिंघी

सिंधी पूर्वकाल में सिरोही नन्दवाणे ब्राह्मण थे। इनके भी जैन धर्म ग्रहण की कथा ओसवालों की कथा के ही समान है। इनके पूर्वज सोनपाल को भी उसी प्रकार सांप ने काट लिया था और धर्म परिवर्तन से ही उसकी भी जान बची थी। सोनपाल ने अपने परिवार सहित शत्रुंजय की तीर्थयात्रा की और वहां संघ नाम का एक बालक उसके उत्पन्न हुआ। वह बालक बडा होनहार था। सिरोही के राव ने बाल्यकाल में ही उसे राज्य की नौकरी में ले लिया था और अपनी ही प्रार्थना पर उसे जोधपुर के राव गंगाजी को दहेज में दे दिया गया था जहां राज सेवा में उसने अच्छा नाम कमाया। उसके तीन पुत्र थे:

१. चापसी : इस व्यक्ति से भीमजोत सिंधी नामकी खांप का प्रारम्भ हुआ। इस खांप के लोगों ने कई पीढियों तक राज्य के बख्शी-पद पर काम किया।

२. राना इस व्यक्ति से मूलचंदोत सिंधी खांप की उत्पत्ति हुई। इस खांप के बहुत से लोग सोजत में बसे हुए हैं।

३. पदमसी : इस व्यक्ति से रायमलोत परतापमलोत सुखमलोत और सहमलोत सिंधियों की खांपों का विकास हुआ।

लोढा

ये लोग साह कहलाते हैं। दिल्ली के सम्राटों ने इनके पूर्वज टोडरमल तथा छाजमल को यह पद प्रदान किया था।

इन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि राजा पृथ्वीराज चौहान के एक सूबेदार जिसका नाम लाखनसी चौहान था उसकी गृहिणी के पेट से मांस का एक लोथडा: (लोढे के रूप में) उत्पन्न हुआ।

वह उस लोथड़े को अपनी कुलदेवी बड़लाई माता के मन्दिर पर ले गए। यह मन्दिर नागोर परगना के मदाना नाम के ग्राम में स्थित है। वहाँ उस लोथडे पर जब थोड़ा सा जल छिड़का गया तो उससे समस्त अंग निकल पड़े और इस प्रकार ठीक हाथ पैरों का शिशु बन गया। उस शिशु का नाम लोढा रक्खा गया। जिनसुरिजी नाम के एक यती नें उसे ओसवाल बनाया, उस बालक लोढा के बड़े होने पर जो वंश उससे चला वह लोढ वंश कहलाया। लोढा कुछ समय तक देहली रहा फिर वहाँ से समय पाकर उसके वंशज अजमेर चले आये और अजमेर से इनका मारवाड़ में आगमन हुआ।

लोढ़ों की चार खांपें हैं। टोडर मलोत, छाजमलोत, रतन मलोत और मारसिंहोत। इनमें टोडर मलोत वैष्णव हैं और सरकारी नौकरियां करते हैं। अवशिष्ट तीनों खाँपों के लोग जैनी हैं जो दूकानदारी करते हैं। कर्नल टाड का कथन है कि लोढा लोगों ने मारवाड़ में बड़े-बड़े ऊंचे तथा सम्मानपूर्ण पद ग्रहण किये हैं।

इस जाति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

इनकी स्त्रियां सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् जब घर से बाहर निकलती हैं तो पहले अपनी कुलदेवी ब्रडलाई माता के मन्दिर जाती हैं उसके अनन्तर फिर कहीं अन्यत्र।

चैत्र तथा आश्विन मास की १ से १० वीं तिथि तक स्त्रियां हाथों में मेहदी और आंखों में काजल नहीं लगातीं तथा पुरुष हजामत नहीं बनवाते और वस्त्र नहीं बदलते।

अन्य ओसवालों की भांति ये लोग विवाह के समय कुम्हार के चक्र की पूजा नहीं करते।

एक बात अवश्य है कि, विदेशों में बसनेवाले लोढा लोग अपने धार्मिक नियमों का वैसा पालन नहीं करते जैसा कि वे मारवाड़ में रहते हुए करते हैं।

मोहता

मोहता प्रधानतः जागीरदारों के कामदार होते थे। पूर्वकाल में यह लोग जागीरदारों के बस्सी (वंशवर्ती) अथवा गुलाम हुआ करते थे और इस गुलामी से उस समय तक मुक्त नहीं हो पाते थे जब तक वह अपनी स्थिति के अनुसार गुलामी का मूल्य नकद रुपये के रूप में उन्हें चुका कर उनसे मुक्ति-पत्र नहीं लिखा लेते थे।

जागीरदार विवाह और मृत्यु के समय टीके और न्योते के रूप में इनसे रकम वसूल किया करते थे और यदि किसी अवसर पर यह वह रकम अदा न कर पाते तो इनकी सब सुविधाएं वह जब्त कर लेते थे। बस्सी होने में केवल यही लाभ था कि लागबाग नाम का जो कर सम्पूर्ण प्रजा पर लगाया जाता था वह इन पर नहीं लगाया जाता था।

मोहता जब बस्सी होता था तब उसके सिर की चोटी काट दी जाती थी और इस प्रकार से "बिगडा बनिया हुआ मोहता" की कहावत प्रचलित हुई।

मोहता जाति में अनेक खांपें हैं किन्तु हम निम्न पंक्तियों में केवल उन खांपों का उल्लेख करेंगे जिनकी गणना लेखकों में मानी गयी है:

१. भंडसाली मोहता।

पूर्वकाल में यह भाटी राजपूत थे। सम्वत् ११९२ में यह जेसलमेर में जेनी

हो गये। रावजोधा के शासनकाल में रावजोधा के एक विवाह से रानी के साथ दहेज के रूप में यह मारवाड़ आये किन्तु इनमें के एक व्यक्ति की दरबार ने हत्या करवा दी तब भंडसाली व्यापार में लग गये, किन्तु थोड़े दिनों बाद फिर राज्य सेवा में प्रविष्ट होना आरम्भ कर दिया। ये लोग ओसवाल जाति के चौधरी माने जाते हैं इनके बच्चे ९ वर्ष की अवस्था तक चोटी नहीं रखाते :

२. बागडेचा मोहता : यह लोग पहले सोनगरा चौहान थे तत्पश्चात् जैनी हो गए। जालोर जिले में बागड नाम के यह पहले निवासी थे उसी गांव के नाम के आधार पर इनके वंश का नाम बाकडेचा पड़ा। महाराज जसवंतसिंह के शासनकाल से यह राज्य की नौकरी में लिये जाने लगे थे।

३. कोचर मोहता : कोचर नाम की एक चिड़िया होती है। एक व्यक्ति के जन्म के समय यह चिड़िया चहचहाई थी। इस चिड़िया के उस समय चहचहाने के कारण उस व्यक्ति का नाम भी कोचर रख दिया गया था। उस व्यक्ति से जो सन्ततिक्रम चला वह खांप कोचर मोहता कहलायी।

छाबेजेड मोहता। इनकी उत्पत्ति धांधल राठोड रामदेव से मानी जाती है। कहा जाता है कि इसने अपने विवाह के अवसर पर महाजनों से बहुत बड़ी रकम ऋण लेकर चारनों और भाटों को नेग के रूप में बांट दी थी। जब वह यह ऋण चुका न सका तब उसने अपना काजल नाम का पुत्र महाजनों को दे दिया। महाजनों ने इसको जैन धर्म में दीक्षित किया किन्तु एक सच्चे राजपूत की भांति इसके वीरतापूर्ण स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ा अत: यह महाजनों के साथ मेल-जोल से न रह सका। लोगों ने रामदेव से इसकी शिकायत की। काजल के मार डाले जाने की आज्ञा हो गई किन्तु किसी तलवार अथवा कटारी के प्रहार से मारने को मना कर दिया। अत: गुड की भेलियों की मार, मार मार कर उसका प्राणान्त कर दिया गया। उसी के एक पुत्र ने एक मंदिर में एक सोने का छज्जा बनवाया इसी से उसके वंशजों का नाम छाजू मोहता पड़ा।

५. वैद्य मोहता : यह ओसिया निवासी पंवार राजपूत थे जिन्होंने जैन धर्म ग्रहण कर लिया था। एक बार दिल्ली का सम्राट नेत्र रोगाक्रान्त हुआ जिसको इनके पूर्वज ने अच्छा कर दिया था उसी समय से ये वैद्य मोहता कहलाने लगे।

६. सादायत मोहता : यह लोग बहुधा जागीरदारों की ओर से उनके रुपये की अदाई के सम्बन्ध में राज्य को अपनी जमानत दिया करते थे तथा दीवानों और बक्सियों की संरक्षा प्राप्त करने के लिए यह अपनी बेटियां उनको ब्याहा करते थे। जब महाराज अभयसिंह ने पंचोली लालचन्द को अपना दीवान नियुक्त किया तब उसने भी पूर्व प्रथा के अनुसार एक मोहता की बेटी से विवाह करने की

मोहता

ढोली

ढाढी

हिजड़ा
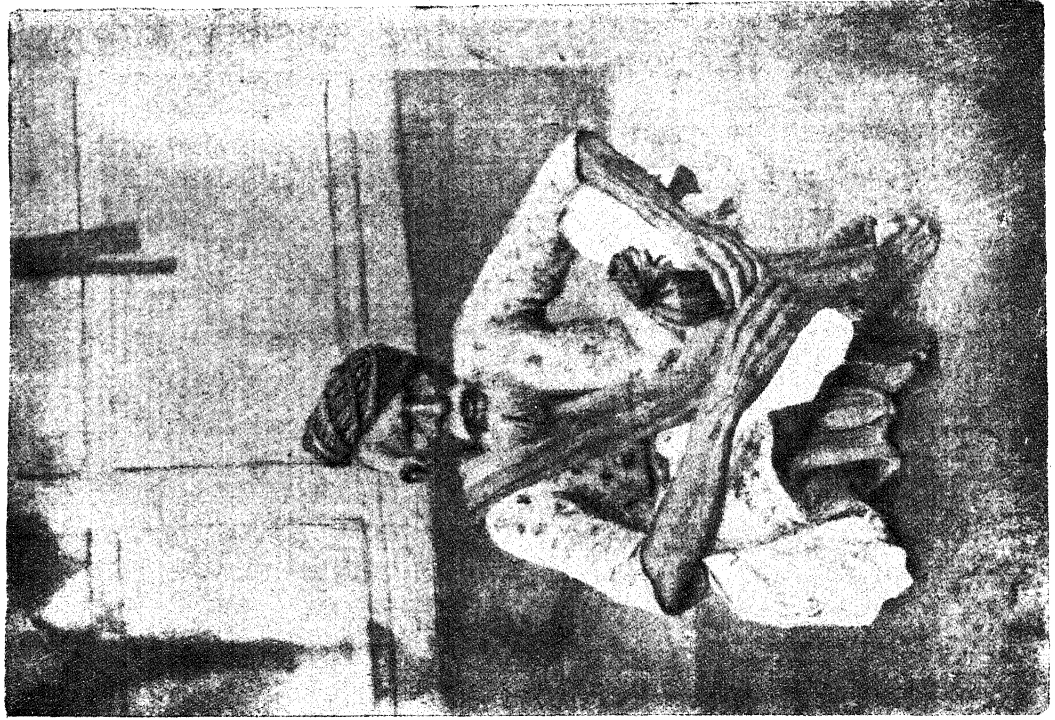
मांग पेश की। तब मोहतों ने एक लम्बी रकम पंचोली दीवान को देकर बेटी के विवाह से छुटकारा प्राप्त किया, उसी समय से यह सादायत मोहता कहलाते हैं।

७. बंदा मोहता : पूर्वकाल में यह जालौर निवासी थे। मोहता अभयराज अमौर के ठाकुर का कामदार था। महाराज मानसिंह ने उसको इस दासता से मुक्त कर राज्य सेवा में नियुक्त कर लिया। महाराज मानसिंह और तख्तसिंह के जमाने में इनके वंशज दीवान के पद पर काम करते थे।

गाने तथा बाजा बजानेवाले

उपरोक्त व्यवसाय में मारवाड में केवल दो ही जातियों के लोग हैं जिनमें हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही धर्मों के अनुयायी हैं।

ढोली

ढोल बजाने का व्यवसाय करने के कारण यह जाति ढोली कहलायी। ढोल शब्द से ही इस जाति का नामकरण हुआ। यह लोग अपनी जाति की उत्पत्ति भारतवर्ष के आकाश में विचरनेवाले अर्ध देवता गंधर्व से बताते हैं। मारवाड में यह लोग नक्कारची दमामी अथवा जावड भी कहलाते है। जयपुर में यह राना कहे जाते हैं और मेवाड में इनका नाम भारत है।

पूर्वकाल में ढोलियों की तीन खापें थीं। १. भेट २. कट्टू ३. कलेट। बाद में अनेक राजपूत वंश के लोग इनमें सम्मिलित हो गये तथा नवीन खांपें उत्पन्न हो गई। इन में की कुछ नवीन खांपों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

१. जोडिया : पूर्व काल में यह लोग चौहान राजपूत थे। किन्तु मुसलमानों के अत्याचार से व्याकुल होकर यह ढोली बन गये। अब यह सांचोर के चौहानों के घर के भिखमंगे हैं।

२. गिलास : यह आरम्भ में पालीवाल ब्राह्मण थे और ओसियां गांव में रहते थे।

३ ढेढरा : यह पूवकाल में पडिहार राजपूत थे। राव दोहडजी ने एक बार अपनी कुलदेवी नाग नौगियां की पूजा करवते समय इसने ढोल बजवाया था तब से ढोली हो गये।

४. देसार : इनकी उत्पत्ति देवड़ा राजपूतों से हुई है। यह ढोली इसलिए कहलाने लगे कि इन्होंने शत्रुओं से प्राण बचाने के लिए आबू पर्वत पर ढोल वजाया था।

५. बगार : यह पूर्वकाल में सिंधल राठौड़ थे।

६. डांगी : इनकी उत्पत्ति राठौड़ों से हुई। रायपाल राठौड़ ने जब चूंडा भाटी को रोहड़िया चारन कह दिया, तब जैसलमेर के रावल ने उनके पुत्र डांगाजी को बंदी बनाकर एक ढ़ोली जाति की स्त्री के साथ उसका विवाह कर दिया। डांगा को वापस लाने के लिये सेना भेज़ी गयी जो उसे वापस ले आई। किन्तु ढोली के साथ उसका विवाह हो चुका था, इसलिये रायपाल ने डेढ़ लाख रुपये देकर उसे ढोली हो जाने की आज्ञा दे दी। ढोली होने के पूर्व की डांगा की सन्तान डांगी राठौड़ कहलाते हैं और मारवाड़ भर में बसे हुए हैं। मालवा में भी इस खांप के अनेक लोग आबाद हैं। ढोली स्त्रीं से विवाह हो चुकने के पश्चात् जो सन्तान डांगा के उत्पन्न हुई वह डांगी ढोली कहलाये। इस कुल की उत्पत्ति निम्न-लिखित कविता से स्पष्ट है :—

धूहड़ सुत रायपाल तास सुत मोहन डांगी
चन्द सूरज दे साख तदे इक वाचा मांगी
होय बंस राठौड़ तिको कोई पलटे मोसूं
अचल गड्ढ मरजाद अरजहूँ दाखूं तोसूं
कर परनाम तिलक कर सवा लाख धन सोंपियो
कमधजरा कुल देव कर ढोली डांगी थरप्पयो

मारवाड़ के ढोली, राजपूतों की ही रीतियाँ और प्रथाएँ मानते हैं। यह देवी के उपासक हैं और मलानूर नाम के एक पीर को भी मानते हैं। यह मांस खाते हैं तथा शराब पीते हैं। नाई, धोबी और भंगी ये सब लोग इनको निम्न जाति का मानते हैं। वे इनको राजपूत पिता और भंगिन माता की सन्तान समझते हैं।

जोधपुर के ढोली कहते हैं कि महाराज रामसिंह के समय में उनको मुसाहिबी का पद प्राप्त था। उस व्यक्ति का नाम अमियां था और ढोलियों की जाति में अमियां के वंशज अब भी अगुआ गिने जाते हैं।

ढोल बजाने में इनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। खेती भी कुछ लोग करते हैं किन्तु केवल खरीफ की फसल उपजाते हैं। यह लोग शीत बहुत मानते हैं इसके लिए यह यहाँ तक बदनाम हैं कि यदि कोई व्यक्ति अधिक वस्त्र पहने दिखाई देता है तो लोग उसे ढोली कह कर पुकारते हैं।

यह प्रत्येक जाति के घर भीख मांगते हैं किन्तु गढ़ मूँगा जाति के भिखारी इनसे भीख लेते हैं। इनके भाट भी अलग हैं जो इनकी वंशावली रखते हैं।

ढोलियों में कुछ भांड भी हैं। यह गुरेल जाति के व्यक्ति हैं। कहा जाता है कि महाराज भीमसिंह के समय से इन्होंने यह पेशा अपनाया है।

ढोलियों की स्त्रियाँ ढोलने कहलाती हैं। वह गाती हैं, किन्तु नाचती नहीं हैं। इनमें नाता प्रचलित नहीं है। जिस परिवार में यह अपनी कन्या ब्याह देते हैं, उस परिवार की कन्या फिर चार पीढ़ी तक ब्याह कर अपने घर नहीं लाते।

मुसलमान ढोली प्रधानतः डांगी वंश के हैं। यह औरंगजेब के समय में मुसलमान किये गये थे। इन सब की जमाअत सुन्नी है। यह हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के नियम मानते हैं। यह शूकर नहीं खाते और झटके का मांस भी अखाद्य मानते हैं। इनकी स्त्रियां हिन्दुओं की स्त्रियों के समान घाघरा (लंहगा) पहनती हैं।

ढाढी

ढोलिया के ही समान ढाढी भी गवैये होते हैं। ये लोग चिकारा बजाते हैं। इन में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के लोग हैं। यह भी अपनी उत्पत्ति राजपूतों से ही मानते हैं। हिन्दू ढाढी राजपूतों के अतिरिक्त जाट, विश्नोई, सुनार और खत्रियों से भिक्षा लेते हैं। वे मीरासियों तथा मुसलमान ढोलियों के साथ हुक्का पी लेते हैं किन्तु मुसलमान ढाढियों का कहना है कि उनके एक पूर्वज जिनका नाम मलानूर था और जो जाति के राजपूत थे उन्होंने रामचंन्द्रजी के विवाह के पश्चात् जनकपुर से अयोध्या जाते समय बरात में बाजा बजाया था और ये लोग इस विषय पर एक गीत अब भी गाते हैं। मारवाड के मरुस्थल जिसका नाम थली है वहां यह लोग अब भी काफी संख्या में बसे हुए हैं वहां इनका नाम भांगनियार है। ये लोग राजपुतों तथा सिंधी मुसलमानों की वंशावली भी रखते हैं। यह पूरी तरह राजपूती प्रथाएं मानते हैं। अपनी ही जातिके भीतर विवाह करते हैं और नाता इनमें प्रचलित नहीं है। इनकी भी स्त्रियां गाती हैं, परन्तु नाचती नही हैं।

गायक तथा नृतक

मारवाड में गायक तथा नृतक हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं। हिजडे जागरी, पातुर, भगतन तथा कलावंत इन्ही पेशों के अन्तर्गत हैं। इन पेशेवालों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या दस गुनी है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनका विवरण दिया जा रहा हैं।

हिजडा

हिजड़ों में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही हैं। ये लोग ढोलक और मंजीरों पर नाचते गाते हैं। गाने के साथ ताली बजाना इनकी विशेषता है। नाजर और खोज़े भी इन्हीं में के होते है. अन्तर केवल इतना होता है कि खोजे दाढी मुछें रखते हैं तथा नाजर उन्हें साफ करा डालते है। हिजड़े जनाने वस्त्र पहनते हैं तथा नाचने गाने का

व्यवसाय करते हैं और नाजर मरदाने कपड़े पहनते हैं तथा जनाने महलों के द्वार–रक्षक का धन्धा करते हैं। हिजड़े अपनी दाढ़ी मुछें इतनी अधिक मुँडाते हैं कि मसल मशहूर हो गई है।

हिजड़े की कमाई मूछ मुंडाई में गंवाई

मारवाड़ हिन्दू हिजड़े गतराडा कहलाते हैं और खासकर वे गोरामजी के पहाड में स्थित ग्रामों में जो सोजत और जेतारन जिलों में है रहते है। कहा जाता है कि उस पहाड़ी से बहुधा बिजली की सी गरज की भीषण तड़प सुनाई देती है वहां के निवासी इस शब्द को गोरामजी की गाज कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि जो बच्चा उस समय जन्म लेगा वह निश्चय ही हिजड़ा होगा।

ये लोग चेले बनाकर अपना जत्था बढ़ात हैं। किसी समय ये युवकों को बहका ले जाया करते थे। पुत्र जन्म के अवसर पर ये लोग अवश्य पहुंच जाते हैं और अपना हक वसूल करते हैं।

मारवाड़ के मुसलमान हिजड़े हाजी गुरपीर के चेले हैं और सुन्नी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। यह भी जनाने वेश में रहते हैं और नाक तथा कानों में बालियां तथा हाथों में चूडियाँ पहनते हैं। ये लोग भी चेले बनाते हैं और उनका नाम बदल कर जनाना नाम रखते हैं। गुरु की मृत्यु पर यह अपने हाथों की कांच की चूडियां फोड़ देते हैं और चांदी की चूडियां पहन लेते हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक हिन्दू स्त्री अपने पति की मृत्यु पर करती है।

हिजड़ों में केवल पुरुष होते हैं। स्त्रियां होती ही नहीं।

जागरी पातुर

छोटी ढोलकें बजाकर नाचने और गाने का पेशा करने वाली जाति का नाम जागरी है। इनके पुरुष जागरी कहलाते हैं तथा स्त्रियां पातुरें। कहा जाता है कि पूर्व काल में ये लोग गहलोत राजपूत थे। जब दिल्ली के बादशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया तब गहलौत राजपूत भी चित्तौड छोडकर भागे। कुछ परिवार तो लुडवा में जाकर बसे और कुछ प्राचीन राजधानी जयसलमेर चले गये। वहां धन के अभाव में ये लोग भूखों मरने लगे और अन्त में प्राणों की रक्षा के लिये इनको अपनी लडकियों को वेश्या का पेशा कराने के लिये विवश होना पडा।

इसप्रकार इस जागरी पातुर नाम की नवीन जाति की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् यह लोग मारवाड़ के फलौदी नामक स्थान में चले गयें वहाँ बहुत दिनों तक सिद्धू नाम के एक पुष्करणा कल्ला ब्राह्मण ने इनका भरण पोषण किया। सिद्धू ब्राह्मण के प्रति सम्मान दिखाने के लिये यह उनके वंशजों को

भगतन

पातुर

कलावंत

भांड
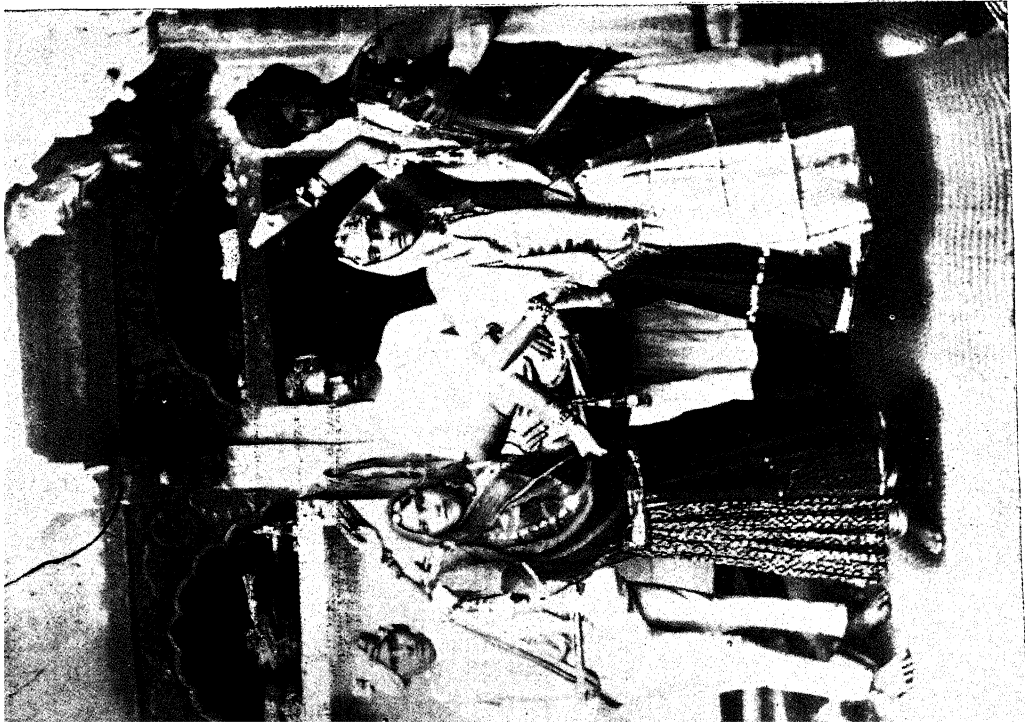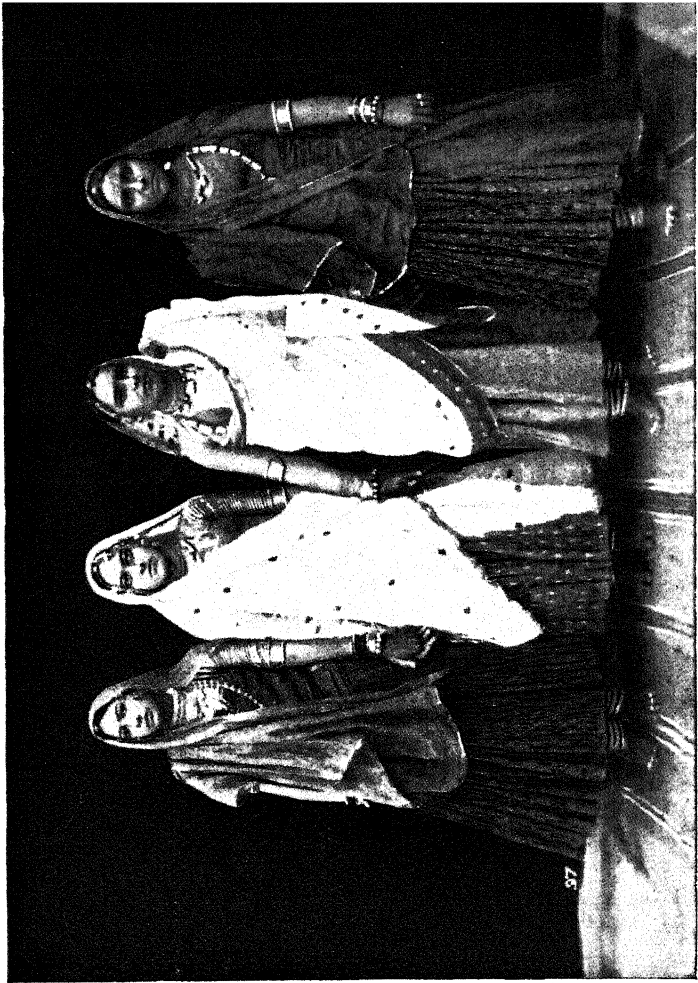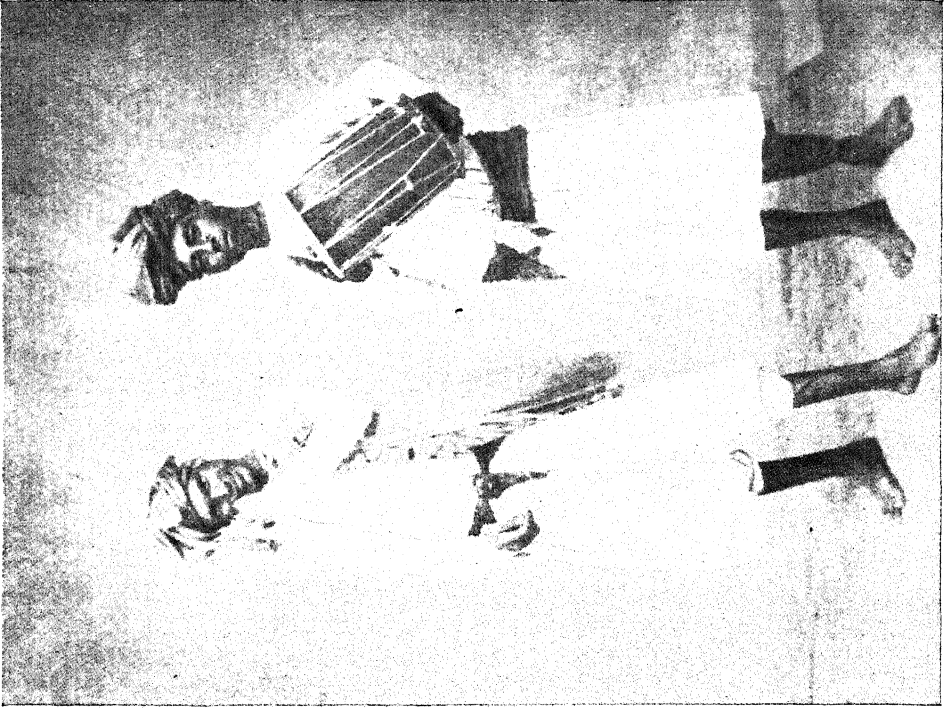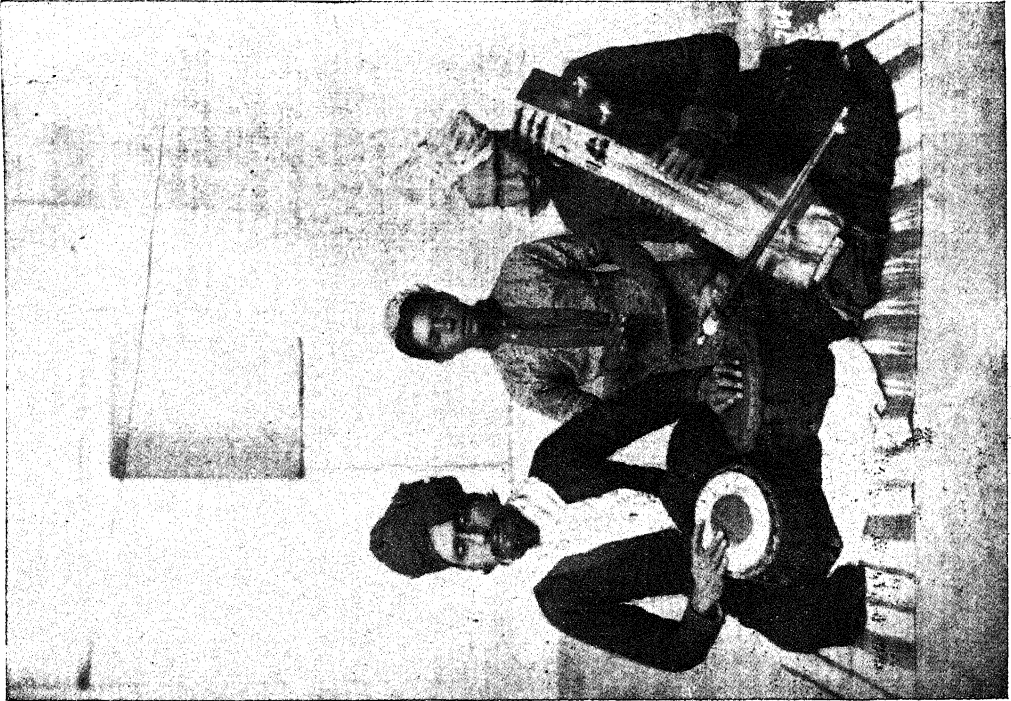
अपने गानों की अश्लीलता में कभी नहीं घसीटती जैसा कि अन्य लोगों के साथ बहुधा कर बैठती हैं।

जागरी शाक्त मतावलम्वी होते हैं। तथा काली माता की पूजा करते हैं। इन पर चढ़ाई हुई पूजा शामी लोग ग्रहण करते हैं। यह लोग नीची जाति के लोगों के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करते। ये गृहस्थों का जीवन व्यतीत करते हैं तथा जाति बहिष्कृत राजपूतों की एक उपजाति जो गोला कहलाती है उसी के साथ विवाह सम्बन्ध करते हैं। इनमें नाते की प्रथा नहीं है। इनकी विवाहिता स्त्रियाँ नाचने गाने का पेशा नहीं करतीं। केवल पुत्रियाँ ऐसा करती हैं तथा पातुर कहलाती हैं–

पातुरें भी यह पेशा आरम्भ करने के पूर्व यद्यपि अपना विवाह करती हैं किन्तु वह नाममात्र के लिये ही होता है। उसकी रीति यह है कि शुभ मुहूर्त पर ब्राह्मण मिट्टी की बनी गणेशजी की मूर्ति लेकर आता है और उस कन्या को उसी मूर्ति के साथ फेरे दिये जाते हैं तदनन्तर वह वेश्या के पेशे में प्रवृत्त की जाती है। मारवाड़ में महा निकम्मे और क्रूर बेकार व्यक्तियों को लोग व्यंग में पातुर का गनेश कहा करते हैं।

पातुर की पोशाक होती है एक पाजामा अंगरखा तथा उस पर एक ओढ़नी अथवा दुपट्टा। पातुर को कितना ही बड़ा प्रलोभन क्यों न दिया जाय किन्तु वह मुसलमान के साथ संसर्ग करने को कदापि राजी न होगी। कदाचित् कोई पातुर ऐसा कर बैठे तो वह बिरादरी से बाहर निकाल दी जाती है।

मारवाड़ की पातुरों के घर सदा फूस अथवा खपरेलों से छाये जाते हैं। लोहे की चादरों से कदापि नहीं। कदाचित् कोई बहुत ही धनाढ्य पातुर हो और अधिक से अधिक शानदार घर उसे प्राप्त हो जाय तो भी उस मकान के सब से ऊंचे भाग में फूस की छावन की एक टपरी अवश्य होगी। ऐसा यह लोग इसलिए करती हैं कि उनके घरों तथा भगतनों के घरों में भेद बना रहे।

भगतन

मारवाड़ में नाचने गाने का पेशा करनेवाली वेश्याओं की एक और भी जाति है जो भगतन कहलाती है। इनमें तथा पातुरों में बस इतना ही भेद है कि पातुरें किसी भी मूल्य पर मुसलमान से सम्पर्क नहीं करतीं किन्तु भगतनों को मुसलमानों का संग करने में कोई आपत्ति नहीं होती। जोधपुर में इन भगतनों की उत्पत्ति महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में हुई। प्रारम्भ में रामावत साधुओं की कुछ लड़कियाँ चरित्रहीन हो गईं। जिससे जोधपुर के साधु समाज में उनका विवाह

नहीं हुआ। उन्हीं साधु कन्याओं से भगतन नाम की नवीन वेश्या जाति की सृष्टि हुई। इस जाति के पुरुष भगत कहलाते हैं तथा स्त्रियाँ भगतन। इनके घरो की लड़कियाँ ही वेश्या का पेशा करती है जो स्त्रियाँ बाहर से ब्याह कर इनके घर आती हैं वह वेश्या का पेशा नही करतीं। इनमें नाता करने की प्रथा नहीं है। पातुरों की भाँति वेश्या के पेशे में प्रविष्ट होने से पूर्व या तो यह एक मिट्टी के गनेशजी के साथ ब्याह दी जाती है अथवा किसी ऐसे साधु के साथ जो एक रुपया अथवा आठ आने के बदले में पति के अपने समस्त अधिकार बेच दिया करता है।

कलावत

कलावंत केवल गवैये होते हैं। वे नृत्य नहीं करते। कलावंत संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत में कला का अर्थ हुनर है और वन्त का अर्थ है सम्पन्न। अर्थात् हुनर का जाननेवाला कलावन्त कहलाता है। मारवाड़ में बसनेवाले सब के सब कलावंत सुन्नी मुसलमान हैं। इनमें दो भाग हैं एक तो वह लोग हैं जो पूर्व काल में गौड ब्राह्मण थे तथा हिन्दू मन्दिरों में भजन गाया करते थे। महमूद गजनवी ने मंदिर ध्वंस कर दिये थे और इन लोगों को मुसलमान होने के लिये विवश किया था। दूसरे वह लोग हैं जो टांक वंश के चौहान राजपूत थे और अब टांक सुलतान कहलाते हैं।

ये लोग अपने धर्म में बडे दृढ़ होते हैं। मारवाड़ के डोम तथा ढाढियों से इनका सामाजिक स्थान ऊंचा है। इनकी स्त्रियां नाता नहीं करतीं। अमीर खुसरों तथा तानसेन के प्रति इनके मन में बहुत सम्मान है। क्योंकि इनको ये लोग गान विद्या का आविष्कारक मानते हैं। मारवाड मे ये लोग महाराज अजीतसिंह के जमाने में आये। महाराज मानसिंह के समय में इनका अच्छा उत्थान हुआ था। कारण कि वह इस कला के प्रशंसक थे। निम्नलिखित कविता महाराज की इस गुणग्राहकता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है।

जोध बसाई जोधपुर ब्रज कीन्हीं विजपाल
लखनेंऊ, काशी, दिली तें कीन्हीं नेपाल।

अर्थात् राव जोधा ने जोधपुर नगर बसाया और (गोस्वामियों को बुलाकर)। हे महाराज विजयसिंह तुमने तो उसे ब्रज के साथ साथ (संगीतज्ञों का आह्वान कर) लखनऊ काशी दिल्ली और नेपाल बना दिया।

भांड

भांडों में मुसलमानों की संख्या अत्यन्त अल्प है और उनमें कोई विशेषता भी नहीं है अतः हमारी चर्चा हिन्दू भांडों के ही सम्बन्ध में होगी। हमारी समझ में यह ढोली जाति के वह लोग है जिन्होंने विदेशों में हंसी मजाक मसखरापन तथा विदूषक-पन सीख लिये हैं।

बहुरूपियों से यह भिन्न हैं। यह स्त्री और पुरुषों के भांति-भांति के रूप धारण करते हैं। इनमें कहने तथा मजाक करने की स्वाभाविक योग्यता होती है। ये विवाह शादी के अवसरों पर लोगों की महफिलो में जाते हैं और वहां अपने हंसी-मजाक के खेल दिखाकर उन्हें प्रसन्न करते है। इनके व्यंग या मजाक अधिकतर पौराणिक कहानियों से सम्बोधित होते है तथा सामयिक शासकों का भी ये मजाक उडातें है।

अवध के भांडों के सम्बन्ध में मि० कारनेंगी का कथन है कि वे वंशोच्चारक भी होतें हैं। सम्भवत: उन्होंनें भांडों को भाटों के साथ मिला डाला है परन्तु सर इलियट ने ठीक समझा है कि यें दोनों एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। कहीं-कहीं यह भंडेंले भी कहलातें है। इस शव्द से दोनों का अन्तर बिलकुल स्पष्ट होता है।

मिस्टर इवटसन भाँड शबद की उत्पत्ति भांडा से मानते हैं, जिसका अर्थ विदूषण है और बहुरूपियों को वह इनसे निम्न श्रेणी में समझतें हैं। परन्तु पंजाबी बहुरूपियों के विषय में ऐसा मत न्यायसंगत नहीं है।

जोधपुर के भांड वह गोरेल ढोली हैं जिनकी उत्पत्ति कसला चौहानों से हुई है। कसला चौहान मदर खां के नाम से भी प्रसिद्ध था। यह सांचोर के राजा के उन भाइयों में से था जिन्होने निर्धनता के कारण अपना भाग्य सुधारने के विचार से अपने को ढोली कहना प्रारम्भ कर दिया था। मदरखां के वंश में एक व्यक्ति जहां के नाम का हुआ है वह जयपुर चला गया था। वह उस रामा का पिता था जिसके पुत्र धन रूप को महाराज भीम सिंह ने जयपुर तथा जोधपुर नरेशों के रूपनगर में भेंट करने के अवसर पर अपनी प्रतिभा की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के उपलक्ष में भांड का पद दिया था। यह वह अवसर था जब ये लोग किशनगढ से वैवाहिक महोत्सव सम्पन्न करने लिए एकत्र हुये थे। कहा जाता है कि इसने अपने समय के सब से अधिक प्रसिद्ध भांड करेला को जो नबाब अमीर खां के पास नौकर था हरा दिया था मारवाड राज्य ने वाली में सोखर नाम का गांव धनरूप को देकर पुरस्कृत किया था।

जोधपुर के भांड कवल राजाओं और सरदारो क द्वार पर जाते हैं; किन्तु मुफस्सिल के भ ड चाहे किसी के घर पहुंच जात हैं।

भांड अपने गोत्र या खाप में विवाह नहीं करते। इनकी रीति-रिवाज ढोलियों से मिलती-जुलती है। यद्यपि ये लोग ढोल नहीं वजाते।

व्यवसायी जातियां

अग्रिम परिच्छेद में मारवाड की उन जातियों का वर्णन है जिनके हाथों में केवल मारवाड का ही नहीं वरन् समस्त भारतवर्ष का सुख और वैभव है। यह है व्यवसायी जातियाँ और इन व्यवसायी जातियों के तीन स्पष्ट अंग हैं। एक तो वे लोग है जो दूकानें तथा गद्दियां खोलकर सामान बेचते हैं उन्हें हम व्यापारी कहते हैं। दूसरा दल फेरीवालों का है जो सामान साथ लेकर लोगों के घर-घर पर जाकर सामान बेच आते हैं और तीसरे वे लोग हैं जो सब प्रकार के माल का आयात तथा निर्यात करते हैं। अर्थात् वे व्यवसायी जो एक स्थान का माल दूसरे स्थान पर पहुंचाते हैं।

इस समुदाय में हिन्दू, जैन तथा मुसलमान तीनों धर्म के व्यक्ति हैं और मारवाड़ के समस्त परगनों में विखरे बसे हैं। मारवाड के बाहर भारतवर्ष के समस्त व्यापारिक केंद्रो में प्रधान रूप से इनका निवास है और वहां के सम्पूर्ण बाजारों पर इनका अधिकार है। ये मितव्ययिता तथा रुपये के लोभ के लिये प्रसिद्ध हो चुके हैं।

महाजन

महाजन का शाब्दिक अर्थ है बडे आदमी। मारवाड में यह शब्द बनिया के लिये प्रयुक्त होता है। बनिया संस्कृत के वाणिज्य शब्द का अपभ्रंश है इसका अर्थ है व्यापारी। व्यापारी शाह और सेठ शब्दों से भी सम्बोधित किये जाते हैं। इन शब्दों से धनवान् होने का बोध होता है। व्यापारी को किरार कहना एक छोटे शब्द का उपयोग करना है और लेंड कहना तो उसका अपमान करना है। कहावत है "किरार जितना विरार" इसका तात्पर्य है कि इन लोगों की सम्पत्ति बेटों में समान भाग में बंट जाती है। जैनी तथा हिन्दू दोनों सम्पदाय के महाजन हैं। मारवाड़ में जैनी महाजनों की संख्या अधिक है। इनमें ओसवाल, सरावगी, पोरवाल, श्रीमाल तथा श्री श्रीमाल सम्मिलित हैं। ये प्रधान रूप से व्यापारी हैं। पोरवालों में थोडे से व्यक्ति ऐसे हैं जो मोहताओं के समान जागीरदारों के कामदार हैं। सरावगी, मरोट, साम्भर, नावा, नागोड, मरता तथा दिदवाना में अधिक आबाद हैं। पोरवाल, वाली तथा जालोर के परगनों में अधिक हैं। मुसलमानों में मुसलमानों की व्यवसायी जाति वोहरा है, उनकी बस्ती मारवाड़ में अधिक नहीं हैं। प्रधानतः हिन्दुओं की ही अधिक है। हिन्दुओं में माहेश्वरी अग्रवाल, वीजावर्गी और सुंगा हैं। ओसवालों में तथा इन लोगों में अन्तर इतना ही है कि ये लोग नाइयों तथा गोलों के हाथ का भोजन नहीं खाते। तथा लहसन और प्याज भी नहीं खाते। ओसवाल विवाह में केवल चार फेरे चौरी पर फिरता है किन्तु महाजन चार तोरन पर और फिर चार चौरी पर। इन में नाता प्रथा बिलकुल नहीं है।

सरावगी

"सरावगी" शब्द के विन्यास से ही इस जाति की उत्पत्ति का आभास मिलता है। सरा अर्थात् सुरा का अर्थ है शराब और ओगिया का अर्थ घृणा करनेवाला। मिस्टर विलसन के मतानुसार यह शब्द यथार्थ में स्राउक है जिस का अर्थ बुद्ध का पूजक अथवा जैनी होता है।

श्रीकृष्ण भगवान के वंश में द्वारिका में नेयनाथ नाम का एक यदुवंशी राजा हुआ था। इसका विवाह जूनागढ के राजा अग्रसेन की कन्या राजलदे के साथ निश्चित हुआ था किन्तु जब यह चौरासी गाँव के राजपूतों को अपनी बरात में साथ लेकर वहां पहुंचा तो उसे शराब की कहीं से ऐसी दुर्गन्ध मिली कि इसको शराब से घृणा हो गई। उसने वहां देखा कि वहां की शराब कुछ ऐसी वस्तुओं से बनाई गई है कि उसकी दुर्गन्ध पूरे वायु मंडल में भर गई है। वह इसी घटना से प्रभावित होकर अपने सब बरातियों सहित जैनी हो गया और इस प्रकार महाजनों में चौरासी गौत्र बने।

सरावगियों में दो सम्प्रदाय हैं। एक तेरह पंथी कहलाते हैं और दूसरे बीस पंथी अर्थात् प्रथम के तेरह नेता है और द्वितीय के बीस हैं कुछ लोग इसका अर्थ यह लगाते है कि प्रथम पंथ में मुक्ति के लिये तेरह बातों की आवश्यकता होती हैं तथा द्वितीय में बीस की। तेरह पंथी मूर्तियों को कपडे पहनाते हैं उनके सामने दीपक जलाते है किन्तु फल फूल कुछ नहीं चढाते क्योंकि वह वनस्पति जीवन को भी किसी प्रकार का आघात नही पहुंचाना चाहते। कदाचित् कोई उनको फल फूल अथवा साग पात दे दे तो वह उसका उपयोग अवश्य करेंगे किन्तु स्वयं नहीं तोडेंगे। बीस पंथी अपनी देव मूर्तियों को किसी प्रकार का वस्त्र नहीं पहनाते नंगा पूजते हैं और उनके सामने कोई दीपक नहीं जलाते हैं तथा न कोई फल फूल ही चढाते हैं। मिस्टर होटेस विलसन का कथन है कि असली और कट्टर दिगम्बर बीस पंथी ही होते हैं। तथा तेरह पंथी तो उन्हीं से निकली एक शाखा है। किन्तु मारवाड़ में तेरह पंथी आचार्य लोगों पर विश्वास नहीं करते जब कि बीस पंथी पर विश्वास करते हैं।

अहिंसा हिन्दुओं का पुराना सिद्धान्त है, परन्तु सरावगियों ने उस के पालन में अति कर दी है। वे अपने देवताओं को इसी अहिंसा पालन के लिए फल फूल न चढा कर मेवा चढाते हैं जैसे बादाम, पिस्ता, गरी और अखरोट इत्यादि।

इनके वैवाहिक कार्यों में ब्राह्मणों का कोई स्थान नहीं है। तथा इनके यहां विवाह से एक दिन पहले ही तोरन स्पर्श कर लिया जाता है। मृत्यु के पश्चात् मृतक का यह कोई क्रिया-कर्म नहीं करते न सर मुडाते हैं। केवल तीसरे दिन बैठकर पत्थर लडाते हैं और कहते जाते हैं तुम तुम्हारे, हम हमारे अर्थात् जीवित और मृतक में कोई संबंध नहीं है।

सरावगी खंडेलवाल जिला जयपुर से मारवाड आये थे यही कारण है कि अनेक स्थानों में यह खंडेलवाल भी कहलाते हैं। सरावगी ओसवालों के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते तथा निम्नलिखित बातों में उनसे भिन्न होते हैं।

१. सरावगी दिगम्बर मूर्ति पर विश्वास रखते हैं और ओसवाल श्वेताम्बर मूर्ति पर

२. ओसवालों का प्रधान पुरोहित सैवज्ञ होता है किन्तु सरावगियों का पुरोहित उनके ही वंश का एक व्यक्ति होता है।

३. सरावगी सूर्यास्त के पश्चात् कुछ नहीं खाते-पीते, किन्तु ओसवाल इस बात में अधिक कट्टर नहीं होते।

४. ओसवाल सरावगी के हाथों का पका भोजन स्वीकार कर लेंगे, परन्तु सरावगी ओसवालों के हाथों का भोजन नहीं स्वीकार करेंगे।

५. ओसवाल बिना धोया ईंधन जला लेंगें, परन्तु सरावगी धोकर ही जलावेंगे। सरावगती रात में दीपक भी नहीं जलाते।

६. सरावगी बिना स्नान किये भोजन नहीं करता, किन्तु ओसवाल इसे आवश्यक नहीं मानते।

पोरवाल

पूर्वकाल में ये लोग गुजरात में पाटन नामक स्थान के निवासी राजपूत थे। लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व इन्होंने जैन धर्म स्वीकार किया था। इस जाति के लोग पंवार राठोर, सुलंखी इत्यादि राजपूत वंशीय उपाधियां अब भी धारण किये हैं।

अब इनका व्यवसाय लेन-देन करना है। जसवन्तपुरा, जालोर और गोडवार के ग्रामों में यह कृषकों को कर्ज बांटते हैं और ऐसा लम्बा व्याज लेते हैं कि एक बार इनसे कर्ज लेकर फिर उसका कर्ज मुक्त होना कठिन हो जाता है। समाज में ये लोग अपनें इसी व्यापार के कारण अत्यन्त नीची दृष्टि से देखे जाते हैं। इनके सम्बन्ध में लोगों में निम्नलिखित कहावत प्रचलित है:

वनिया थारी वान कोई नर जाने नाहिं
पानी पीवे छान लोहू अछानें पिये।

अर्थात् ऐ बनिये तेरी कृत्य कोई नहीं जानता। तू पानी तो छानकर पीता है परन्तु रक्त बिना छना ही पी जाता है।

सरावगी

पोरवाळ
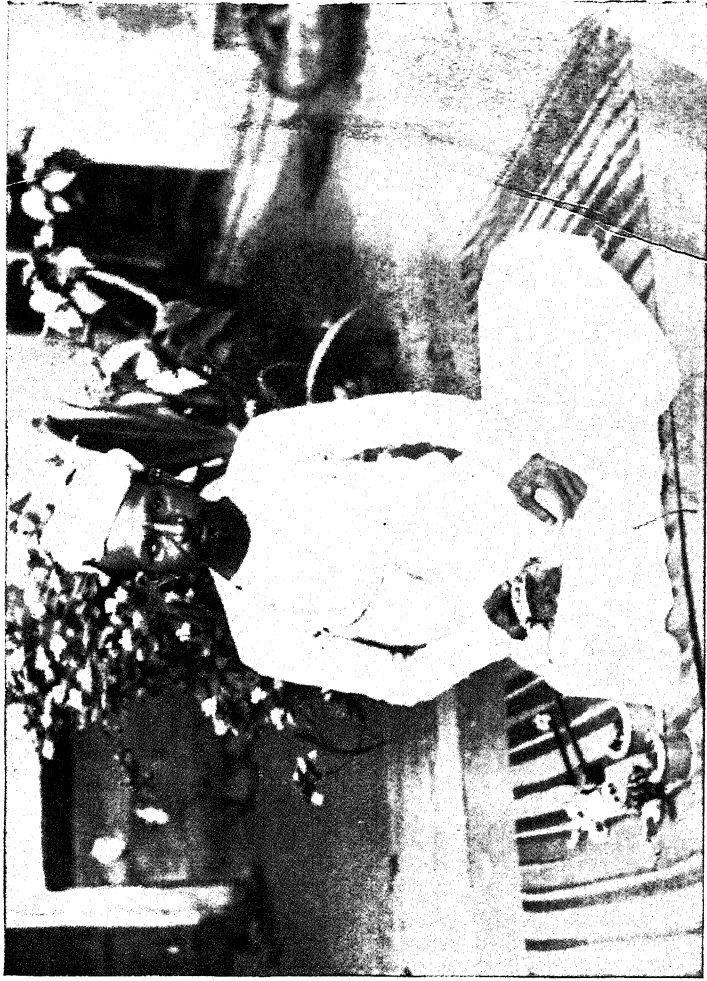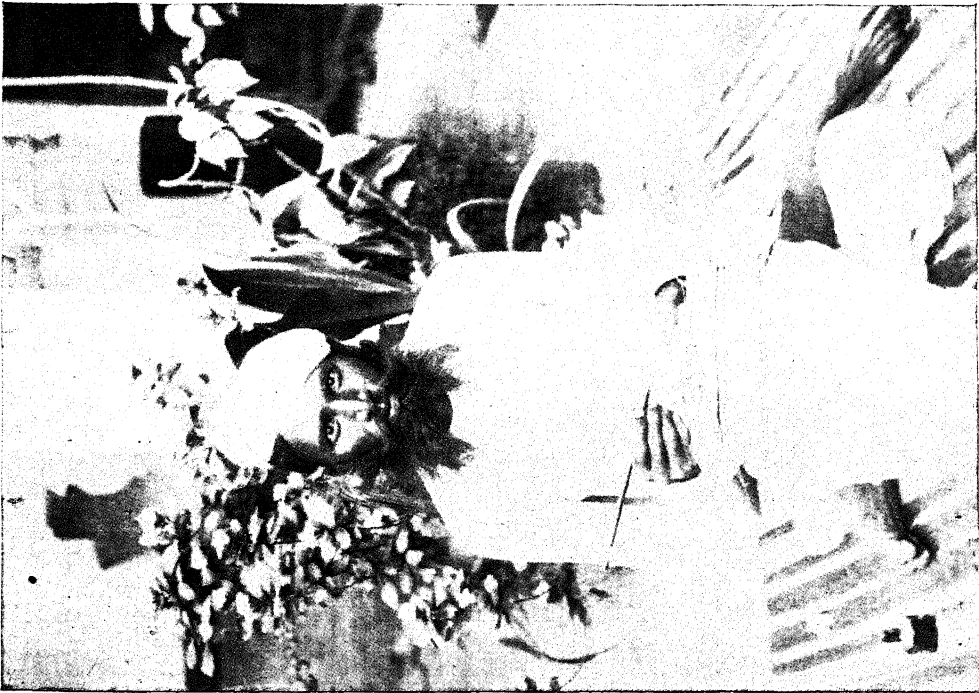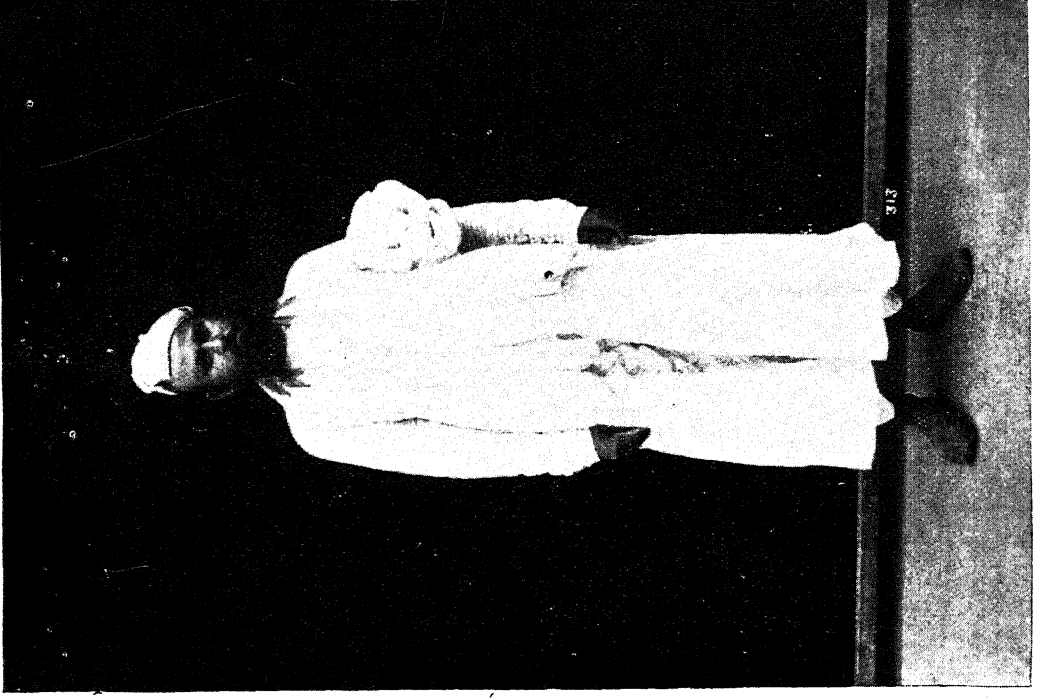
अग्रवाल महाजन

माहेश्वरी महाजन
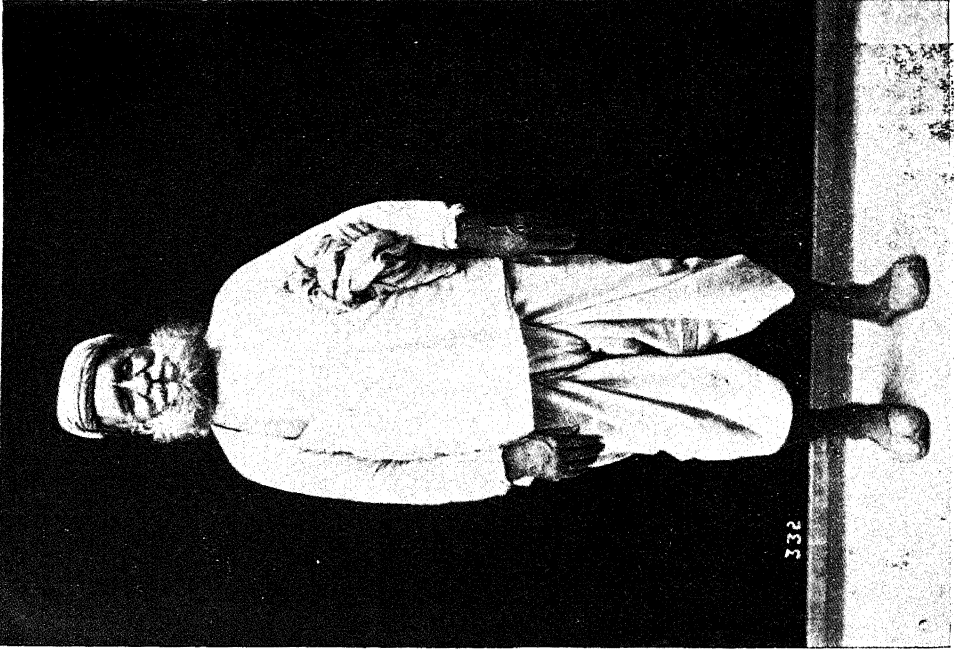
पोरवालों की दूसरी विशेपता यह है कि यह अपनी कन्याओं का बहुत ऊंचा मूल्य लेकर विवाह करातें हैं। यदि इनको लम्वी रकम मिली तो ये साठ वर्ष के बूढे के साथ सोलह वर्ष की युवती का ब्याह कर देते हैं। पोरवाल जाति में पुत्री के जन्म पर तो हर्ष मनाया जाता है और पुत्र के जन्म पर विषाद। पुत्री के जन्म पर ये सूप बजाकर तथा पुत्र-जन्म पर थाली बजाकर नवागंतुक के आगमन की घोषणा करते है। इस बात पर भी एक कहावत इनके सम्बन्ध में प्रचलित है।

वाजी थाली उन रे करम री काली
वाज्यो सूपरी ने हुअी झोंपरो।

अर्थात् जिसके घर थाली बजी वह अभागा है परन्तु जिसके घर सूप बजा उसका घर बन गया। जिस कन्या के विवाह में केवल पांच सौ रुपये तक की आमदनी होती है उसे लोग बकरी का नाम देते हैं, परन्तु जिस कन्या से अधिक धन प्राप्त होता है उसें भेड कहते हैं। यदि पत्नी पूरी जवानी की अवस्था में हो तो उसके पति को कन्या के घर भर की स्त्रियों के लिए कुछ न कुछ भेंट ले जाना पडता है तब वह घर में भीतर जा सकता है अन्यथा नहीं। कुछ पोरवाल ऐसे भी हैं जो व्यवहार के केवल अडतालीस रुपये लेकर कन्याका विवाह कर देते हैं। इन लोगों में अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर अदायगी के वादे पर कर्ज भी लिये जाते हैं।

पोरवाल अन्य हिन्दुओं की भांति मृतक का संस्कार नहीं करते। जसवन्तनगर में जरूर ये लोग कपडे बदल डालते हैं तथा सर के बाल मुंडवा डालते हैं। मुरदे, इनके यहाँ फूंके जाते हैं।

इनकी विवाह की प्रथाएं ओसवालों की विवाह प्रथा के समान है। यह ओसवालों के साथ भोजन भी करते हैं परन्तु उनके साथ इनके विवाह सम्बन्ध नहीं होते। इनके यहां फेरों पर ब्राह्मण बुलाया जाता है।

पोरवाल पगडी अथवा साफा नहीं पहनते। वे केवल एक पोटियर अथवा दुपट्टा बांधते हैं। जो व्यक्ति अपना भरण-पोषण स्वयं नहीं कर पाते वह बडी नीची निगाह से देखे जाते हैं। ऐसे लोग हिंडोला कहलाते हैं और इस नाम से पुकारा जाना पोरवाल ना पसन्द करते हैं।

श्रीमाल

श्रीमाल वैश्य अथवा महाजन अपना विकास श्रीमाली ब्राह्मणों से मानते हैं। उनका आदि निवासस्थान श्रीमालक्षेत्र है जिसका मार्ग मीनमाल होकर है। किन्तु इन्होंने जैन धर्म गुजरात में ग्रहण किया था।

इनकी रीति और प्रथाएं ओसवालों के साथ मिलती-जुलती हैं और इनके विवाह भी ओसवालों में हो जाते हैं।

श्री श्रीमाल

मारवाड में तो ये लोग बहुत कम हैं परन्तु गुजरात में इनकी बस्ती अधिक है। इनके सम्बन्ध में बस इतना ही कहना है कि विवाह के अवसर पर वर वधू के पैरों की उंगलियों में सोने के छल्ले पहनाता है।

अगरवाला

साधारण विचार से तो यह महाजनों अथवा व्यवसायिक जाति की एक उप-शाखा मात्र है, किन्तु यथार्थ में यह भारतवर्ष की एक महान् जाति है। इस जाति का केन्द्र स्थान तो मारवाड है परन्तु यह संम्पूर्ण देश में विखरी पडी है और देश की सम्पत्ति तथा उसके व्यापार–उद्योग का संचालन कर रही है।

अंग्रेजी शासन काल में मारवाड से बाहर निकल कर इन्होंने विदेशी माल देश में मंगाने तथा अंग्रेजों द्वारा संचालित उद्योगों तथा कोठियों में बिकनेवाले माल के दलालों के रूप में अपना व्यवसाय आरम्भ किया था। परन्तु सन १९४७ इस्वी में अंग्रेजों के इस देश के छोडने के समय इन्होंने ही अरबों रुपयों की पूंजी के अंग्रेजी उद्योग और अंग्रेजी कोठियां खरीदकर भारतवर्ष को उनके हाथों सें मुक्त किया।

अगरवाला अथवा अगरवाल शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक कहानियां हैं। कुछ लोगों का मत है कि अगर नाम की सुगंधि लकडी का व्यापार करने के कारण इनका नाम अगरवाला पडा। किन्तु इस कथन का कोई प्रमाण नहीं है। कुछ लोगों का मत है कि एक समय में काश्मीर में एक सहस्र अग्निहोत्री ब्राह्मणों की बस्ती थी उनके घरों में एक सहस्र अग्निहोत्र के कुंड थे जिनमें हवन के लिये वैश्य जाति के व्यक्तियों का एक समूह उन्हें अगर पहुंचाया करता था। जब सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया और अग्निहोत्री ब्राह्मणों के हवन कुंड तोड़-फोड कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये तब उनको अगर काठ पहुंचाने वाले वैश्य समुदाय का व्यापार भी नष्ट हो गया और वह वहां से भाग कर आगरा प्रान्त में जा बसे।

इसी आगरा नगर के नाम पर इन वैश्यों का नाम अगरवाल वैश्य हो गया। एक दूसरी कहानी यह है कि ये लोग पंजाब प्रान्त के हिसार जिले के अगरोहा ग्राम के निवासी हैं। महाराज अग्रसेन ने वैश्य जाति के एक लाख परिवार ले जाकर वहां बसाये थे अत: वह परिवार अगरोहा ग्राम के नाम से ख्याति प्राप्ति कर अग्रवाल कहलाने लगे। परन्तु इन कहानियों का अंत यही नहीं होता महाराज अग्रसेन के नाम के साथ अभी-अभी अनेंक ओर कहानियां बंधी हुई हैं कहावत है कि एक समय प्रतापनगर का राजा (वही प्रतापनगर जो आजकल राजपूताना प्रान्त के अन्तर्गत एक

रियासत है परन्तु कुछ लोगों के मत से दूसरा कोई प्रतापनगर जो कहीं दक्षिण भारत में था उसका राजा धनपाल था।) उस धनपाल के आठ पुत्र थे १ शिव, २ नल, ३ अनल, ४ नन्दा, ५ कुन्दा, ६ कुमुद, ७ वल्लभ, ८ शुक्र तथा एक पुत्री थी जिसका नाम मुक्ता था। उसी जमाने में एक राजा था जो राजा विशाल के नाम से प्रसिद्ध था जिसके आठ कन्याएं थीं १ पद्मावती, २ मालती, ३ कान्ति, ४ सुभद्रा, ५ स्मरा, ६ श्रूआ, ७ वसुन्धरा, ८ रज। ये आठों कन्यायें धनपाल के आठों पुत्रों के साथ व्याह दी गयीं। नल को छोड कर जिसने संन्यास ले लिया था शेष सबके पास अपना अपना राज्य था शिव के वंश में विष्णु राजा हुआ विष्णु राजाके सुदर्शन हुआ सुदर्शन के धुरन्धर हुआ धुरन्धर के समाधि और समाधि के मोहनदास और मोहनदास के नेमनाथ। नेमनाथ ने नैपाल बसाया और अपने नाम के ऊपर उस देश का नाम नैपाल रखा। उसके वृन्दा नामक एक पुत्र हुआ उसने वृन्दावन में एक बहुत बडा यज्ञ किया उस स्थान का नाम पहले वृन्दावन नहीं था यज्ञ करने के पश्चात् उसने अपने नाम के आधार पर यह नाम रखा। उसके पुत्र का नाम राजा गुर्जर था उसने गुजरात पर अधिकार किया। उसका उत्तराधिकारी राजा हरिहर हुआ इसके एक सौ पुत्र हुए। इनमें से रंगजी नाम का पुत्र तो राजा हुआ शेष सब पुत्र चरित्र के अनाचारी होने के कारण शूद्र माने गये। इस रंगजी की पाँचवीं पीढी में महाराज अग्रसेन का जन्म हुआ। उस समय नाग लोक के राजा कुमुद के एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी जिसका नाम माधवी था। इंद्र ने इस कन्या का विवाह करना चाहा था परन्तु उसकें पिता राजा कुमुद ने उसका विवाह अग्रसेन से किया। विवाह के पश्चात् महाराज अग्रसेन ने बनारस और हरिद्वार में अनेक यज्ञ किये और उसके पश्चात् वह राजा महीधर के स्वयंवर में कोल्हापुर गए वहां उन्होंने स्वयंवर जीत कर कोल्हापुर के राजा की कन्या प्राप्त की। वहां से लौटकर वह दिल्ली के निकट आकर बसे तथा आगरा और अगरोहे में अपनी राजधानियां स्थापित कीं। उन्हीं ने हिमालय से गंगा और यमुना तक तथा पश्चिम में मारवाड तक अपना राज्य स्थापित किया। उनके अठारह रानियां थीं जिनके चौवन पुत्र और अठारह पुत्रियां थीं। अपनी आयु के अन्तिम काल में उन्होंने प्रत्येक रानी के साथ तथा एक पृथक आचार्य को लेकर अलग अलग यज्ञ करने का निश्चय किया। इस प्रकार प्रत्येक यज्ञ के आचार्य के नाम पर गोत्रों की स्थापना हुई। जिस समय वह अन्तिम यज्ञ कर रहे थे उस समय कुछ ऐसा विघ्न पडा कि सत्रह गोत्र तो पूरे हुए और अट्ठारहवाँ आधा रह गया जिसके कारण कुल साढे सत्रह गोत्र बने। इन गोत्रों की गणना के सम्बन्ध में अनेक मत है। नीचे वेद शाखा और सूत्र सहित एक सूची दे रहे हैं जो सबसे अधिक प्रभावपूर्ण जान पडती है।

गोत्र	वेद	शाखा	सूत्र
१. गर्ग	यजुर्ववेद	मध्यान्दिना	कात्यायन
२. गौमिला	,,	,,	,,
३. गौतम			
४. मैत्रे			
५. यैमिनी			
६. सेंगल	श्यामवेद	कौस्थमी	गौमिला
७. वासल	,,	,,	,,
८. औरन	यजुर्ववेद	माध्यान्दिना	कात्यायन
९. कौशिल	,,	,,	,,
१०. कश्यप	श्यामवेद	कौस्थमी	गौमिला
११. तान्डेय	यजुर्ववेद	माध्यान्दिना	कात्यायन
१२. मान्डव्य	ऋग्वेद	सांकिल्य	आस्विलायन
१३. वशिष्ठ	यजुर्ववेद	माध्यन्दिना	कात्यायन
१४. मुदगल	ऋग्वेद	सांकिल्य	आस्विलायन
१५. धान्याशा	यजुर्ववेद	माध्यान्दिना	कात्यायन
१६. ढिलाना	,,	,,	,,
धौमा	,,	,,	,,
१७. तैप्रेय			
१७½. नगेन्द्र	श्यामवेद	कौस्थमी	गौमिला

मिस्टर रिजले और मिस्टर शैरिंग दोनों की सूचियों में भिन्नता है। पहले हम मिस्टर रिजले की सूची नीचे दे रहे हैं:

१. गर्ग	७. मंगल	१३. तित्तल
२. गोयल	८. भद्दल	१४. मित्तल
३. गावल	९. पिंगला	१५. टुन्डल
४. वत्सिल	१०. ऐरन	१६. तयाल
५. कासिल	११. तायरन	१७. गोमल
६. सिंघल	१२. थिंगल	१७. ½ गोइन

मिस्टर शेरिंग की दी हुई गोत्रों की सूची निम्न प्रकार है।

१. गर्ग	७. मंगल	१३. थिंगल
२. गोमिला	८. भादल	१४. तित्तल
३. गरवाला	९. तिगल	१५. जित्तल

४. वातसिल्य	१०. इराना	१६. टुन्डल
५. कासिल	११. तयाल	१७. गोयल
६. सिन्हल	१२. तिराना	१७. ½ बिंदल

इन गोत्रों के पश्चात् अगरवालों की जाति में ओसवालों की भांति दो विभाजन हैं एक दस्से कहलाते है दूसरे बिस्से। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार की कही जाती है कि जब राजा अग्रसेन के बेटों के साथ सर्पराज वसुने अपनी कन्याओं का विवाह किया तब प्रत्येक कन्या के साथ एक दासी आई थी और उन दासियों से जो वंश चले वह दस्से और जो वंश रानियों से चले वे बिस्से कहलाये। बीसा अगरवाल शुद्ध अगरवाले होते हैं और दस्सों के साथ खाने पीने या अन्तरविवाह का कोई व्यवहार नहीं करते।

महाजनों की समस्त जातियों में से केवल अगरवाल जाति एक ऐसी जाति है जिसका दिल्ली की गद्दी पर कभी अधिकार रहा है। एक समय जब दिल्ली की गद्दी तंबर राजा के आधीन थी उस समय एक अगरवाला तम्बर राजा के पास नोकर था जब राजा तीर्थयात्रा के लिए जाने लगा तब वह राज्य का प्रबन्ध अपने अगरवाल नोकर को सोंप गया। उस अगरवाल व्यक्ति को दिल्ली की गद्दी पर देख कर जाति के दूसरे लोगों ने आपत्ति की और कहा कि इस विषय में सम्पूर्ण जाति के लोगों का अधिकार समान होना चाहिए अत: जाति में एक निर्वाचन हुआ और राज काज की देखभाल के लिए नौ व्यक्ति निर्वाचित हुए। इसलिए वह नवों व्यक्ति अपनी एक एक टांग गद्दी पर रख कर एक साथ खडे होते थे और काज चलाते थे जिसका परिणाम यह निकला कि चौहानों ने राज्य छीन लिया उपरोक्त कथा निम्मलिखित कहावत में बद्ध है।

अगरवाला सब ठकुराला
मूंग मोंठ में कौन बटाला।

अर्थात् अगरवाले सब ही बडे आदमी होते हैं जैसे अनाज के ढेर में छोटे और बडे दाने का कोई भेद नहीं होता।

अग्रवालों में विवाह के अवसर पर वर के सर पर छाता लगाने की प्रथा जो छत्र कहलाता है इस बात की द्योतक है कि कभी ये लोग छत्रधारी थे।

अगरवालों तथा नागों के सम्बन्ध में मिस्टर रेजली का कथन है कि भारतवर्ष में आर्यों के पूर्व नाग जाति की ही प्रधानता थी। आर्यों के आगमन के पश्चात् भी नाग स्त्रियों की बडी कदर थी। बडे लोग राजा राव और सरदार सदा नाग स्त्रियों के लिए लालायित रहते थे। नाग जाति में स्त्री के नाम से वंश चलने की प्रथा थी। जब राजा अगरनाथ ने प्रतिस्पर्धा में इन्द्र को हराकर दो नाग राजाओं की कन्यायें प्राप्त कर लीं तब लक्ष्मी से वरदान मिला कि इन दो नाग

कन्याओं में से एक के वंश का नाम पुरुष के गोत्र से चले जैसा कि अन्य जातियों की प्रथा है। अत: उस नाग कन्या से जन्म ग्रहण करनेवाली सन्तान तो राजा अगरनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुई परन्तु उस नाग कन्या का नाम अब भी सम्मान के साथ याद रखा गया है इसीलिए अगरवालों का कथन है कि उसकी ननिहाल नागवंशी है। यही कारण है कि अगरवाले सांप को कभी नहीं मारते बल्कि उसकी पूजा करते है। बिहार के अगरवाले अपने घरों के द्वार के दोनों पल्लों पर नाग के चित्र बनाते हैं। देहली के अगरवाले द्वार पर नागों के चित्र तो बनाते ही हैं साथ में फलों और फूलों से उनकी पूजा भी करते हैं।

अगरवालों की विवाह पद्धति अन्य महाजन जातियों के ही समान है। मारवाड में एक विशेषता यह है कि विवाह के समय वधू श्वेत वस्त्र पहनती है और फेरों के समय सात चांदी के दानों की एक हमेल।

अगरवाले विवाह में सम्प्रदाय का विचार नहीं करते एक जैनी अग्रवाल एक वैष्णव अग्रवाल के यहां विवाह कर सकता है। यह विवाह विशेषकर अपने सम्बन्धियों से बाहर निकलकर करते हैं। किंतु उत्पन्न होनेवाला पुत्र सदा अपने पिता के सम्प्रदाय से सम्बन्धित माना जाता है।

अगरवालों में एक उपजाति नारनौल सिंधियों की है वह विशेषत: राज्य की नौकरियां करते है। दूसरी शाखा के लोग फतेहपुरिया कहलाते हैं जो प्रधानत: छावनियों में रहते हैं और सैनिकों से व्यवसाय करते हैं। शेष अगरवाल व्यापार में संलग्न हैं।

माहेश्वरी

ओसवालों के समान माहेश्वरी महाजनों की उत्पत्ति भी राजपूतों से मानी जाती है। इस में चौहान और सुलंखी वंश के राजपूत हैं। माहेश्वरी अथवा माहेशरी शब्द की उत्पत्ति महेश अथवा महादेव से जान पडती है। ये लोग प्रधानत: महादेवजी के ही उपासक भी हैं। कहा जाता है कि आदि काल में ये जयपुर राज्य के डिडवाना स्थान के निवासी हैं। एक और कथा यह है कि जयपुर में खंडेल नाम का स्थान है वहां के राजा सुजात सेन के सन्तान नहीं थी। पंडितों ने उन्हें बताया कि वह वन में जाकर ामुक वृक्ष के नीचे खुदाई करें तो वहां उन्हें महादेवजी की मूर्ति मिलेगी। और उनसे उन्हें पुत्र-प्राप्ति का वरदान मिलेगा। राजा ने ऐसा ही किया। खोदने पर उन्हें एक मूर्ति प्राप्त हुई उन्होंने उसकी प्रार्थना की और पुत्र प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया। समय पर पुत्र का जन्म हुआ परन्तु राजकुमार अभी छोटा ही था कि राजा की मृत्यु हो गई।

एक दिन राजकुमार शिकार खेलने एक वन में गया। १६ ऋषियों की एक मंडली आ गई। उसी स्थान पर एक जलाशय था। राजकुमार और उसके सहचरों ने

उस जलाशय में अपने भस्म धोये इसलिए उस जलाशय का जल रक्तवर्ण हो गया। ऋषियों ने राजकुमार तथा उसके साथियों को राक्षस समझा, अत: उन्होंने अपने चारों ओर लोहे का एक गढ बना लिया जिससे यह लोग उनको कोई हानि न पहुंचा सकें। यह लोहे का किला आज दिन भी वहां खडा है और लोहागढ के नाम से प्रसिद्ध है। किले के बनते ही किले के बाहर मार-मार का शब्द हुआ। यह शब्द सुनकर राजकुमार यह जानने के लिये कि, यह क्या बात है उस स्थान पर गया और ऋषियों ने उसे राक्षस समझ कर श्राप दिया जिसके प्रभाव से राजकुमार तथा उसके बहत्तर साथी उसी स्थान पर पत्थर बन गये। जब रानियों तथा राजकुमार के साथियों की स्त्रियों को यह समाचार मिले तब वे सती होने चलीं। जब चितायें बन गईं और सब स्त्रियां चिता पर चढने को प्रस्तुत हुईं तब शिवजी वहां स्वयं प्रगट हुए और सब स्त्रियों को सती होने से रोक दिया तथा उन सब के पुरुषों को पत्थर से फिर मनुष्य बना दिया किन्तु आदेश दिया की भविष्य में वे सैनिक व्यापार छोड दें, अत: यह लोग व्यापार करने लगे। इसके पश्चात् राजकुमार तो इनका भाट अथवा जागा हो गया और उसके बहत्तर साथियों से माहेश्वरी जाति के बहत्तर गोत्र उत्पन्न हुए। दूसरी कथा यह है कि ऋषि एक यज्ञ करने जा रहे थे जिसे देखने के लिए राजकुमार तथा उस के साथी जबर-दस्ती वहां जा रहे थे। इनकी इस बात से क्रुद्ध हो कर ऋषियों ने इन सब को पत्थर बना दिया। पार्वती को यह बात अच्छी न लगी और उन्होंने महादेवजी से कहा। महादेवजी ने पार्वती की सिफारिश से इनको फिर मनुष्य बना दिया।

राजा के बहत्तर साथियों में से प्रत्येक के नाम पर इनमें बहत्तर गोत्र तथा नौ सौ नवासी उपजातियां और नख हैं। इन सब में अन्तरविवाह प्रचलित है। माहेश्वरी महाजनों के गोत्रों के नाम निम्नांकित हैं:

१. सोनी	२. सोमानी	३. जखैटिया
४. सोधानी	५. हुरकट	६. नयाती
७. हेदा	८. करवा	९. ककानी
१०. मालू	११. सरदा	१२. कहेलिया
१३. गिलरा	१४. जाजू	१५. वैती
१६. विनदादा	१७. विहानी	१८. बजाज
१९. कासत	२०. कचौलिया	२१. कालन्तरी
२२. कलाबी	२३. झूमर	२४. कावरा
२५. दात	२६. डागा	२७. गटानी
२८. राठी	२९. वरला	३०. दारक
३१. तोसनीवाल	३२. अजमेरा	३३. भंडारी
३४. छापरवाल	३५. भादर	३६. भुतरा

३७.	वेग	३८.	अदल	३९.	एनानी
४०.	मुरर्वा	४१.	मंसामी	४२.	लाछा
४३.	मलवानी	४४.	सिकेटी	४५.	लहौटी
४६.	गाडिया	४७.	गगरानी	४८.	खरकट
४९.	लखौटिया	५०.	असाला	५१.	चेचानी
५२.	मुपाधानिया	५३.	मुंदरा	५४.	चौपड़ा
५५.	चन्दक	५६.	बलदवा	५७.	बौलदी
५८.	वूव	५९.	वांगड़	६०.	मंडोवारा
६१.	तोतला	६२.	अगीवाल	६३.	अगसोर
६४.	परतनी	६५.	नानर	६६.	नावल
६७.	पल्लोर	६८.	तपरिया	६९.	मनिहार
७०.	धूत	७१.	धूपर	७२.	मोदानी

माहेश्वरी मांस, मदिरा, लहसन, प्याज, तथा गाजर से परहेज करते हैं।

माहेश्वरी महाजनों में विवाह के अवसर पर वधू के हाथों में हाथी दांत की चूड़ियां आवश्यक होती हैं। पादड़ी एम. ए. शेरिंग का कथन है कि विवाह के अवसर पर वधू का माँमा (कन्या का माँमा) कन्या को गोद में लेकर वर के सात फेरे लगाता है।

माहेश्वरी लोगों में मृत्यु के अवसर पर घर के पुत्र और पौत्रों तक को बाल मुंडाने पड़ते हैं। अगरवालों में केवल पुत्र सर मुंडवाते हैं, पौत्र यदि उनके पिता जीवित हों तो नहीं मुंडवाते।

वीजावर्गी

इन महाजनों का व्यवसाय औषधि तथा गंध बेचना है। यह लोग गंधी भी कहलाते हैं। गंधी शब्द की उत्पत्ति गंध शब्द से हुई है। यह लोग जयपुर के इलाके के रनथम्भोर स्थान से मारवाड़ आये थे। इनमें अनेक वंश हैं। कुछ के नाम परवां, खोटेवां नायकवान और सिदवान इत्यादि हैं। इन सब में अन्तर विवाह होता है। यह लोग प्रधानतः शैवी हैं इनमें विष्णु के उपासक बहुत थोड़े हैं।

इन लोगों में सगाई की प्रथा बस इतनी ही है कि वर पक्ष के लोग कन्या को कुछ आभूषण पहना देते हैं।

वीजावर्गी लोग बड़े चालाक तथा धूर्त समझे जाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है:

वीजावर्गी वानियो दूजो गूजर गौर।
तीजो मिले जो दायमा करे तापरो चोर॥

वीजावर्गी महाजन

सुंगा महाजन

बोहरा

लोहाना
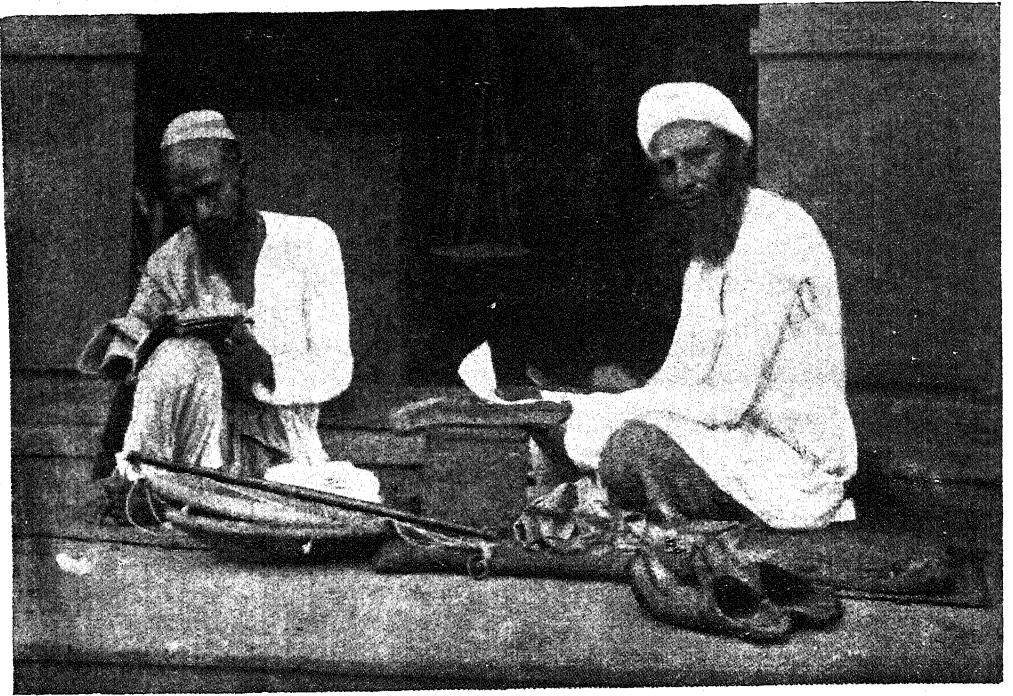
अर्थात् यदि बीजावर्गी बनिया, गूजर गौड़ तथा दायमा आपस में मिल जायँ तो पूरा बंटाधार कर सकते हैं।

सुंगा

महाजनों की साढ़े बारह जातियों में से ही सुंगा भी अपने को एक बतलाते हैं। सुंगा का सामाजिक स्थान अन्य महाजनों की अपेक्षा नीचा गिना जाता है। असल में यह लोग खंडेलवाल महाजन हैं और जयपुर के खंडेला स्थान से यह मारवाड़ आये। शराब बनाना इन लोगों का व्यवसाय है। मलानी में इन लोगों के बड़े-बड़े व्यवसाय हैं। यह सेठ भी कहलाते है। यद्यपि यह लोग शराब बेचते हैं परन्तु कलालों की भांति पीते नहीं हैं। यह लोग सुंगा इसलिए कहलाते हैं कि यह सूंघ कर ही शराब की जाति पहचान लेते हैं। यह शिव के उपासक होते हैं और मांस कभी नहीं खाते।

इनके विवाह में सात फेरे होते हैं। वर कन्या के घर जाता है और तोरन छू कर अपने घर वापस आ जाता है। वहाँ वह नहा धोकर फिर जाता है तब शेष संस्कार सम्पन्न करता है। विधवा विवाह वर्जित है।

सुंगा जाति में साढ़े बाइस वंश हैं। यह परस्पर अन्तरविवाह करते हैं। इनके कुछ वंश निम्नलिखित हैं :

१. दन्तखाल २. नागौरी ३. मोता
४. वदेरा ५. मरतावत ६. सवालखा
७. खतोर ८. काकर

मारवाड़–में आबकारी विभाग स्थापित हो जाने के समय से इनका प्राचीन व्यवसाय इनके हाथों में से चला गया, और अब यह लोग कृषि करने लगे हैं।

वोहरे

ये लोग मुसलमान होते हैं। इनकी बस्ती जोघपुर, पाली, जसवन्तपुरा और वदगांव में है। यह प्रधानतः फुटकर वस्तुओं का व्यापार करते हैं। इनकी संख्या मारवाड में बहुत थोड़ी है।

मारवाड के वोहरे अपनी उत्पत्ति अहमद और अबदुल्ला नाम के दो अरबियों से बताते है। उनका कथन है कि चौदह सौ वर्ष पूर्व यह लोग इसलाम के प्रचार के लिए भारतवर्ष आये थे परन्तु मिस्टर इवटसन की सम्मति भिन्न है। उनके मतानुसार वोहरा शब्द की उत्पत्ति व्योहार शब्द से हुई है। व्योहार का अर्थ व्यापार है। राजपूताना

तथा गुजरात में शिया व्यापारियों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है यह सात सौ वर्ष पूर्व मुसलमान बनाये गये थे।

मारवाड निवासी वोहरे सोदपुर; गुजरात से आये और अपनी भाषा की विशेषता के कारण जिसमें गुजराती का समावेश है तथा अपने वेश के कारण वह बडी आसानी से पहचाने जाते हैं। बम्बई निवासियों की भांति वह अपने बही खाते गुजराती भाषा में रखते हैं तथा प्रत्येक नाम के साथ जी अथवा भाई का आदर सूचक शब्द जोडते हैं।

वोहरे न तो सुन्नियों के साथ नमाज पढते हैं और न तीर्थ करने मक्का जाते हैं। वह कर्वला को अपना तीर्थ स्थान मानते हैं, क्योंकि इमाम हुसेन की वहां कबर बनी है। भारतवर्ष में भी इनके तीर्थस्थान अहमदाबाद, उज्जैन और गुलियाकोट में भी स्थित हैं जिनमें अन्तिम तीर्थ अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

सर जान मकूम ने वोहरों का विवरण निम्न अनुसार दिया है जिसे यहाँ लिख देना अनुचित न होगा।

मुसलमानों की व्यापारी जाति बोहरा मध्य प्रदेश के समस्त बड़े नगरों में बिखरी हुई हैं। यह लोग भांति-भांति के व्यापार करते हैं। थोक व्यापार से लेकर फेरीवालों तक का काम यह करते हैं। कभी-कभी एक ही व्यक्ति थोक और फुटकर दोनों प्रकार के व्यापार चलाता है। गुजरात के समुद्री किनारे से आये हुए बोहरे योरोपियन उपनिवेषों की सभ्यता अपने साथ लाये। उन्होंने जो मकान निर्माण कराये तथा फरनीचर लगाये उसमें योरोपीय छाप स्पष्ट झलकती है। विदेशी व्यापार के; देश में प्रचार के यह प्रधान साधन रहे हैं। यह जहां बसते हैं वहां अपनी एक अलग बस्ती बसा लेते हैं। यह लोग अपने मुल्लाओं तथा इसलाम के प्राचीन नियमों के बड़े भक्त होते हैं। यह लोग आपस में बड़े मेल से रहते हैं इसके कारण व्यापार में आनेवाली अनेक अड़चनों से जिससे अन्य व्यापारी नहीं बचते यह बच जाते हैं।

फेरीवाले

इस शीर्षक में उन लोगों का जिक्र है जो चल फिर कर व्यापार करते हैं। उदाहरण के लिए बिसाती तथा अन्य फेरीवाले जो मनुष्य जीवन की जरूरत की छोटी-छोटी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बेचते हैं। जान पड़ता है कि बिसाती शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द बिसात से हुई है जिसका अर्थ है कालीन और यह शब्द उनके लिए प्रयुक्त होता है जो अपने सामान की दुकान लगाकर एक स्थान पर नहीं बैठते। यह लोग या तो अपना माल सड़क की पटरियों पर जहां-तहां एक चटाई बिछाकर प्रदर्शित करते हैं अथवा सर पर लादकर घूमते हैं। किन्तु

सर हैनरी ईलियट इस विचार से सहमत नहीं हैं उनके मतानुसार विसाती शब्द की उत्पत्ति हिन्दी शब्द बिसात से हुई है जिसका अर्थ पूंजी है।

मारवाड़ में विसातियों को व्यापारी भी कहते हैं और जो माल वह वेचते हैं उसे मनिहारी कहते हैं। यह लोग साधारणतया धर्म के मुसलमान, जाति के सैयद, और सम्प्रदाय के सुन्नी होते हैं। शोरा और साबुन का बनाना तथा खरादी और चूड़ीगर का काम भी यही लोग करते हैं। यह लोग देहली से नागौड आये थे। इनकी उपजातियों में केवल बुखारी, ससारी, बेलिन, मौलाना और शेख कुरेशी मारवाड़ में बसे हैं। इन लोगों में सगाई के अवसर पर भावी वर की अंगूठी भावी वधू की उंगली में पहनायी जाती है। और थोड़ी चीनी और थोड़े नारियल दे दिये जाते हैं। विवाह की रस्मों का वही प्रचलन है जो अन्य मुसलमानों में है। डिडवाना के बिसातियों को छोड़कर शेष सब में विधवा विवाह प्रचलित है। यद्यपि स्त्रियाँ रहती परदे में हैं। नि:सन्तान गोद ले सकता है, किन्तु लड़कियाँ सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं होतीं।

वल्दिया

वलद बैल को कहते हैं। वल्दिया उस जाति का नाम है जो बैलों पर माल लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाकर बेचते हैं। यह लोग बंजारे भी कहलाते हैं। इनका कोई स्थायी घर नहीं होता। यह निरन्तर चलते-फिरते अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनके गुट्ट होते हैं और गुट्ट के लोग एक साथ रहते हैं, प्रत्येक गुट्ट का एक नायक होता है जो पूरे गुट्ट का मुखिया माना जाता है। पूरे दल अथवा गुट्ट का लदे हुए बैंलों के एक साथ जानेवाला दल ठोंडा कहलाता है। उसका प्रधान शस्त्र कटाल कहलाता है वह एक छड़ी के समान होता है जिसे वह पैरों में मारा करते हैं। जो उनके पशु चराने में बाधा डालता है अथवा उनसे झगड़ा करता है उससे मारपीट कर बैठते है।

रेलवे के निर्माण के पूर्व यह लोग देश के व्यापार के लिये बड़े उपयोगी थे। यह अरबी काफिलों कीं भाँति दल बनाकर चलते थे और शिविर बनाकर ठहरते थे। यह प्रधानत: नमक, चावल, हल्दी इत्यादि का व्यवसाय किया करते थे।

मिस्टर हैनरी इलियट के मतानुसार यह लोग व्यापारिक ईमानदारी के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध थे और इनकी वहुत बड़ी व्यापारिक साख थी। यह किसी स्थानीय व्यापारी से रुपया कर्ज लेकर माल खरीद लेते थे और जहाँ माल बेचते थे उस पर हुंडी देकर वह कर्ज चुका देते थे।

वल्दिया जाति में अनेक जातियां सम्मिलित हैं। मारवाड़ में जितनी जौतियां बसी हैं उनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

१. राजपूत (गौड, राठौर, दायया) और ब्रह्मभाट
२. बगौरा भाट
३. मारू भाट
४. कछेला चारन
५. मारू चारन
६. जाट
७. लोहाना
८. गवारिया तथा गूजर गवार
९. मुलतानी मुसलमान

यह अपनी जाति के–भीतर बिना भेद-भाव अन्तरविवाह करते हैं। माँस और मदिरा दोनों खाते-पीते हैं तथा मुरदे जलाते हैं।

वल्दियों में पंचायत का पूर्ण प्रभाव है। यह लोग अदालतों में जाकर मुकदमाबाजी नहीं करते। इन में, इन के पंच घेरा बनाकर बैठ जाते हैं। वादी और प्रतिवादी इनके सामने आकर अपनी छड़ी पृथ्वी पर डाल देते है जिसका अर्थ होता है पंचों के फैसले के प्रति सम्पूर्ण आधीनता।

जो व्यक्ति पंचों की आज्ञा नहीं मानता उसे जाति निकाले का दण्ड दिया जाता है।

लोहाना

वल्दियों की भांति ही वाखरदारी का व्यवसाय करने वाली एक और भी जाति मारवाड के पंचभद्रा, मल्लानी तथा संचोरा जिलों में बसी है। इस जाति के लोग ऊंट पालते हैं और उन्हें किराये पर चलाते हैं। बोझ ढोते तथा उन पर बाजे लादकर उन्हें बजाने के लिए लोग इनसे ऊंट किराया पर लिया करते थे। रेलवे से इनका व्यवसाय भी नष्ट हो गया है और अब यह लोग कृषि तथा दुकानदारी करने लगे हैं। इस जाति में भाटी, मजीरा तथा कटका वंश के लोग सम्मिलित हैं।

मारवाड के लौहाना, खत्रियों की प्रथाओं पर चलते हैं और उन्हीं के यहां उनके विवाह भी होते हैं। यह मांस और मदिरा दोनों का व्यवहार करते हैं किन्तु मछली नहीं खाते।

यह प्रधान रूप से तो वैष्णव हैं और शव जलाते हैं, किन्तु इन में के जो लोग विलारा जई की माता के उपासक हो गये हैं वह अपने शव गाडने लगे हैं।

इन लोगों में विधवा विवाह प्रचलित है, किन्तु यदि कोई किसी ऐसे व्यक्ति के साथ नाता जोड ले जिसे पंचों ने मना किया हो तो उस पर एक रकम जुर्माना की

सुनार

नाई
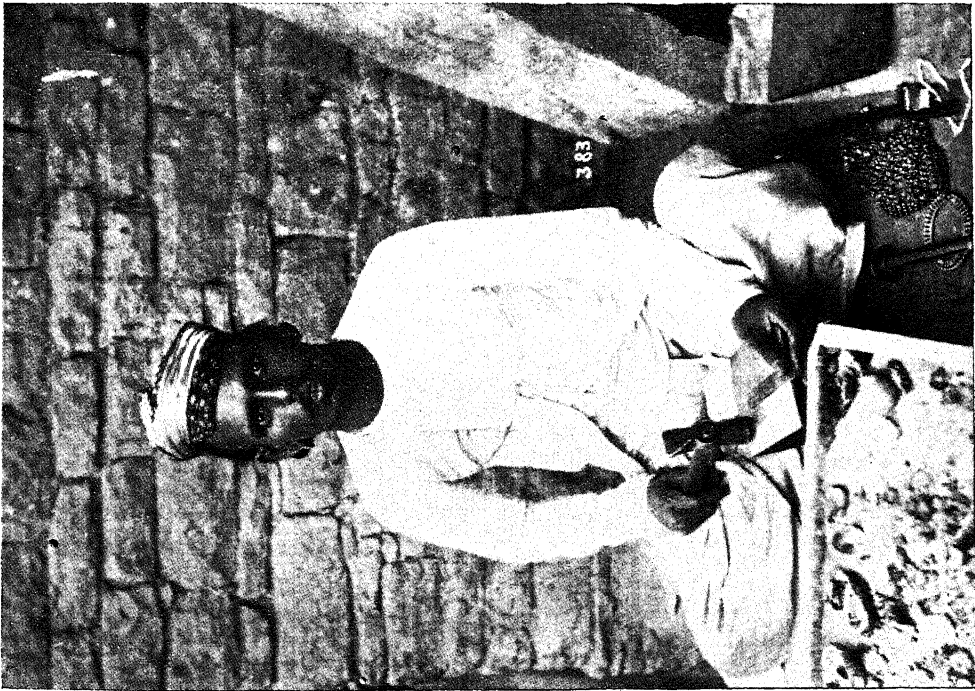
लोहार

खरादी

जाती है। और वह रकम वालोतरा, जेसोल, डीमा और अहमदाबाद की स्थायी पंचायतों में बांट दी जाती है। प्रत्येक स्थान में यह रकम पंचायती कोष में जमा रहती है।

लोहाना जाति के लोग पुष्ट शरीर और वीर हृदय होते हैं। कहा जाता है कि इनके एक बडे दल नें काबुल की चढाई में अंग्रेजी सेनाओं का साथ दिया था।

कारीगर तथा सेवा व्यवसायी

सोना चांदी के कारीगर सोनी अथवा सुनार कहलाते हैं। मारवाड में बसे सुनारों का प्राचीन निवास-स्थान मनमाल है। सुनारों में दो उपजातियां हैं। पहले मेर सुनार कहलाते हैं। दूसरे बामनिया, इन दोनों के बीच खानपान और अन्तर्विवाह प्रचलित नहीं है।

मेर सुनारों का कथन है कि उनकी कुलदेवी बागेश्वरी ने अपने शरीर के मैल से कनकासुर नाम के राक्षस का निधन करने के लिए उनके पूर्वजों को जन्म दिया था। यह लोग शक्ति धर्मावलम्बी हैं किन्तु इनमें के अनेक व्यक्ति आईजी के भक्त हैं तथा अपने शव गाडते हैं। बामनिया सुनार राजपूत और ब्राह्मण से उत्पन्न हैं यथार्थ में यह लोग पहले ब्राह्मण अथवा क्षत्री थे और सुनारी का व्यवसाय करने के कारण सुनार कहलाने लगे। यह लोग विष्णु के उपासक होते हैं।

सुनारों में अनेक लोग यज्ञोपवीत पहनते हैं। रेवरेन्ट शेयरिंग के मतानुसार इन लोगों का विकास वैश्यों से हुआ है। पूर्वकाल में इनका अन्तर्विवाह ओसवाल महाजनों में होता था और उनकी-सी-रीति रिवाजें भी इनमें प्रचलित हैं। पूर्वकाल में विवाह के अवसर पर इनको घोडे पर चढकर तोरन तोडने से ओसवाल इनको रोका करते थे जिसके कारण बहुधा मुकदमेवाजी भी हुआ करती थी किन्तु अब यह बात नहीं है। उनकी अपनी एक अलग भाषा है जिसको दूसरे नहीं समझ पाते। यह लोग मांस और मदिरा का व्यवहार नहीं करते। इनके यहां विधवा विवाह प्रचलित है। मूढ विश्वासी लोग सुनार के मार्ग में मिल जाने को अपशकुन मानते हैं। मारवाड में कहावत भी है :

आटा भाटा घी घडा खुले केसां नार
दावे भला न जीवणा मै बीचरक सुनार।

अर्थात् आटा, पत्थर, घी का घडा और खुले केश की स्त्री तथा भेंडिया मार्ग मे दाहिने मिल जाय तो वह अपशकुन है।

सुनारों में अनेक वँश हैं। मेर सुनारों के वंशों की तालिका नीचे दी जाती है :
१ सोलीवाल, २ तुंगर, ३ करेल, ४ अगरूइया, ५ जंगलवा, ६ दनवार ७ घूपर, ८ मशेन, ९ लुद्र, १० सुरिया, ११ जौडा, १२ देवल, १३ रोडा

बामनियां सुनारों की वंश तालिका निम्नलिखित है :

१ काला, २ बदमेंरा, ३ जसमतिया, ४ बूचा, ५ चितोरा, ६ मथुरिया, ७ हिराव, ८ खतोर, ९ महेवा, १० जलौरा, ११ मंडोरा, १२ लडनवाले, १३ कट्टा

नाई

मारवाड में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मो के नाई हैं। हिन्दू नाई अधिक हैं और मुसलमान कम। मुसलमान नाई हज्जाम अथवा खलीफा भी कहलाते हैं। सर हेनरी ईलियट ने लिखा है कि दढियल मुसलमानों की अपेक्षा दाढी सफाचट्ट हिन्दुओं में नाई की प्रधानता है। नाई का काम केवल हजामत बनाने तक ही सीमित नहीं है वरन् समाज में ब्राह्मणों के पश्चात् नाई की ही प्रधानता है। मूढमत व्यक्तियों में नाई का दिखाई देना शकुन माना जाता है। मारवाडमें काहावत है :

नाई रनामों आवतो दर्पण लीयां हाथ।
शकुन विचारों पंथिया सम्पत आवे साथ।

अर्थात् कदाचित् मार्ग में नाई हाथ में दर्पण लिए मिल जाए, तो ऐ यात्री तू यह शकुन मान कि सम्पत्ति तेरे साथ जाएगी।

पादडी एम. ए. शेयरिंग के लेख में से नीचे लिखा अंश हम उद्धृत करते है जिसमें उनके कर्तव्य का वर्णन अधिक विस्तारपूर्वक है :

विवाह इत्यादि के अवसरों पर निमन्त्रण बांटना और आमन्त्रित लोगों के एकत्रित हो जाने पर उनके हाथ धुलाना तथा भोजन कर चुकने के पश्चात् जूठन बटोरना नाई का काम है। कभी-कभी कन्या के लिए वर की खोज करना नाई द्वारा होता है। मृतक संस्कार के समय नाई सिर मूड़ता है तथा शव के साथ जाने के लिए लोगों को बुलावा देता है।

मारवाड में नाइयों में तीन विभाजन है :

१. मारू २. बैद. ३. पुरबिया। यद्यपि सबका व्यवसाय हजामत बनाना ही है, किन्तु इनमें अन्तरविवाह नहीं होता। प्रत्येक नाई समाज में अनेक वंश हैं और उन वंशों के नाम उन राजपूत वंशों के नाम पर आधारित हैं जिनसे यह अपना विकास बतलाते हैं। नाई जाति में मारू नाई कहलानेवाली जाति प्रधानरूप से मारवाड निवासी है। यह अपने को सब नाईयों से श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरे नाईयों की भांति जूठे बर्तन नहीं छूते। बैद नाई जर्राही भी करते हैं तथा उनकी स्त्रियां प्रसव के अवसर पर धात्री का कार्य करती हैं।

पुरबिया नाई उत्तर भारत से राजस्थान गए थे और वहाँ उन्होंनें अपने मारवाड़ी बन्धुओं के रीति और रिवाजों को सीख कर उन्हीं में सम्मिलित हो गए।

नाई अपनी जाति के साधु सेन भगत की आराधना करते हैं। वह मांस खाते हैं और मदिरा पीते है। वह परस्पर एक दूसरे को ठाकुर शब्द से सम्बोधित करते हैं कहावत है कि : नाई की बारात में ठाकुर ही ठाकुर होते हैं। वह खवास भी कहलाते हैं और मालिश करना उनका पेशा होता है। नायिन शब्द से वह बुरा मानते हैं।

समाज की सेवा का इतना महत्त्वपूर्ण काम करने पर भी नाई जाति की गणना नीच जातियां में की जाति है। कहावत है :

नाई दाई बैद कसाई
इनका सूतक कभी न जाई

अर्थात् नाई, दाई, बैद और कसाई सदा गंदे रहते हैं यही कारण है कि ब्राह्मण तथा बनिए नाई के हाथ का पानी कभी नहीं पीते।

नाई जाति के लोग बडे चालाक माने जाते हैं। मारवाड में कहावत है: नाई बात गंवाई अर्थात् वह विश्वास योग्य नहीं होते। विशेषकर वह लोग जो वर-कन्या में बिचवानी का काम करते हैं। एक और भी कहावत है :

नर में नाई पखेरू में काग
पानी में का मेढका
तीनों दगाबाज।

अर्थात् मनुष्यों में नाई और पक्षियों में कौवा तथा जलचरों में मेढक यह तीनों दगावाज होते हैं।

मारवाड में सिवाना के किले में नाइयों को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने मोटा राजा उदयसिंह के साथ उसके भतीजे कल्लाराय से किला छीन लेने का षड्यंत्र रचा था।

लोहार

लोहार उस जाति का नाम है जो लोहे का व्यवसाय करती है। लोहे के निर्माण और लोहे की सब प्रकार की कारीगरी इन्हीं के व्यवसाय के अन्तर्गत हैं। राजस्थान में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्म के लोग हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर हेनरी इलियट का कथन है कि इनका जन्म कुरमी जाति के एक पुरुष तथा एक अज्ञात दुष्चरित्रा स्त्री से हुआ था परन्तु पादडी एम. ए. शेरिंग के मतानुसार इन का जन्म विश्वकर्मा नाम के एक ऋषि से हुआ। राजस्थान के लोहारों का विकास अनेक

राजपूत जातियों से हुआ है जो व्यवसाय के कारण अपने समुदाय से अलग हो गये। लोहारों की दो उपजातियाँ हैं एक का नाम है गडिया और दूसरी का नाम मालविया।

गडिया लोहार वह लोग हैं जिनका कोई स्थिर घर नहीं है और वे सर्वदा अपना सामान तथा गृहस्थी गाड़ियों पर लादे हुए एक गांव से–दूसरे गांव चलते रहते हैं। ये चित्तौड़ को अपना पूर्व निवास-स्थान बतलाते हैं और कहते हैं कि मुसलमान आक्रमणकारियों के समय से उन लोगों ने इस प्रकार का जीवन स्वीकार किया है। गडिया लोहार बारीक काम नहीं करते और सदा गाड़ी अपने साथ रखते हैं। जिसके कारण वह गडिया कहलाते हैं। कदाचित् ये लोग अल्प-काल के लिए कहीं ठहर भी जाते हैं तो उसी गाड़ी पर खाट उल्टी करके बिछा लेते हैं। ये वैष्णव धर्मावलम्बी होते हैं। इनमें के कुछ लोग रामदेवजी के भी उपासक हैं तथा मांस और मदिरा का व्यवहार करते हैं। इन लोगों में नाता प्रचलित है और मालविया लोहारों में यह विवाह नहीं करते। राजस्थान के वे लोग जो अपने परिवार को सदा अपने साथ बांधे रहते हैं उपहास में गडिया लोहार कहे जाते हैं।

मालविया लोहारों का कथन है कि ये लोग मालवा से राजस्थान को आए। ये लोग गडिया लोहारों से पृथक रहते हैं तथा उनके साथ कोई पारिवारिक सम्बन्ध नहीं करते। ये बढ़ई का काम भी करते हैं और बहुत अच्छे कारीगर होते हैं। ये शक्ति के उपासक हैं, किन्तु इनमें के अनेक लोग आईजी को भी मानते हैं।

लोहार जाति के लोग नीच और अछूतों में गिने जाते हैं सम्भवतः इसलिए कि वे लोग काली वस्तु का व्यवसाय करते हैं और काला रंग अपशकुन का द्योतक होता है अथवा इसलिये कि वह गाय के चमड़े की वनी धौंकनी व्यवहार में लाते हैं जिसे लोग अपवित्र मानते हैं। पुराणों में लोहारों की जाति अछूतों में वर्णित है।

मुसलमान लोहारों में अनेक वंश राजपूतों से निकले हुए हैं और सुन्नी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। देखने में सब प्रकार से यह लोग हिन्दू जान पडते हैं विशेषतः इनकी स्त्रियां जिनकी वेशभूषा और भाषा सब हिन्दुआना है।

हिन्दुओं की भांति ही इनकी दो उपजातियां हैं मुलतानी तथा नागौरी। इन में अन्तर्विवाह प्रचलित है तथा नाते की प्रथा का भी रिवाज है। इन में अनेक वंश हैं और उनके नाम प्रधानतः राजपूती नाम हैं।

मुलतानी लोहार मुलतान से राजस्थान आये माने जाते हैं। तथा जोधपुर, नागौर, पाली और कुचावन में इनकी गणना अच्छे कारीगरों में की जाती है। यह महीन से महीन तथा सुगढ से सुगढ काम बना लेते है।

लखेरा
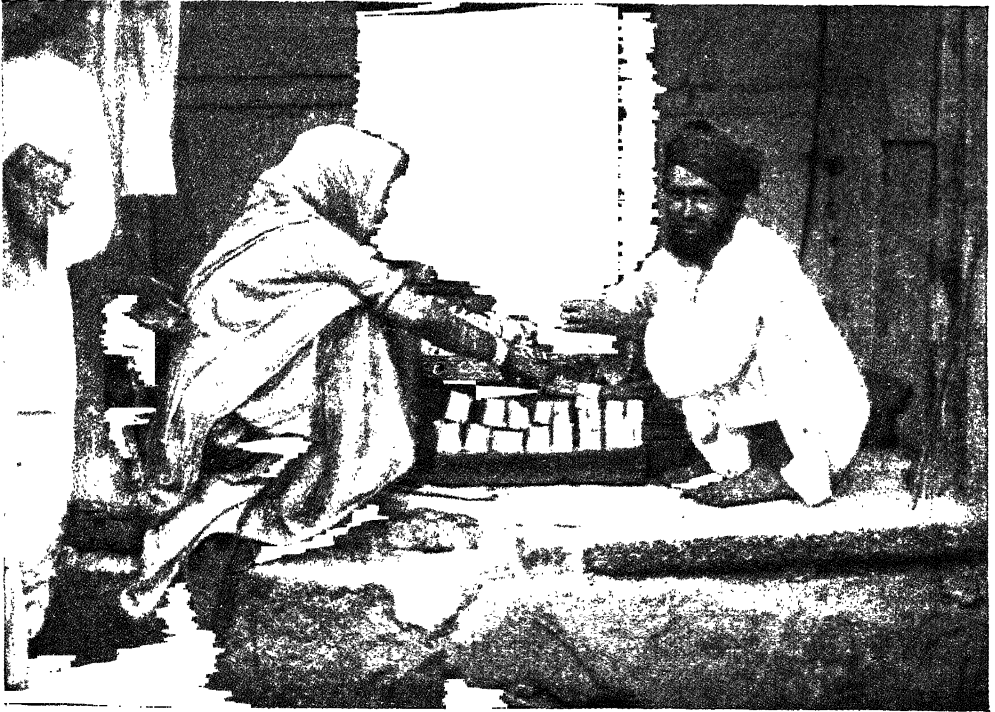
चूरीगर

खाती

कसेरा

नागौरी लोहारों में जिदराना नाम की उपजाति की घरों की स्त्रियां कभी अपने हाथ में चूडा नहीं पहनतीं, जब तक कि वह उन्हें राज्य से प्राप्त न हुआ हो।

खरादी

खराद उस यंत्र का नाम है जो गोल घूमती है। उस यंत्र पर चढा कर वह चीजें बनाई और साफ की जाती हैं जो गोल घुमाव से बन सकती हैं। इस यंत्र द्वारा काम करनेवाले खरादी कहलाते हैं। यह लोग बढईगीरी भी करते हैं। यह प्रधानत: लकडी के खिलौने बनाने में दक्ष होते हैं। जोधपुर, नागौर तथा वागडी में इस कला के अच्छे जानकार बसते हैं।

खरादी प्रधान रूप में मुसलमान हैं और सुन्नी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं तथा उनके वंश शेख और सैयद हैं। इन लोगों में ऐसे लोगों की संख्या है जो पहले राजपूत थे फिर मुसलमान हो गये। यह उर्दू तथा मारवाडी मिश्रित भाषा बोलते हैं और देशी मुसलमानों की रीतियों और रिवाजों पर चलते हैं। यह लोग शराब नहीं पीते तथा शूकर का मांस भी नहीं खाते। इनकी स्त्रियाँ परदे का अनुसरण करती हैं किन्तु इन में नाता प्रचलित है। खरादियों की स्त्रियाँ या तो अपने पतियों के साथ काम करती हैं अथवा उनकी बनाई चीजों पर रंग चढाती हैं।

लखेरा

चूडियां बनानेवाले तथा लाख का व्यापार करनेवाले लखेरे कहलाते हैं। लखेरों में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के लोग हैं। हिन्दू लखेरों की दो उपजाातियां हैं १. हथरिया २. राजकुली। हथरिया अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक पौराणिक कहानी सुनाते हैं। उनका कथन है कि एक बार पार्वती ने अनेक प्रकार के अलंकारों से अपना शृंगार किया, किन्तु जब अपने हाथों पर ध्यान दिया तो वह नंगे थे इससे पार्वती का मन क्षुब्ध हुआ। महादेव ने तुरन्त एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने पार्वतीजी के लिए लाख की चूडियां बना दी। इनका नाम हथरिया इसीलिए है कि यह लोग हाथों के लिए अलंकार बनाते हैं।

कुछ लोगों का कथन है कि इनका नाम हथरिया इसलिए है कि महादेवजी ने इनको अपने हाथों से बनाया है। हथरियों का कथन है कि उनका रक्त अभी तक अमिश्रित है। इनकी दोनों उपजातियों में अन्तर्विवाह प्रचलित है और खान-पान में भी यह सब कुछ खाते पीते हैं। इनकी स्त्रियाँ इनके साथ काम करती हैं और बड़े घरों में जब चूड़ियों की मांग होती है तो चूड़ी पहनाने जाती हैं। जहाँ वह चूड़ियों के मूल्य के अतिरिक्त थोड़ा-बहुत धान्य अथवा इनाम स्वरूप कुछ पा जाती हैं। लखेरों की स्त्रियाँ लाख के अतिरिक्त कांच अथवा हाथी दांत की

चूड़ियाँ कभी नहीं पहनतीं। अन्य हिन्दू स्त्रियों की भांति वह अपनी नाक नहीं छिदवातीं। कहावत है कि पार्वती को चूड़ियाँ पहनाते समय इनको इनाम में मोती मिले थे वह मोती इन्होंने महाजनों के हाथों में बेच दिये थे। जब पार्वती ने यह समाचार सुना तब उन्होंने शाप दे दिया कि मोती महाजनों के हाथों में पहुँच जाने के कारण भविष्य में महाजन इस वरदान का उपयोग करेंगे और लखेरों की सन्तान निर्धन रहेगी।

मुसलमान लखेरे सुन्नी समुदाय से सम्बधित हैं और हिन्दू लखेरों की भांति ही चूरियों का व्यवसाय करते हैं। यह लोग पूर्व काल में राजपूत थे जिन्होंनें मुसलमानी जमाने में अपना धर्म परिवर्तन किया था। लखेरे केवल लाख का काम करते हैं। कांच का व्यवसाय करनेवाले शीरागर, कचेरा अथवा मनिहार कहलाते है। लखेरों और मनिहारों के बीच अन्तर्विवाह प्रचलित है। इनमें नाता भी प्रचलित है।

चूड़ीगर

हाथीदांत के चूडे बनानेवाले कारीगर चूड़ीगर कहलाते हैं। लखेरों अथवा मनिहारों के साथ उनका कोई व्यवहार नहीं है। यह लोग सुन्नी मुसलमान हैं और उनका वंश सैयद है, किन्तु यह अपने इस व्यवसाय के कारण चूडीगर कहलाते हैं। इनकी रीति-रिवाजें मारवाड के देशी मुसलमानों के समान हैं। और उनकी कुछ प्रथाएँ खरादियों से मिलती हैं। इनमें नाता अथवा करेवा का चलन नहीं है।

चूडीगर हाथीदांत का काम बनाने की कला में अत्यन्त निपुण हैं। पंखी की डंडियां तथा काजल रखने की डिब्बियां मारवाड की अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यह नारियल की भी वस्तुएँ तैयार करते हैं, किन्तु बाघबारी बनाने में इन्होंने दिल्ली के महान कलाकारों को भी एक बार मात दी थी।

हाथीदांत के चूडों का रिवाज मारवाड में बहुत है। रेवरेन्ट एम. ए. शेयरिंग का कथन है कि मारवाड में वर्ष में एक ऐसा अवसर होता है जब हिन्दू स्त्रियां हाथीदांत के चूडों से अपने हाथ सजाती हैं। कलाई में पहना जानेवाला चूडा मुठिया कहलाता है और बांह में पहना जानेवाला चूडा कहलाता है।

खाती

मारवाड में बढई को खाती कहते हैं। ऐसा जान पडता है कि खाती शब्द की उत्पत्ति काठ शब्द से हुई है। काठ का अर्थ लकडी है और खाती लकडी का सामान बनाने का व्यवसाय करते हैं। खाती वही व्यक्ति है जो उत्तर पश्चिम प्रदेश में बढई कहलाता है और पंजाब में तरखान। गौडवार जिले में यह सुतार कहा जाता है और जालौर जिले में इनका नाम विनायक है।

खाती अपनी उत्पत्ति विश्वकर्मा से मानते हैं और उसकी शपथ का बडा सम्मान करते हैं। दक्षिण प्रान्त के एलोरगढ को वह अपना प्राचीन निवास-स्थान बतलाते हैं।

राजस्थान के खाती, राजपूतों की अनेक शाखाओं से निकले हुए व्यक्तियों की एक मिश्रित जाति है। इनमें एक सौ वीस गोत्र हैं और प्रत्येक वंश प्रत्येक गोत्र उस वंश के चलानेवाले मुखिया के नाम से प्रसिद्ध है। इन गोत्रों में से अनेक गोत्र ऐसे भी हैं जो उन गांवों के नाम पर आश्रित हैं जहां इनका प्राचीन निवासस्थान था। उनके अधिकांश व्यक्ति जखरा वंश से सम्बन्धित हैं। इनकी कुलदेवी सावित्री हैं। इनमें मेवारा, पुरबिया, ढल्ला इत्यादि नाम के और भी अनेक वंश पाए जाते हैं किन्तु वंशों के विचार से इनमें कोई भेद भाव नहीं है। ये लोग आपस में अन्तर्विवाह करते हैं तथा इनमें विधवा विवाह भी प्रचलित है।

इन खातियों में वह लोग जो जनेऊ पहनते हैं और मांस तथा मदिरा से दूर रहते हैं वह बामनिया खाती कहलाते हैं और शेष सब खातियों से अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। इन में के कुछ लोग लोहे के कारीगर भी हैं और खाती लोहार कहे जाते हैं।

यह समाज के लिए बड़े उपयोगी हैं। इनमें के कुछ लोग अच्छे कलाकार भी हैं किन्तु, प्रधानतः यह लोग ग्रामखाती बने रहते हैं। राजस्थान में इनको दो फुट छः इंच से लम्बी आरी बिना दरबार की विशेष आज्ञा से काम में लाने का अधिकार नहीं है।

राजस्थान के खाती हिजड़ों से बहुत मेल रखते हैं। हिजड़े जब ग्रामों में जाते हैं तब वह प्रधानतः खातियों के घरों पर ही ठहरते हैं। कहा जाता है कि एक समय भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय हिजड़ों ने हिमालय में जाकर अपने प्राण दे देने का निश्चय किया था। तब खातियों ने ही इनकी सहायता की थी। खातियों ने इनके लिए 'लाग' नियुक्त कर दी थी जो अब भी इन्हें जन्म और विवाह के अवसरों पर मिलती जाती है।

कसेरा

कसेरा जाति के लोग तांबा, पीतल और कांसा इत्यादि के कारीगर तथा व्यवसायी होते हैं। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के अनुयायी हैं।

कसेरे अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बताते हैं। सर हैनरी इलियट कसेरों को कसभरा कहते हैं तथा वह कसभरा का अर्थ लगाते हैं कस कांसा और भरा मरने वाला। वह इन्हें सुनारों की एक उपजाति मानते हैं। राजस्थान में यह लोग बामनियाँ सुनारों की प्रथाओं पर चलते हैं।

ठीक-ठीक कसेरा तो वही हैं, जो कांसे का काम करते हैं। पीतल का काम करनेवाले ठठरे कहलाते हैं तथा जो ढलाई का काम करते हैं वह भरावा कहलाते हैं। राजस्थान में इनकी अलग अलग जातियाँ नहीं हैं। यह सब एक ही श्रेणी में माने जाते हैं तथा आपस में अन्तर्विवाह करते हैं। पंजाब तथा बनारस में इनकी जातियाँ अलग-अलग हैं और चलन भी अलग-अलग हैं तथा खान-पान और विवाह इत्यादि भी अलग है। मिस्टर इबटसन के मतानुसार ठठेरा ताम्बा पीतल के बेचनेवालों का नाम है तथा कसेरा उनके बनानेवालों का। पादरी शेरिंग के मतानुसार ठठेरे और कसेरे पृथक् जातियाँ हैं। यद्यपि इनका व्यवसाय एक समान है।

कसेरे शक्ति के उपासक हैं। और जनेऊ पहनते हैं प्रधानतः विवाह के अवसरों पर अपने यहाँ भोज के अवसर पर यह लोग ब्राह्मणों को दक्षिणा देते हैं। गोद लेने के अवसर पर इनके यहाँ पगड़ी बंधन संस्कार होता है। निकट सम्बन्धी की सन्तान गोद लिए जाने पर इस संस्कार में केवल एक पगड़ी की जरूरत पड़ती है। जो गोद देनेवाले पिता की ओर से आती है, किन्तु दूर के सम्बन्धी के गोद लिए जाने पर सारी बिरादरी से पगड़ियाँ आती हैं।

पादड़ी शेरिंग के मत से इनकी जाति वैश्य जाति से अच्छी है, परन्तु राजस्थान में यह बात नहीं है। । वह दूसरी कारीगर जाति के बराबर ही माने जाते हैं। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है।

दर्जी

मिस्टर इबटसन का मत है कि वर्ण व्यवस्था के अनुसार दर्जी नाम की कोई जाति नहीं होती। यह केवल व्यवसाय का नाम है। राजस्थान के सब दर्जी हिन्दू हैं और पगड़ी में सुई लगाने के कारण वेश से ही पहचान लिए जाते है। वहाँ उनकी दो उपजातियाँ हैं पीपावंशी तथा नामदेव वंशी।

पीपावंशी नाम की उत्पत्ति पीपाजी नाम के एक खीची राजपूत से हुई है। कहा जाता है कि उन्होंने सम्वत् १४७५ में जातिगत संसार त्याग दिया था और राजपूतों के नौकरों को दर्जी का व्यवसाय करने का परामर्श दिया था। दर्जियों में राजपूतों के परिहार, पंवार, चौहान, सुलंखी, तंबर, सिसोदिया, डावी, भाटी डकैचा, टक, दैया, सिखलीचा, मकवान, कछवाहा और गहलोट वंश के लोग सम्मिलित हैं।

नामदेव वंशी नामदेव के अनुयायी हैं। नामदेव टाक राजपूत वंश में एक साधु थे। इन लोगों का कहना है कि परशुराम से बचने के लिए इन के पूर्वजों ने पहले कपडे की छपाई का व्यवसाय ग्रहण किया था, तदनन्तर यह दर्जी का व्यवसाय करने

लगे। यह छीपा दर्जी के नाम से विख्यात हैं इनके समाज के अनेक लोग अब भी रंगाई का व्यवसाय करते हैं।

इन दोनों वंशों में यद्यपि हुक्का पानी एक है किन्तु अन्तर्विवाह प्रचलित नहीं है। दोनों वंशो में नाता प्रचलित है। नामदेव वंश की स्त्रियां पैरों में नेवडी तथा अन्य बजनेवाले अलंकार नहीं पहनतीं।

राजस्थान में दर्जी जाति के लोग भीरु माने जाते हैं। जब कोई किसी को साहस तथा वीरता से विमुख पाता है तो उपहास में उसे दर्जी कहता है।

जोधपुर में कहावत प्रचलित है कि एक बार जोधपुर के दर्जियों की कुछ स्त्रियां पाल नाम के ग्राम में लुट गईं। दर्जियों ने क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेने का संकल्प किया। वह एक दल बनाकर उस गांव पर चढ गये किन्तु गांव के निकट पहुंच कर उन्होंने दूसरे दिन प्रात: काल के समय आक्रमण करने का निश्चय किया और प्रत्येक व्यक्ति ने पीछे रहने की चेष्टा आरम्भ की। जिसका परिणाम यह हुआ कि एक-एक करके पीछे जाते-जाते प्रात: होते-होते यह लोग वापस जोधपुर के नगर फाटक पर पहुंच गये। इस प्रकार दर्जी की 'पाल मारना' एक कहावत बन गई है और जब कोई अपनी क्षमता से अधिक बडा कार्य करने का विचार करता है तो यह कहावत उस पर लागू की जाती है।

दर्जी अपनी बरात में नाई को साथ नहीं ले जाते। कहा जाता है कि एक नाई दर्जियों की बारात में गया। सब लोग तो सवारियों पर थे, किन्तु अकेला नाई पैदल चल रहा था उसने अस्वस्थ होने का ऐसा ढोंग बनाया कि दर्जियों को उसे अपने कंधौं पर चढा कर ले जाना पडा। उस समय से दर्जियों ने नाई को अपनी बरातों में ले जाना बन्द कर दिया है। परन्तु कहावत चली आ रही है कि दर्जियों के होते नाई को पैदल न चलना पडेगा।

छीपा

कपडे पर छींट छापने वालों की छीपा नाम की एक पृथक जाति है। कहा जाता है कि दक्षिण प्रान्त के पिन्डारपुर स्थान से यह राजस्थान आये थे। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के व्यक्ति हैं। हिन्दुओं में जाति-च्युत राजपूत भी सम्मिलित हैं। वह राजपूत जिन्होंने अपनी जान बचाने के लिए यह व्यवसाय स्वीकार किया था इनमें के कुछ लोग दर्जी का व्यवसाय भी करते हैं।

छीपा दो भागों में विभाजित है। १. वामदेव २. नामदेव। इन दोनों वंशों के नाम इनके स्थापकों के नाम पर प्रचलित हैं। प्रत्येक विभाजन में बारह उपवंश हैं।

नामदेव एक बडे करामाती व्यक्ति प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि औरंगजेब की हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने की पक्षपातपूर्ण नीति के आरम्भ होने पर इन्होंने अपने अनुयायियों की आश्चर्यजनक विधि से रक्षा की थी। नामदेव के दो प्रधान शिष्य थे। एक का नाम टीकम था और दूसरे का नाम गोविन्द। इनके अनुयायी टक और गोला के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजस्थान में यही लोग प्रधान रूप से बसते हैं। यह दोनों वंश खाते पीते तो एक साथ है परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध एक दूसरे के साथ नहीं करते। इन लोगों में नाता प्रथा भी प्रचलित है। नाते में टाक वंशीय छीपों को एक सौ रुपया ,देना पडता है, परन्तु गोला वंशीय शायद ही कभी बीस रुपये से अधिक देते हैं।

छीपा विष्णु के उपासक हैं और महाजनों की प्रथाओं पर चलते हैं। गोला छीपे अन्य हिन्दुओं की भांति तीसरे नवें अथवा बारहवें दिन कोई मृतक संस्कार नहीं करते।

टक छीपे के उपविभाजन निम्नलिखित है।

१. नथिया	२. सडवाल	३. ग्वालिया
४. सरवा	५. उन्तवार	६. भिंडा
७. लूडर	८. नागी	

गोलों के उपविभाजन निम्नलिखित हैं।

१. भाटी	२. चौहान	३. परिहार
४. सुलंखी	५. घेलौट	६. पंवार

राजस्थान में कुछ मुसलमान छीपे भी हैं। यह सुन्नी समुदाय से सम्बन्धित हैं तथा इन्हें प्रधान रूप से बादशाहों ने जबर्दस्ती मुसलमान बनाया था। इन का समुदाय रंगरेजों से अलग है। यह उनके साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते। इन लोगों में सगाई की रस्म में भावी वहू को चांदी की एक हंसली दी जाती है नाते के अवसर पर कुरान की आयतें फिर दोहराई जाती हैं।

रंगरेज

राजस्थान में रंगरेज नीलगर भी कहलाते हैं। रंग का काम करनेवाले को रंगरेज कहते हैं। यह नील की रंगाई प्रधान रूप से करते हैं, इसीलिए यह नीलगर कहलाते है। यह सब सुन्नी मुसलमान हैं और एक पृथक समुदाय हैं इनकी श्रेणी वही है जो छीपा और चरोदा लोगों की है। किन्तु यह किसी के साथ अन्तर्विवाह नहीं करते रंगरेजों की उपजातियों के नाम हैं चौहान, सीची खोकर, बेहयिम इनमें आपस में अन्त-र्विवाह प्रचलित है। इनका कथन है कि यह शहाबुद्दीन गौरी के शासन काल में दिल्ली से राजस्थान आए।

दर्जी

छीपा
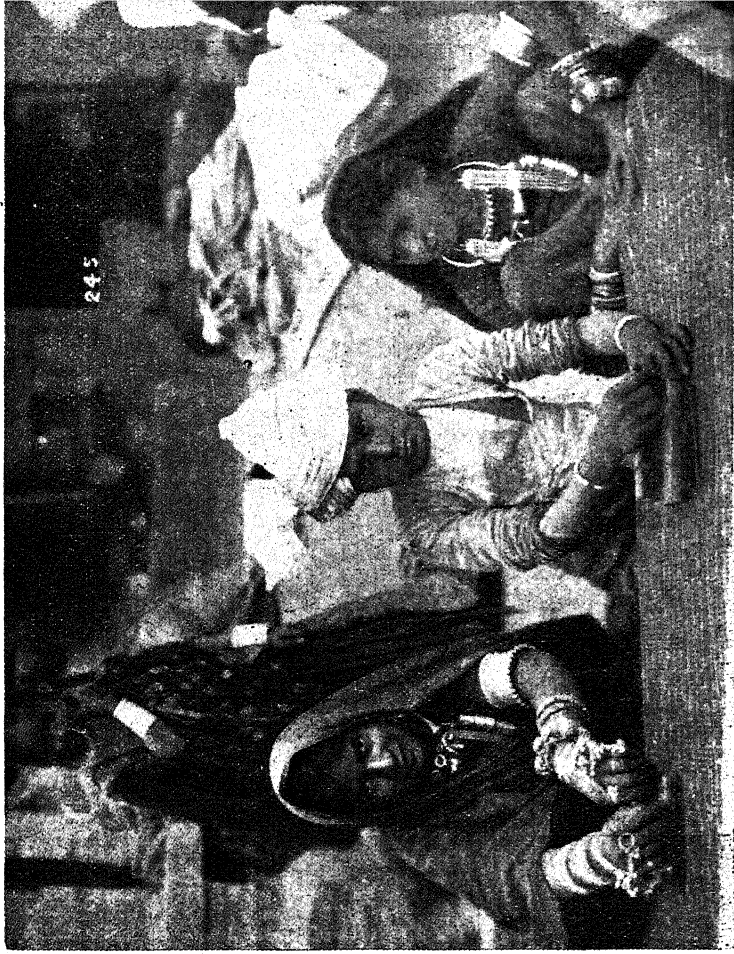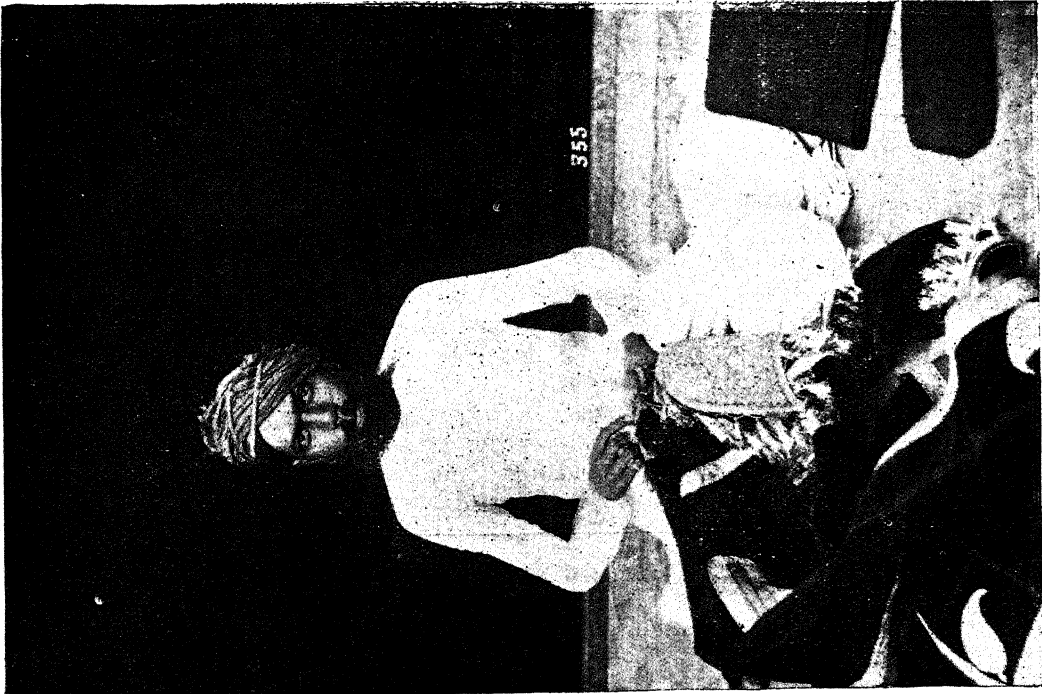
रंगरेज

बंधेरा

रंगरेजों की वैवाहिक प्रथाएँ ठीक वही हैं जो देशी मुसलमानों की हैं। विवाह का दिन कन्या के पिता द्वारा स्थिर किया जाता है और वर के पक्ष को एक नारियल पर एक डोरा लपेट कर कुछ दिनों पूर्व उनके पास भेजकर विवाह करने सूचना दी जाती है। सूचना भेजने और विवाह के दिन में जितने दिनों का अंतर होता है नारियल पर लिपटे हुए ढेरों में उतनी ही गांठें लगा दी जाती हैं। भावी वर विवाह के दिन तक उन गांठों की एक गांठ प्रत्येक दिन खोलता है। बरात वधू के घर पहुँचने पर विवाह हो जाता है।

रंगरेजों की स्त्रियां पुरुषों के बराबर उनके साथ काम करती हैं। वैसे तो वह पाजामा पहनती हैं किन्तु बाहर जाने के समय एक चोंगा ऊपर से पहन लेती हैं जो स्थानीय भाषा में तिलक कहलाता है।

रंगाई का व्यवसाय करनेवालो की एक और भी जाति है जो चरीहा कहलाती है किन्तु रंगरेज जाति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इन लोगों का प्राचीन निवास मुलतान समझा जाता है जहां यह लोग धोबी का व्यवसाय भी करते हैं। यह बंधारी का भी काम करते है और रंगाई के लिये कपडा बांधते है। इन में विधवा विवाह प्रचलित है परन्तु यह लोग रंगरेजों के यहां विवाह नहीं करते।

इनकी उपजातियां निम्नलिखित हैं :

१. घटीला	२. ढेरा	३. बम्बर	४. सम्पन्न
५. सत्तार	६. भट्टी	७. सोनारा	८. टगरी
९. म्पेढा	१०. गुलत्तार	११. जनवा	१२. झक्काल
१३. मरोढी			

बंधेरा

बंधरा वह लोग है जो दुपट्टा छापते हैं तथा एक कपडे को अनेक रंगों में रंगने के लिए स्थान-स्थान पर बांधते हैं। कहा जाता है कि पूर्वकाल में यह लोग नागर ब्राह्मण थे किन्तु हस्तिनापुर के महाराज जनमय जी का दिया दान अस्वीकार करने के कारण उन्होंने इनके जनेऊ उतरवा दिये थे और इन्हें मारडालने की आज्ञा दे दी थी तब इन लोगों ने सावन्दा माता पर विभिन्न रंगों से रंगी हुई एक चुनरी चढाई और उनसे प्राण रक्षा की प्रार्थना की। यह लोग बंधेरा कहलाते है क्यौंकि यह कपडों को स्थान-स्थान पर बांध-बांध कर उसे अनेक रंगों में विशेष प्रकार से रंगते है। राजस्थान में अनेक खत्री जाति के व्यक्ति यह व्यवसाय करते हैं। यह व्यवसाय करनेवाले मुसलमान चरोहा कहलाते हैं।

जालोर जसवंतपुरा और सांचोर में इनकी बस्ती अधिक है। यह लोग वैष्णव हैं और कुलदेवी के रूप में सावंदा माता की उपासना करते है। इनके विवाह इन्हीं की जाति के भीतर होते हैं इनमें विधवा विवाह का चलन है। सगाई के अवसर पर वधू के माता पिता को इक्यानवे रुपये तथा विवाह के अवसर पर बत्तीस रुपये देते है किन्तु अटासरा विवाहों में अर्थात् ऐसे विवाहों में जहां वर पक्ष की कन्या को वधू पक्ष में व्याह दिया जाता है वहां रुपये का लेन देन नहीं हुवा करता। विधवाओं का विवाह दूर के संबंधियों के साथ किया जाता है अर्थात् मृतक पति के चार गौत्रों को बचा लिया जाता है किन्तु विधवा के साथ विवाह करनेवाले को विधवा पक्ष में अपने पक्ष की एक कन्या व्याहनी पडती हैं तथा बयालिस रुपये नकद अदा कनने पडते हैं। इस प्रकार व्याही गई कन्या को सतू छोकरी कहा जाता है।

बंधेरों के गोत्र निम्नलिखित हैं.

१. चंडाली	२. फुलिया	३. लाहोरा
४. अपोला	५. बगैला	६. अपैता
७. कुंगरिया	८. तरसिंगिया	९. गावरिया

पटवा

पाट के अर्थ रेशम होते हैं। यह लोग रेशम के डोरे की कारीगरी करते हैं सर के डोरे तथा कमर की करधनी बनाते हैं राजस्थान मैं यह व्यवसाय जाति के अन्तर्गत नहीं है अनेक ब्राह्मण तथा बनिए भी इस व्यवसाय को करते है और उनकी जाति पर इस पेशे द्वारा कोई प्रभाव नहीं पडता। जैसलमेर में महाजनों का एक वंश इस नाम का है जो व्यापार करते है और जैसलमेर में अत्यन्त प्रभावशाली हें कोई इन लोगों को उनमें समझने का भ्रम न करें।

बनारस में पटवा जस्ते और रांगे के अलंकार बेचते हैं। बिहार में यह लोग रेशमी वस्त्र बनाते हैं।

जुलाहे

राजस्थान में जुलाहे वह लोग कहलाते हैं जो कपडा बुनते हैं। ये लोग मुसलमान धर्म के अनुयायी हैं। यह बहुधा मौमिन भी कहलाते हैं। क्योंकि यह रोजे और नमाज के बहुत पक्के होते हैं। इनका कहना है कि ये अजमेर के ख़्वाजा साहब के साथ भारत वर्ष आये थे और अजमेर से सांभर, डिडवाना तथा राजस्थान के अनेक स्थानों में फैल गये। यह बेहलिम तथा कुरेंशी वंश के लोग हैं। तदनन्तर अनेक जाति च्युत राजपुत्र इनमें सम्मिलित हो गये। और गोरी कहलाने लगे। इनका नाम गोरी-

पटवा

जुलाहा

कोळी

धोबी
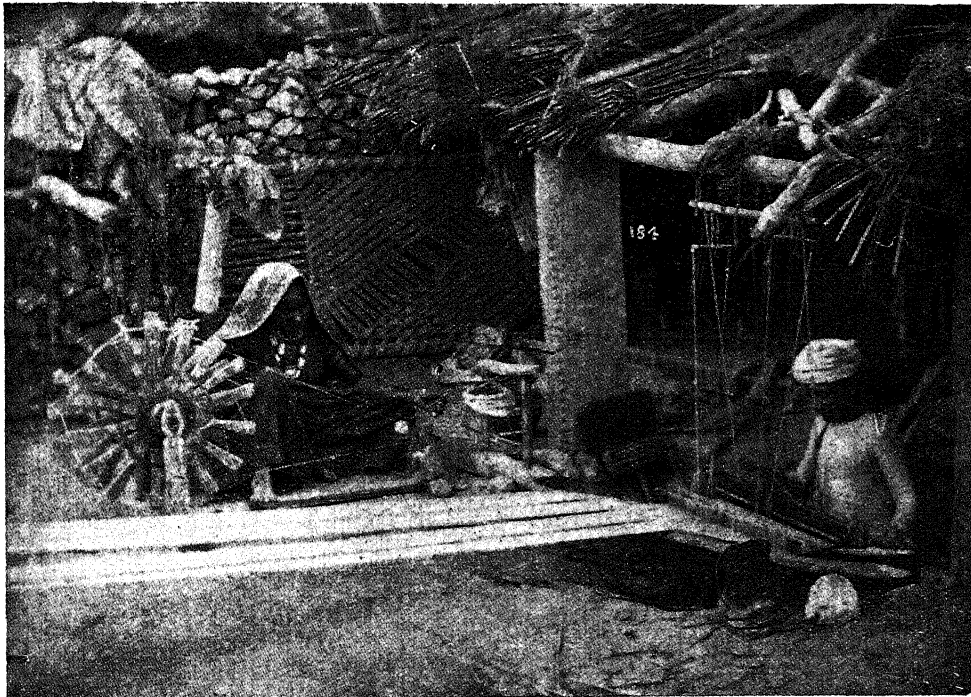
इसलिए पडा कि शाहाबुदीन गोरी ने इनको मुसलमान वनालिया था ये लोग देशी कपडा बुनते हैं जो रेज अथवा सूसी कहलाता है। जोधपुर और नागोरपुर के जुलाहे बहुत अच्छे कारीगर माने जाते हैं तथा पगडियों का वढिया कपडा बुनते हैं।

नागौर के जुलाहे पूर्व काल में जादूगरी का काम करते थे और उनकी जादू करने की अनेक कहानियां राजस्थान में अब भी प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एक बार महाराजा बखत से हाथी पर चढ़कर नगर को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक वृक्ष मिला जिसकी शाखाओं के कारण हौदा सहित हाथी का निकलना असम्भव था। राजा ने उस वृक्ष के काटे जाने की आज्ञा दे दी जुलाहे ने उस वृक्ष को काटे जाने का समाचार सुनकर एक मिट्टी के वर्तन से सम्पूर्ण वृक्ष को ढक दिया।

कोली

कोली अत्यन्त नीची जाति माने जाते हैं। यह कपडा बुनने का व्यवसाय नहीं करते। कर्नल टाड ने लिखा है कि सम्पूर्ण देश के कपड़ा बुननेवाले कोली जाति के ही व्यक्ति हैं किन्तु राजस्थान में ऐसा नहीं है। वहाँ यह विविध प्रकार के अन्य व्यवसाय करते हैं और कुछ लोग कृषि भी करते हैं। यह लोग गुजरात से राजस्थान आये थे और सांचोर तथा मीनमाल में अधिक संख्या में वसे हैं। इनका जन्म व्यास राजदूत तथा एक गुलाम कन्या से बताया जाता है और राजपूताने की मरु-भूमि में यह लोग चौहान कोली तथा परिहार कोली कहलाते हैं। पूर्वकाल में यह लोग दस्यु वृत्ति में अधिक अनुरक्त रहते थे अतः मारवाड़ में जुयायम पेशा जातियों में गिने जाते हैं। इनके विवाह इनकी ही जाति मे होते हैं। कर्नल टाड का कथन है कि यद्यपि यह लोग हिन्दुओं के समस्त देवताओं को पूजते हैं और माता को प्रधान रूप से मानते हैं किन्तु यथार्थ में यह लोग दैवी और मानवी समस्त विधानों को ताक पर रखे रहते हैं। किसी भी प्रकार की परवाह नहीं करते और इनके लिए खाने योग्य प्रत्येक वस्तु भोज्य है। खानें के मामले में ये लोग अपने वन के हिंसक पशुओं के समान हैं और गाय, बैल, भैसा, बकरा, ऊंट, हिरन, कुत्ता जो पाते हैं वही खा जाते हैं इनको किसी चीज से परहेज नहीं है।

धोबी

कपड़े धोने का व्यवसाय करनेवाली जाति का नाम धोबी है। धोबी हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मावलम्बी हैं। इनकी जाति बहुत नीची मानी जाती है। इनका व्यवसाय गंदा होने के कारण ही इनकी जाति नीची मानी जाती है परन्तु मारवाड़ में इनका मार्ग में मिल जाना शुभ शकुन माना जाता है। कहावत है :

धोबी धोयां कपड़ा सामो अय मिलन्त
शकुन विचारो पंथिया पग पग मिले करन्त ।

भावार्थ : यदि धोबी मार्ग में मिले तो ऐ यात्री तुम प्रत्येक पग पर खुशी मनाओ ।

जोधपुर के धोबियों में टम्बर, पंवार, चौहान और सुलंखी वंश के अनेक पतित राजपूत भी शामिल हैं । यह शक्ति के उपासक हैं तथा मांसाहारी हैं । इनकी स्त्रियां इनके साथ काम करती हैं । यद्यपि इनकी जाति नीची है किन्तु इनकी स्त्रियां पैरों में चांदी के अलंकार पहनती हैं ।

राजस्थान में कुछ मुसलमान धोबी हैं जो हिन्दू धोबियों से अधिक चतुर माने जाते हैं । यह लोग सुन्नी मुसलमान हैं और चरोटों तथा रंगरेजों की प्रथाओं पर चलते हैं । इन लोगों में विवाह इन्हीं की जाति के भीतर होता है ।

पिंजारा

राजस्थान में रूई के धुनकने खोलने और साफ करने वाले पिंजारा अथवा पिनारा कहलाते हैं । इस व्यवसाय में हिन्दू मुसलमान दोनों ही धर्मावलम्बी लोग हैं । शहाबुद्दीन गोरी के शासनकाल में इन लोगों को जबरन मुसलमान किया गया था । अब यह लोग अपनी जाति गौरा पठान बतलाते हैं । पंजाब में यह लोग पंजा धुनियां तथा नद्दाफ के नाम से पुकारे जाते हैं । तथा बनारस में यह लोग कटेरा कहलाते हैं । पादड़ी शेरिंग ने इनकी कार्य विधि का अत्यन्त विवरणात्मक वर्णन किया है जिसका यह उद्धरण पाठकों को अरुचिकर न होगा ।

उनका कहना है कि धुनिया के पास काट का एक धनुष होता है जिस पर तांत का एक डोर चढ़ा रहता है तथा एक मुंगरी होती है जिसके दोनों सिरे गोल होते हैं और बीच में उसे पकड़ने के लिए गहरी जगह बनी होती है । इन्हीं दोनों यंत्रों कीं सहायता से यह रूई की खुलाई धुनाई तथा सफाई सब कुछ कर लेते हैं । यह कच्ची रूई का जमीन पर ढेर लगातें हैं तथा अपने बाएं हाथ में धनुष को पकड़ते हैं और दाहिने हाथ में काठ की मुंगरी । धनुष यह एक डोर से ऊपर बांध देते हैं जिससे धनुष का बोझा इनके हाथ पर न पड़े फिर यह अपनी मुंगरी से धनुष की तांत पर चोट करते हैं । तार एक झंकार के साथ कपकपाता है फिर वह तांत कपकपाते हुए तांत के तार को रूई के निकट ले जाकर रूई में जरा सा छुआ देता है जिसके कारण रूई का एक हल्का गाला उस तांत में लिपट जाता है तब वह तांत पर निरन्तर मुंगरी मारता रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि रूई छोटे छोटे रेशे होकर उड़कर गिर जाती है । इस क्रिया से रूई का प्रत्येक

रेशा बिलकुल खुल जाता है और उसका कूड़ा करकट साफ हो जाती है। इस प्रकार रूई बिलकुल साफ हो जाती है।

मारवाड़ में कुछ मुल्तानी पिंजारे हैं जो अपना निकास मेलिम फिरका अथवा शेख से बतलाते हैं। कुछ पिंजारे ऐसे भी है जो पूर्वकाल में चौहान, पंवार, सुलंखी तथा भाटी वंश के राजपूत थे और मुसलमानों से अपने प्राण बचाने के लिए पिंजारे वन गये। पंवार पिंजारे मुसलमान होकर भी मालन माता की उपासना करते हैं और उनकी आराधना स्वरूप धूप जलाते हैं।

पिंजारों का विवाह इन्हीं की जाति के भीतर होता है। इन लोगों में विधवा विवाह भी प्रचलित है। ग्रामों में रहनेवाले पिंजारों में से कुछ कृषि कार्य भी करते हैं तथा कुछ लोग जर्राही का भी काम करते हैं। जालौर मीनमाल और सांचोर में इन लोगों से बेंगार अधिक ली जाती है किन्तु वहां कहलाते कोतवाल हैं। इनके घर की स्त्रियां बिलकुल हिन्दुस्तानी हिन्दुओं की सी जान पड़ती हैं वह पायजामा बहुत कम पहनती हैं।

अहीर

पशु चरानें वाले अहीर कहलाते हैं। यह लोग पशु पालते हैं चराते हैं तथा दूध, दही, मठा और मक्खन बेचते हैं। मिस्टर इबटसन के मतानुसार अहीर शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के अमीर शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है दूधवाला। कुछ लोगों का कथन है कि मही का अर्थ दही है इसलिए मही से महीर हुआ ओर महीर से अहीर हुआ। यह लोग कृषि कार्य भी करते हैं तथा बहुत लोग गाड़ी हांकने की नौकरी भी करते हैं। राजपूताने की रियासत की विभिन्न एजें-सियों में चपरासी के काम पर इसी जाति के लोग अधिक हैं।

इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक कथाएं हैं। मनु के विचार से इनकी उत्पत्ति ब्राह्मण पिता असम्बस्थ माता से हुई है। असम्बस्थ नाम है वैद्य का अर्थात् चिकित्सक। ब्राह्मण में इनकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से बताई गई है। सर हेनरी ईलियट ने यदुवंशियों का पूरा ब्योरा लिखा है और बताया है कि कुछ साल तक इस वंश के लोग सम्पूर्ण भारत के शासक थे। आज यह लोग देश में जिस निगाह से देखे जाते हैं उसकी अपेक्षा प्राचीन काल में इन का बहुत बडा सम्मान था। रामायण तथा महाभारत दोनों ग्रन्थों में इनका नाम आया है। किसी जमाने में भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर इनकी बडी प्रधानता थी और पौराणिक भूगोल में उस प्रान्त का नाम अमीर लिखा गया है अर्थात् गायों का देश।

दक्षिण में आसा अहीर के वसाए हुए असीरगढ नाम के नगर से इनकी महत्ता का पता चलता है। किसी जमाने में यह नेपाल के भी शासक थे और कुछ

काल तक रिवाड़ी इनके हाथों में था, जहां पर सिपाही विद्रोह के समय राजा तुलाराम ने अच्छा काम किया था।

इनका मूल स्थान मथुरा है और राजस्थान में इनकी बस्ती पूर्वी परगनों म अधिक हैं। इनकी जाति में तीन महान विभाजन हैं। १. नन्दवंशी, २. यदुवंशी, ३. ग्वालवंशी। सर ईलियट के कथनानुसार इन तीनों के बीच यह तीनों अहीर हैं इसके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सब वैश्णव हैं और मांस तथा मदिरा का भक्षण नहीं करते। यदुवंशी अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बतलाते हैं और अपनी स्त्रियों को परदे में रखते हैं तथा मांस मदिरा के खान पान में स्वतंत्र हैं।

अहीर यद्यपि परिश्रमी होते हैं, किन्तु अभिमानी भी होते हैं और शान भी बहुत उड़ाते हैं। इनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध हो गया है कि यह लोग समय पड़ने पर काम नहीं आते इसलिए कहावतों में इनका नाम प्रशंसात्मक ढंग पर नहीं लिया जाता जैसा कि नीचे लिखी कहावत से प्रमाणित होगा।

सभी जाति गोपाल की तीन जाति बेपीर
बखत पड़ी लज्जी नहीं बनिया बैस अहीर।

मिस्टर इबटसन ने इस कहावत को चरितार्थ किया है:

सब जातियां भगवान की सृष्टि हैं किन्तु इनमें से तीन, बनिया, रंडी एवं अहीर बड़ी निर्दयी होती हैं। समय पड़ने पर यह बड़ी निर्लज्ज हो जाती हैं:

घोसी

घोसी जाति का व्यवसाय दूध बेचना है। इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द से हुई है जिसका अर्थ पशु व्यापार है। सर हेनरी ईलियट तथा मिस्टर इबटसन घोसियों को धर्म परिवर्तित अहीर मानते हैं। राजस्थान में घोसियों की जाति में धर्म परिवर्तित राजपूत भी सम्मिलित हैं। यद्यपि यह लोग मुसलमान हैं किन्तु सूरत शक्ल से यह सर्वथा हिन्दू प्रतीत होते हैं तथा इनके हाथ का दूध पीने में कोई आपत्ति नहीं करते। सब लोग उनके बर्तनों को पवित्र मानते हैं और उनके हाथ का पानी नहीं पीते परन्तु दूध पीते हैं।

घोसी कुरान, कलमा और नमाज कुछ भी नहीं जानते और कलरिया वंश की एक सती की पूजा करते हैं तथा उसी के स्थान पर अपने बच्चों का मुंडन करवाते हैं।

घोसी अपने वंश में व्याह नहीं करते, किन्तु छोटा भाई बड़े भाई की विधवा के साथ व्याह कर सकता है। यह अपनी स्त्रियों को पैरों में चांदी के जेवर नहीं पहनने देते। इनके यहाँ मृतकों को गाड़ा जाता है।

अहीर

पिंजारा

घोसी
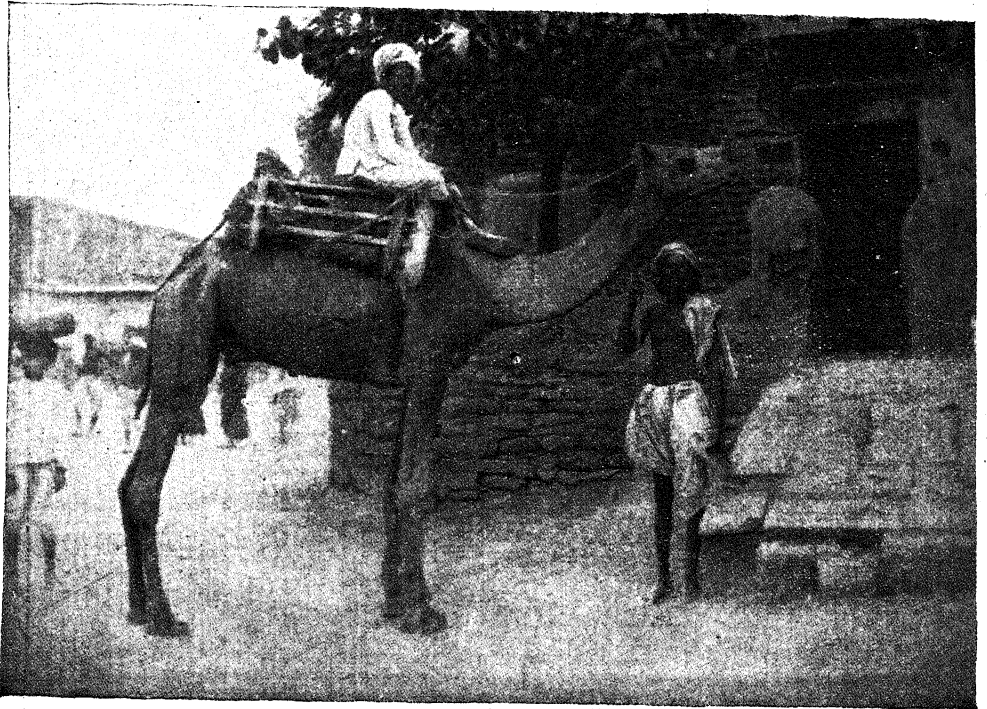
रहबारी

रहवारी

ऊंटों को पालनेवालों को रहबारी अथवा रायका कहते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पार्वती ने अपने साथ खेलने के लिए एक ऊंट उत्पन्न किया और उस ऊंट की रक्षा के लिए महादेव ने एक व्यक्ति रायका नाम का उत्पन्न किया।

रायका अथवा रहबारियों में दो भेद हैं। एक मारू कहलाता है और दूसरा चलकिया। मारू रहबारी ऊंचे माने जाते हैं। मारू रहवारी विना अपनी बेटी चलकियों में ब्याहे उनकी बेटी ब्याह सकते हैं। इनका व्यवसाय केवल ऊँट पालना है। चलकिया रहबारी ऊंटों के साथ-साथ भेड़ और बकरियाँ भी पालते हैं। गौडवार में यह लोग बहुसंख्यक हैं और पितलिया नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनकी स्त्रियाँ पीतल के विशेष गहने धारण करती हैं।

रहबारियों में केवल सांभर के उत्तराधिकारी पवित्र रक्त माने जाते हैं। शेष का निकास अनेक राजपूतों से मिलकर हुआ है। परिहार वंशीय रहबारी नादराव परिहार जो भंडोर का राजा था और रहबारी जाति में सम्मिलित हो गया था उसके पाँच पुत्रों के नाम से पाँच गोत्रों में विभाजित हैं। उनके नाम निम्नांकित हैं :

१. खमला २. मुरिया ३. पास ४. जिदकिया ५. बार

रहबारियों का विवाह उन्हीं की जाति में होता है इनमें विधवा विवाह प्रचलित है :

तेली

तेली में दो जातियाँ होती हैं। एक तेली कहलाते हैं दूसरे घाँची कहलाते हैं। प्रथम हम तेलियों का वर्णन करेंगे। इसके पश्चात् घाँचियों का वर्णन करेंगे।

तेली हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मावलम्बी हैं, किन्तु घाँचियों में सब हिन्दू-ही हिन्दू हैं।

तेलियों का स्थान समाज में अत्यन्त निम्न-वर्ग का है और कहा जाता है कि इनमें एक हजार चार सौ चौबालीस जातियाँ है। जिनमें से अधिकांश राजस्थान के पतित राजपूतों से निकली हैं। राजस्थान में बसनेवाले तेली परिहार, जरीवाल और मदरनियाँ वंशों से निकले हैं।

तेली जाति शिव की उपासना करती है और उनकी कुलदेवी का नाम चौधराना माता है। यह दीवार पर लाल रोली से सात आडी रेखाएँ अंकित करते है और उसी के ऊपर दूध से सात बडी रेखाएँ अंकित करते हैं। चौधराना माता के

नाम पर वह इसी की पूजा करते हैं तथा चढोका में जो भी चीज चढ़ाते हैं वह संख्या में चौदह चढ़ाते हैं। इस देवी का स्थान (मंदिर). नावा और मरीर के मध्य मार्ग में एक पहाड़ी के नीचे माना जाता है। वहाँ एक पत्थर पर घोड़े की पीठ पर सवार, चौदह मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। यह रामदेव और गांगाजी की पूजा भी करते हैं। इनकी स्त्रियां पीतल के चूड़े पहनती हैं। हाथीदाँत के नहीं पहनतीं। इनमें नाता प्रचलित है।

मुसलमान तेली अपने को शेख बतलाते हैं। किन्तु बहुतेरे इनमें जाति-च्युत राजपूत भी हैं जो तेल निकालने के अतिरिक्त राजगीरी, लोहारगीरी और धुनिए का काम भी करते हैं। यह लोग सर्वदा धोती पहनते हैं और इनकी स्त्रियाँ पाजामा पहनती हैं। यह गले में चांदी के जेवर पहनती हैं। इनकी जाति में विधवाएं विवाह कर सकती हैं किन्तु पति के परिवार में नहीं।

घांची

घांचियों का कथन है कि पूर्वकाल में यह लोग राजपूत थे और गुजरात से राजस्थान आए। कहावत है कि एक बार गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने एक मन्दिर का निर्माण निश्चय किया और साथ ही निश्चय किया कि मन्दिर का निर्माण कार्य दिन-रात जारी रहे। रात को कार्य चलाने के लिए प्रकाश-तेल की आवश्यकता पड़ी। वह तेल निकालने के लिए कुछ तेली नियुक्त किये और उन तेलियों के कार्य-निरीक्षण के लिए राजपूतों को नियुक्त किया गया। तेली काम को अधूरा छोड़कर भाग गए तब जरूरत निर्वाह के लिए उन राजपूतों ने बचे हुए काम को पूरा किया। तेलियों का कार्य करने के कारण वह राजपूत जाति-च्युत कर दिए गए। इन जाति से निकाले हुए राजपूतों की एक जाति संगठित हुई जो घांची कहलाई। घांची का अर्थ घानी है और घानी तेल निकालने के यंत्र का नाम है।

सम्वत् ग्यारह सौ इक्यानवे जेठ तीज रविवार।
खेरत मेर घांची हुआ जयसिंह डेरेवार ॥

अर्थात् जेठ के महीने में तीज की तिथि और रविवार का दिन तथा ११९१ में राजा जयसिंह के शासनकाल में उन लोगों ने जिन्होंने अपनी भूमि छोड़ दी मिलकर घांची जाति को जन्म दिया। घांचियों में परिहार, पंवार, भाटी, सिसौदिया तथा चौहान वंश के राजपूत सम्मिलित हैं। जोधपुर के घांची प्रधानतः भाटी राजपूत हैं।

यह शक्ति के उपासक हैं और अपनी पुरानी कुल देवियों की पूजा करते हैं। इनमें के अनेक लोग कृषि-कार्य करते हैं, किन्तु बहुत से पशुपालन का कार्य

करते हैं और दूध बेचते हैं किन्तु इनका दूध उतना अच्छा नहीं माना जाता जितना घोसियों का। घोसियों की ख्याति है कि वे दूध में पानी नहीं मिलाते, घांची अपने ही वंश में विवाह नहीं करते। इनमें विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित है।

कुम्हार

कुम्हारों के व्यवसाय में हिन्दू और मुसलमान दोनों व्यक्ति शामिल हैं। मिस्टर शेरिंग कुम्हार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द कुम्भकार से मानते हैं और संस्कृत में कुम्भ का अर्थ पानी का घड़ा है। कुम्हारों का दूसरा नाम परजापत है। सर हेनरी ईलियट की दी हुई शब्द सूची में लिखा है कि कुम्हारों की उत्पत्ति एक ब्राह्मण की रखैल कहारी तथा शूद्र के सम्बन्ध से हुई। मिस्टर कोल का कथन है कि कुम्हारों की जाति का प्रारम्भ ब्राह्मण पति क्षत्रिय पत्नी से हुआ। राजस्थान के कुम्हार अपनी उत्पत्ति ब्रह्मा के नाती जालंधरनाथ से बताते हैं। कुम्हार समाज की बडी महत्त्वपूर्ण सेवा करते हैं क्योंकि वे गृहस्थी के उपयोग में लाये जानेवाले सब वर्तनों के निर्माता होते हैं, किन्तु समाज में इनका स्थान अत्यन्त नीचा माना जाता है। यह लोग गांव के सेवकों में गिने जाते हैं। अंधविश्वासी लोगों में यात्रा के समय कुम्हार का दाहिने हाथ मिलना शुभ माना जाता है।

कुम्हारों में निम्नलिखित सात विभाजन हैं जिनमें कि प्रथम छः हिन्दू हैं और अंतिम मुसलमान.

१. खटेर २. बंदा ३. माल ४. जटिया
५. पुरबिया ६. मेवाडा ७. मोइला.

खटेर सब से ऊंचे माने जाते हैं। यह कृषि करते हैं और जाट तथा गूजरों के बराबर लगान देते हैं। यह दूसरे कुम्हारों में विवाह नहीं करते। इनसे बेगार नहीं ली जाती। कुम्हारों की अन्य जातियों के समान यह लोग गधे नही पालते बल्कि गाय तथा बैल पालते हैं।

बंदा कुम्हार जटियों, पुरवियों और मेवाडों में विवाह नहीं करते। क्योंकि मारू बिना अपनी बेटी बदले में दिए व्याह लेते हैं। यह केवल वर्तन बनानें का व्यवसाय करते हैं इनसे पानी भर ने की बेगार ली जाती है। मारु कुम्हार केवल राजस्थान में ही बसे हैं और दूसरे कुम्हारों के साथ यह अन्तरविवाह नहीं करते। इनका प्रधान व्यवसाय मिट्टी के बरतन बनाना है किन्तु जोधपुर नगर में कुछ लोगों ने चूने के भट्ठे भी खोल लिये हैं और चुंगाडा कहलाते हैं। चुंगाडा लोग चुनारी भी कहलाते हैं। मट्टी में आग यह लोग स्वयं नहीं लगाते हैं। यह लोग मट्टी में आग लगाना पाप समझते हैं आग यह लोग भंगियों से जलवाते हैं और पैसा देते हैं।

जटिया कुम्हार शब्द की उत्पत्ति जटा से मानी जाती है। जटा नाम बालों का है। इनका व्यवसाय भेंड बकरियों और बालों से रसी बटना है। यह कृषि भी करते हैं तथा घास और गल्ला गधों पर लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

पुरबिया कुम्हार पूरब से राजस्थान आए और घास फूंस तथा ऐसे ही सामान बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यह जमीन भी जोतेते हैं और मिट्टी के खिलौने बनाते है।

मेवाड कुम्हार मेवाड से मारवाड आए। यह चक्की के पत्थर तथा राजगीरी करते हैं। खटेर मारु पुरबिया ओर जटिया कुम्हारों के घरों की स्त्रियां पैरों में चांदी के अलंकार पहन सकती है, किंतु मेंवाडों की स्त्रियां केवल पीतल के अलंकार पहन सकती हैं। हाथीदांत के चूडे केवल मारु और बंदा कुम्हारों के यहां पहने जाते हैं। विधवा विवाह कुम्हारों की समस्त जातियों में प्रचलित है और विधवा विवाह की दक्षिणा व्यक्तियों की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर लागू है।

कुम्हार विभिन्न साम्प्रदायों के अनुयायी हैं। कुछ शिव को मानते हैं कुछ विष्णु को तथा कुछ शक्ति को। पुरबिया कुम्हार तथा वह कुम्हार जो आई माता के उपासक हैं मांस और मदिरा का व्यवहार नहीं करते। विभिन्न उपजाति के कुम्हारों में सगाई की प्रथाएं भी विभिन्न प्रकार की हैं। जटियों में भावी वधू की कलाई में एक डोरा बांध देने से सगाई पक्की मानी जाती है। दूसरे कुम्हारों में गुड और नारियल का लेन-देन होने पर सगाई पक्की होती है। बंदा और पुरबिया कहार भावी जामाता को अपने घर पर रख लेते हैं। यह घर जामातुर कहलाता है। यह अपने ससुर के साथ उस समय तक एक उम्मीदवार की भांति रहता है तथा उसके काम में हाथ बंटाता हैं जब तक कि उसका विवाह नहीं हो जाता। विवाह हो जाने के पश्चात् बंदा कुम्हार के वर और वधू राज दरबार में जाते हैं वहां यह लोग नाचते हैं और भाट ढोल बजाता है। यह रियासत केवल बंदा कुम्हारों को प्राप्त है।

मोइला कुम्हार मुसलमान हैं और सिंधु से राजस्थान आए हैं। यह मिट्टी के बर्तन बनाते हैं तथा जागीरदारों से बर्तनों के बदले में माफी जमीन जोतते है। यद्यपि यह लोग मुसलमान कहलाते हैं किन्तु यह सब रीति रिवाजें हिन्दुओं की मानते हैं। यह लोग अपने वंश में विवाह नहीं करते। सगाई के अवसर पर वधू के घर गुड और नारियल भेजा जाता है। वधू का पिता विवाह का दिन तथा समय निश्चित करता है और इसकी सूचना वर के पिता को देता हैं। अफीम वितरण से सगाई पक्की मानी जाती है।

हिन्दुओं के समान इनमें तोरण भी बांधा जाता है जिसे वर विवाह के समय तोडता है। विधवा विवाह इनमें प्रचलित है। उस अवसर पर काजी आता है और विवाह के 'कलमें' एक दुपट्टे पर पढता है। दुपट्टा वर की ओर भेंट होता है।
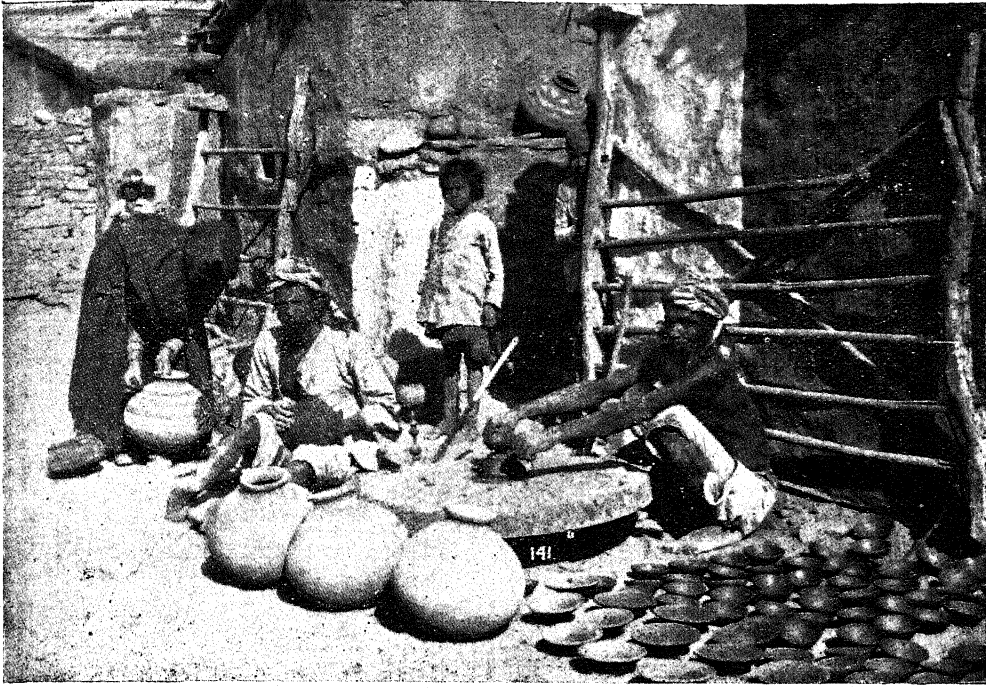
कुम्हार

खरोल

तेली

घांची

कुम्हारों के प्रत्येक विभाजन में अनेक उपविभाग हैं जिनके भीतर इनके विवाह आदि सम्पन्न होते है :

खटेर कुम्हारों के उपविभाग निम्नलिखित हैं :

१. डुवाल २. दैया ३. रेनवाला ४. पीपला ५. खरनालिया
६. भावार ७. गोदावर

वन्दा कुम्हारों के उप विभाजन निम्नलिखित हैं :

१. चौहार	२. जदरा	३. कवरिया	४. जलवनिया
५. गोडेला	६. कलवार	७. अनिया	८. नरजग
९. भाटी	१०. कालूपोटा	११. टटवा	१२. कनडेलवाल

१३. मनोरिया

उपरोक्त लोगों में क्षत्रियों की संख्या अधिक है। इन में अधिकांश रामदेवजी के उपासक हैं और खेजरी वृक्षकी पूजा करते हैं।

माल कुम्हारों की उपजातियां निम्नलिखित हैं।

१. चंडोरा	२. गोला	३. टाक	४. माल
५. वागडी	६. रटोगन	७. रागोट	८. जोजावरा
९. गुगलाव	१०. खरतपा	११. सुलंखी	१२. देवडा

जटियों के उपविभाजन निम्नलिखित हैं।

१. जलनधारा	२. घुरीला	३. टाक	४. बममोटिया
५. जिजनोदिया	६. छप्परवाल	७. मेरा	८. लडौना
९. सैवोटा	१०. घंडोरा	११. लीवा	१२. सरदीवाल

१३. मूरा

इनमें से कुछ शिव के और कुछ विष्णु के उपासक है। इनकी कुलदेवी कमिका हैं।

राजस्थान में पुरबियों की निम्नलिखित शाखायें निवास करती हैं।

१. बनवरिया	२. तिनगरिया	३. सीनावटिया
४. मथनिया	५. जगरवाल	६. खतनावरिया
७. मोरवाल	८. कथोर	९. सिंगरवाल
१०. छकेनिया	११. एनिया	१२. दिलवारी
१३. झलनल	१४. लोडवाल.	

ये लोग माताजी, हनुमानजी तथा रामदेवजी के उपासक हैं।

मेवाडों के उपविभाग निम्नलिखित है।

१. देहवाल २. दमेरिया ३. टेनीवाल
४. मनडनिया ५. मनडेर ६. कढोर
७. टाक.

पूर्व में यह लोग चौहान तथा घेलोट राजपूत थे और वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थें।

मोईला कुम्हारों के उपविभाजन निम्नलिखित हैं।

१. मैयान २. कडया ३. जोलिया
४. कनधिया ५. लौल्य ६. झेडिया
७. हसनिया ८. मुरारिया

खरोल

खरवाल अथवा खरोल उस जाति का नाम है जिसका व्यवसाय नमक बनाना है। पंजाब प्रांत में यह लोग नूनगर कहलाते हैं। उत्तर पश्चिम के प्रदेश में इनका नाम नुनिया है। मिस्टर इवटसन इन नामों को व्यवसाय प्रधान मानते हैं जाति प्रधान नहीं।

राजस्थान में इनकी बस्ती पंचभद्रा फलोदी तथा उन दूसरे स्थानों में अधिक है जहां नमक का उत्पादन होता है। इस जाति के लोगों का कथन है कि पूर्व में यह लोग राजपूत थे। अकबर के शासनकाल में इन लोगों ने यह व्यवसाय ग्रहण किया था। निम्नलिखित हिन्दी पद में इनकी उत्पत्ति का वर्णन है।

अकबर पातसा कोप्यो नाटी कीने ना सरे।
खडग मले खरोल हुआ पृथीपति रे वारे॥

अर्थात् अकबर के क्रोध को शान्त करना किसी के बस की बात नहीं थी और उसी के शासन में लोगों को कृषि छोडकर नमक बनाने का व्यवसाय करना पडा।

खरोल जाति अनेक वंशों में विभाजित है और उनमें से अधिकांश के नाम राजपूतों के नाम हैं। उपजाति अथवा वंशों में कुछ के नाम नीचे लिखे जा रहे हैं।

१. सोनिग्रा ५. गामती
२. हादा ६. सिसोदिया
३. चौहान ७. टिट्टावत
४. मछेलिया ८. पंवार

इनमें से प्रथम तीन के बीच अन्तर विवाह संदिग्ध है, किन्तु शेष सब परस्पर अन्तर्विवाह करते हैं। यह शक्ति की उपासना करते हैं। मोरन माता अभयाजी तथा सांभराजी इनकी कुल देवी हैं। विवाह सम्बन्ध में यह केवल पिता के गोत्र का बचाव

करते है अथवा सास और वहू दोनों एक ही बाप की बेटी हो सकती हैं। अन्य हिन्दू जातियों में ऐसी प्रथा नहीं है।

न्यारिया

न्यारिया की गणना सुनारों के साथ की जाती है परन्तु राजस्थान में यह स्पष्ट एक पृथक जाति है। यह प्रधान रूप से मुसलमान हैं और मुलतान से आकर बसे है। इन में च्युत राजपूतों की एक बडी संख्या सम्मिलित है। उन में भी चौटागें सुलँखियों परिहारों और गोरियों की प्रधानता है।

इनके व्यवसाय जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट हैं। सुनारों के काम में निकले हुए करदे से मूल्यवान धातु को पृथक करना है। राज्य के टकसाल घरों में यह सोना चांदी गलाने के काम पर नोकर है। इनके व्यवसाय के सम्बन्ध में पादडी शेरिंग का कथन है कि सुनारों की दुकानों में जो डूक जमा होता है जिसमें मिट्टी के साथ दुसरा कूडा होता है तथा सोने चांदी के कण भी होते है उसे न्यारिये खरीद लेते है और बड़े ध्यान तथा सतर्कता के साथ उसमें से मूल्यवान धातु को निकाल लेते है। हिन्दुओं की एक सम्पूर्ण जाति अच्छी आय देने के लिए यह व्यवसाय पर्याप्त है।

कहार

कहार नाम है पालकी उठानेवालों का। कहार यथार्थ में कंधार शब्द का संक्षिप्त है और कंधार शब्द की उत्पत्ति कंधे शब्द से हुई है। कंधार अथवा कहार इनका नाम इसलिए है कि उनके व्यवसाय में कंधे का उपयोग होता है। यह लोग वैयक्तिक सेवकों का काम करते हैं। पानी भरते है तथा रसोई बनाने का भी काम करते हैं। उनकी विधवाएं दुबारा विवाह कर सकती हैं और इससे उनका सामाजिक स्थान नीचे नहीं गिरता क्योंकि हिन्दुओं की सब जातियां उनके हाथ का लाया पानी और पकाया भोजन करती हैं। राजस्थान मे कहारों के तीन विभाजन हैं।

१. पुरबिया २. धंदारी ३. मारवाड़ी

इन तीनों के बीच परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है यह न तो एक दूसरे के साथ भोजन करते हैं और न विवाह। पुरबिये अपने को असल मानते हैं। पुरबिये और धंदारी दोनों पालकी-वाहक का काम करते हैं तथा वैयक्तिक सेवकों का भी। यह जूठे बर्तन साफ करते हैं किन्तु सहीसी नहीं करते और न कुलियों के समान बोझा ढोते हैं। बाजार से खरीद कर अनाज यदि इनके ऊपर लादकर लाया जाय तो यह इंकार कर देंगे किन्तु वही अनाज यदि पालकी में रख दिया जाय तो इनको कोई इंकार न होगा और प्रसन्नतापूर्वक अनाज तथा अनाज के मालिक दोनों कौ लाद कर ले आवेंगे।

मारवाडी कहार जिनका दूसरा नाम मेहरा है अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते है। प्रधानतः चौहान राजपूतों से। कयमखानी यद्यपि जाति के मुसलमान होते हैं किन्तु उन्होंने कहारों के साथ अंतर्विवाह किया है। कहावत है कि मेहरा शब्द की उत्पत्ति उस समय हुई थी जब पृथ्वीराज चौहान शहाबुद्दीन गोरी से पराजित हो गया था और बहुत से राजपूत बन्दी कर लिए गये थे। कहावत है कि विजय के पश्चात् सुल्तान बीमार हो गया तब एक राजपूत बन्दी ने अपनी चिकित्सा से उसे स्वस्थ किया था और पुरस्कार में अपने साथी बन्दियों की रिहाई माँगी थी तथा जिन जिन व्यक्तियों को वह मेरा....मेरा कहता गया वह सब मुक्त होते गए। इस प्रकार छूटे हुए व्यक्तियों का एक दल जमा हो गया था जिन्होंने पालकी वाहक का व्यवसाय अपनाया था और वही मेरे अथवा मेहरा कहलाने लगे थे।

मेहरे विशेष रूप से माँस पकाते हैं और पानी भरते हैं ये लोग पुरबियों और धुन्दारियों की भाँति बर्तन नहीं साफ करते। इनकी स्त्रियाँ चूने की चक्कियाँ चलाती हैं तथा परिश्रम के अन्य काम भी करती हैं और मेहरी कहलाती हैं।

मेहरे शिव की उपासना करते हैं और माताजी की भी उपासना करते हैं इनकी रीतियाँ और रिवाजें मालियों से मिलती जुलती हैं। इसी जाति के बीच में कीर नाम की एक और जाति होती है। यह लोग तरबूज बोने का काम करते हैं। राजस्थान में मछुए और झिनवार नहीं होते।

भंरभूंजा

अनाज को भाड़ द्वारा भूनने वाले जैसा कि नाम से व्यक्त है भरभूंज़ा कहलाते हैं। विलसन के मतानुसार इनकी उत्पत्ति कहार जाति के पुरुष और एक शूद्र जाति की स्त्री से हुई है। पादरी शेरिंग के मत से भी यह कहारों के साथ घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। राजस्थान के भरभूंजे यदुवंशीय राजपूतों से उत्पन्न हुए हैं तथा इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हैं। हिन्दू भरभूंजों की बस्ती प्रधान रूप से जोधपुर जिले में है यह लोग हलवाइयों का व्यवसाय भी करते हैं और विवाह इत्यादि तथा अन्य बड़े बड़े भोजों के अवसर पर लोगों के घरों पर जाकर मिठाइयाँ बनाते हैं। मुसलमान भरभूंजे केवल ग्रामों में ही बसे हैं।

राजस्थान के भरभूंजे निम्नलिखित आठ उपजातियों में विभाजित हैं और बिना भेदभाव सब में परस्पर अन्तर्विवाह होता है:

१. सुखसेजिया
२. भाटी
३. चौहान
४. भटनागर
५. धनकुट्टा
६. कनौजिया
७. कायथ
८. किशनगोती

न्यारिया

कहार
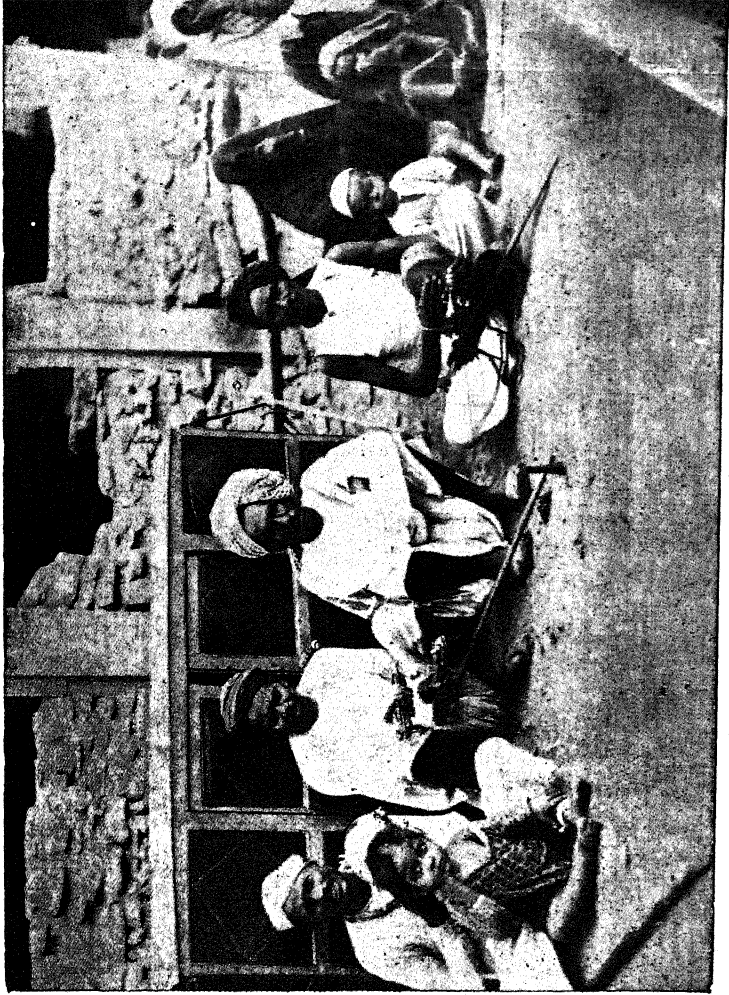
भटयारा

भड़भूंजा

समस्त भरभूंजे शक्ति के उपासक हैं और मांस तथा मदिरा का उपयोग नहीं करते। अपनी कुलदेवी को भोग में दाल रोटी तथा तेल चढ़ाते हैं। इनके पुरोहित सांचौरा ब्राह्मण होते हैं। बिवाह के अवसर पर इनमें चौरी की प्रथा नहीं है। विधवा विवाह प्रचलित है। इनकी स्त्रियाँ नाक नहीं छिदवातीं तथा नथ नहीं पहनतीं। यह गले में सोने के अलंकार नही पहनतीं। और वस्त्र पहनने में भी पीला रंग बचाती हैं। हाथों में लाख के चूड़े पहनती हैं।

भरभूंजे पंजाब में झिनवार कहलाते हैं। कहीं-कहीं इनका नाम भुजवा और चतारी भी है। पादड़ी शेरिंग ने बनारस के भरभूंजों की सात जातियाँ बताई हैं जो आपस में अन्तर्विवाह नहीं करतीं। ये लोग कुछ तो मिठाई बेचने और अनाज भूनने का व्यवसाय करते हैं तथा कुछ सिघाड़े उपजाने का काम करते हैं।

भटयारा

भटियारे सराय का संचालन करने तथा पका पकाया भोजन बेचने का व्यवसाय करते हैं। इनकी बस्ती अकेले जोधपुर में है। यह सब सुन्नी मुसलमान हैं तथा उत्तर पश्चिम के अमरोता स्थान से राजस्थान आये हैं। यह साधारणतः मुसलमानों की रीतियों और रिवाजों पर चलते हैं। इनके सम्बन्ध में लिखने की कोई विशेष बात नहीं है। विधवा विवाह प्रचलित हैं किन्तु मृतक पति के खानदान से दूर।

भिश्ती

यह पानी ढोने का व्यवसाय करते हैं। यह चमड़े की मश्कों मे पानी ढोतें हैं। पंजाब में यह लोग पखाली अथवा मराकिये कहलाते हैं।

सर हेनरी इलियट के मतानुसार भिश्ती शब्द वहिशती शब्द का अपभ्रंश है। विहिश्त फारसी भाषा में स्वर्ग को कहते हैं। यह सब मुसलमान हैं और मुसलमान विजेताओं ने इन को यह नाम प्रदान किया है क्योंकि इन्होंने मुसलमान सिपाहियों को पानी पिलाया था।

राजस्थान में सब पानी लाने वाले हिन्दू हों अथवा मुसलमान भिश्ती कहलाते हैं। कहीं कहीं यह सक्का भी कहे जाते हैं और मियां और जमादार के नाम से भी यह पुकार लिये जाते हैं।

हिन्दू भिश्तियों में माली और जमादार यह व्यवसाय करते हैं। मुसलमान भिश्तियों की एक अलग जाति है। इस में धर्म भ्रष्ट चौहान, परिहार भाटी तथा अन्य वंशों के राजपूत सम्मिलित हैं। इनके दो दल हैं एक देशी तथा दूसरा

परदेशी। इन में अन्तर्विवाह नहीं होता। देशी सब राजस्थान के निवासी हैं और मृतक को दफन करने के पश्चात् स्नान करते हैं। इनकी स्त्रियों पेटी कोट पहनती हैं। परदेशी अलवार शेखावती और हारियाना से आये लोग हैं इनकी स्त्रियां पाजामें पहनती हैं।

मुसलमान भिश्ती हिन्दुओं को भी पानी देते हैं और सफाई की दृष्टि से वह अपनी कमर में एक लाल वस्त्र बांधे रखते हैं। हिन्दू उनका पानी उसी समय तक स्वीकार करते हैं जब तक कि उनकी कमर में लाल वस्त्र बँधा हो। लाल वस्त्र खुल जाने पर उनका पानी कोई हिन्दू नहीं छूता।

कलाल

कल्पकाल शब्द का अपभ्रंश कलाल शब्द समझा जाता है। कल्पकाल का अर्थ है अपने चरित्र को परिस्थिति के अनुकूल संगठित करना। कलाल जाति का व्यवसाय शराब बनाना है। सम्भवत: इस व्यवसाय वाली जाति का यह नाम इस लिए रखा गया होगा कि यह मदिरा बनाने के नुसखे में किसी विशेष ज्ञान अथवा सावधानी का परिचय देते रहे होंगे। कुछ लोग कलाल शब्द की उत्पत्ति कल्लू महाजन के नाम से मानते हैं। कहानी यह है कि एक बार विश्वकर्मा ने कुछ व्यक्तियों को एक पीपल वृक्ष के तने में छिपा दिया किन्तु कालिका माता यह भेद प्रकट कर देना चाहती थीं अत: उन्होंने शराब बनाने का एक नुसखा कल्लू महाजन को सिखा दिया। कल्लू महाजन ने उस नुसखे के अनुसार शराब बनाई तथा विश्वकर्माजी को पिलाये। विश्वकर्माजी नें मदिरा के प्रभाव से अपना भंडा अपने ही मुंह खोल दिया। कल्लू के उत्तराधिकारी कलाल कहलाने लगे। इस प्रकार इस जाति का नाम कलाल पड़ा। यह एक स्पष्ट पृथक जाति है और शराब बनाना इनका जातिगत व्यवसाय है। राजस्थान में आबकारी विभाग की स्थापना से इन लोगों का व्यवसाय नष्ट हो गया किन्तु मिस्टर इवटसन के मतानुसार यह जाति हठ, लगन, बल, बुद्धि तथा साहस के लिए प्रसिद्ध है। इनके सम्बन्ध में कहावत है मौत डिग सकती है परन्तु कलाल नहीं डिग सकता। बनारस तथा पंजाब के परिचित में यह लोग कलवार कहलाते हैं। कपूरथला राज्य का राजघराना इसी जाति से सम्बन्धित है।

राजस्थान में कलालों के तीन विभाजन हैं। १. सुंगा २ ताक कलाल ३. मेवाड़ा कलाल। यह एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं है और इन में परस्पर अन्तर्विवाह होता है। सुंगों का जिक्र महाजनों के विवरण में आ चुका है। यह लोग खंडेलवाल कहलाते हैं। यह शराब बेचते हैं परन्तु पीते नहीं हैं इनकी यह विशेषता अन्य कलालों से इन्हें ऊँचा करती है। ताक कलालों की उत्पत्ति एक ताक

भिश्ती

कलाल

खटिक

कसाई
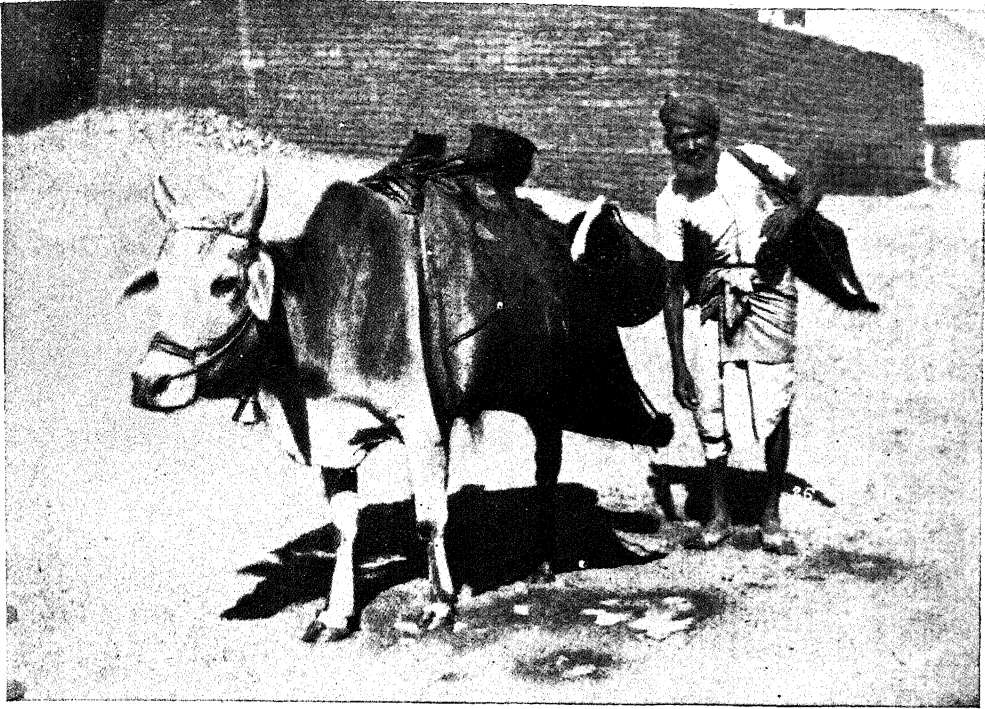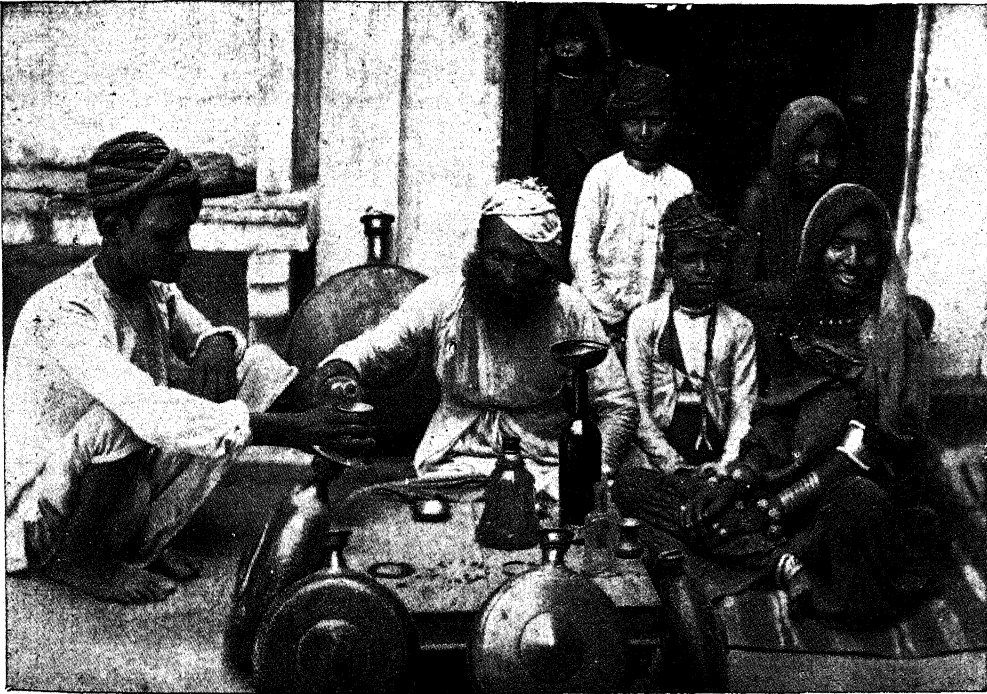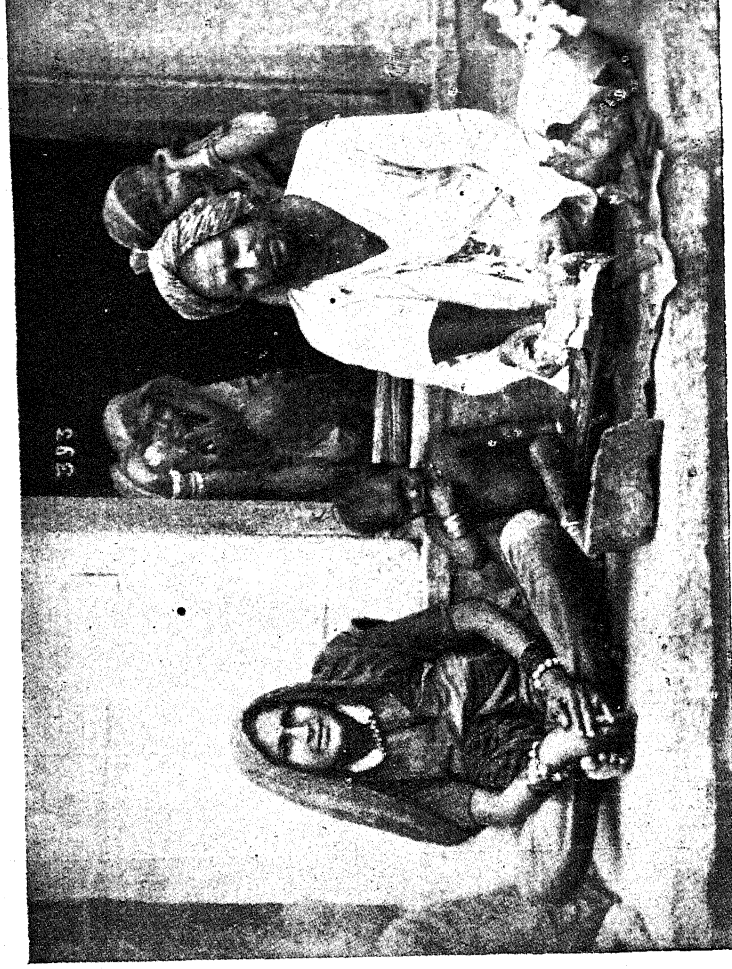
राजपूत से हुई है और यह मेवाड़ा राजपूतों से ऊंचे माने जाते हैं। यह उनकी बेटियाँ बिना अपनी बेटी बदले में दिये ब्याह सकते हैं।

कलाल शक्ति की उपासना करते हैं और राजपूतों की रिवाजें और प्रथाएँ मानते है। कलाल चौरासी उपजातियों में विभाजित हैं किन्तु उनमें से केवल उतने जो राजस्थान में बसे हैं नीचे लिखे जाते हैं:

१. खुमवुटा	२. करी	३. नदौला
४. मालविया	५. कटार	६. तलायछ
७. सीदू	८. बोरीसा	९. नागदा

राजस्थान में मुसलमान कलाल भी बसे हैं। कहा जाता है कि इनकी उत्पत्ति एक ताक राजपूत की मुसलमान पत्नी से हुई है। यह लोग शराब बनाते हैं परन्तु स्वयं पीते नहीं हैं। यह मारवाड़ के पूर्वीय इलाकों में पाये जाते हैं।

कसाई

कसाई जाति में केवल मुसलमान धर्मावलम्बी हैं। इनका व्यवसाय मांस बेचना है। पशु काटने का व्यवसाय यह लोग नहीं करते। काटने अथवा हत्या करनेवालों की मुसलमानों में एक पृथक जाति है जो मुल्ला अथवा हलाली कहलाते हैं। ये लोग मजूरी पर आते हैं और मुसलमानी ढंग से पशुओं का गला काटकर चले जाते हैं।

राजस्थान के निवासी कसाई मुसलमानों में सुन्नी जाति के लोग हैं और ख्वाजा पीर के उपासक है। इनमें अनेक विभाजन हैं जिनमें बहुतेरे धर्मच्युत राजपूतों से बने हैं जो विभाजन अपना निकास बेहलिम फिरके से बताते हैं वे ही असली कसाई हैं।

राजस्थान में बसनेवाले कसाई चार प्रकार के व्यवसाय करते हैं। एक तो पशुओं का मांस बेचते हैं जो कसाई अथवा बूचड़ कहलाते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो चमड़ा पकाते हैं वे खलपिया अथवा खीटक कहलाते हैं। यें लोग व्यापारी भी कहलाते हैं। तीसरे वे लोग छत निर्माण के लिये पत्थर चढ़ाते हैं चावलिया कहलाते हैं। चौथे वे लोग हैं जिन्होंने महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में पशु हत्या की एकदम मनाही हो जाने के कारण पत्थर काटने का काम उठा लिया था और लिलावत कहलाते हैं।

कसाईयों की चारों जातियां अपने ही भीतर विवाह करती हैं और अपनी बेटियाँ दूसरे मुसलमानों को नहीं ब्याहते। इनके घर की स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं हैं और दुकानों पर बैठ कर माँस बेचती हैं तथा पाजामा पहनती हैं।

खटिक

खटिक जाति का प्रधान व्यवसाय बकरे, भेड हिरन और चीतों की खालों को पकाना है। ये लोग गाय बैल और ऊंटों की खालों को नहीं पकाते। इस प्रकार यह जाति चमड़े के व्यवसाय करनेवालों जातियों में से एक है। मिस्टर इबटसन ने इस जाति को चमारों से भी नीचे भंगियों के समान माना है। किन्तु राजस्थान में ये लोग कसाइयों के समान माने जाते हैं। इस जाति के लोग घोड़ों की साईस का भी काम करते हैं। इस जाति के लोगों में इस प्रकार व्यवसायों की विभिन्नता से इनकी जाति में विभिन्नता नहीं होती। खटिकों में से अनेक लोग शराब बनाने का भी व्यवसाय करते हैं। कुछ कृषि करते हैं और कुछ मजूरी भी करते हैं।

खटिक जाति के लोग अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं उनकी उपजातियों के अनेक नाम राजपूती हैं। नागौड, साँम्भर, नावा, मारोट के निवासी खटिक चौहान वंशीय हैं। कहा जाता है कि खटिकों के पूर्वज जब क्षत्रिय थे तब एक बार वे लोग गंगाजी की यात्रा को गये और लौटते समय अपने साथ एक मृगछाला लाए जिसके कारण वह जातिसे बाहर निकाल दिए गए तथा उन्हें खटिक होना पडा। नावा और मरोट के खटिकों का कथन है कि एक बार ब्राह्मणों के हवन के लिए उन्होंने बकरे मारे जिसके कारण क्षत्रियों ने उन्हें अपनी जाति से बाहर निकाल दिया और वह खटिक अथवा कसाई माने जाने लगे।

ये लोग शैवी हैं और इनकी कुलदेवी कालिकामाता है। इनकी बिरादरी में आपसी विवादों को निबटाने के लिए पंचायतें हैं और पंच लोग मेहतर कहलाते हैं। यह चमारों के साथ भोजन नहीं करते और न हुक्का पीते हैं। तथा अपनी ही जाति में विवाह के सम्बन्ध करते हैं। विवाह के समय इन में सात फेरे होते है और इनकी पुरोहिताई श्रीमाली करते हैं। इनकी स्त्रियां चांदी के अलंकार पहनती हैं।

खटिकों की उपजातियों निम्नलिखित है.

१. चांडाल　　२. बरावा　　३. भोगरिया
४. बचरा　　५. चौला　　६. खिरही
७. तावडा　　८. चमरिया　　९. टाकी
१०. दायमा　　११. बागडी

चमार

चमारों का व्यवसाय चमडा बनाना, पकाना और रंगना है। मिस्टर इबटसन इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द चर्मकार से मानते है। जिसका अर्थ है चमडे का

काम करनेवाला। चमारों का कथन है कि पूर्व में यह ब्राह्मण थे। कहावत है कि एक बार सात ब्राह्मण भाई भोजन बना रहे थे अकस्मात एक बछडा आकर आग में गिर पडा और मर गया। बछडे के शव को सबसे छोटे भाई ने उठाकर अलग किया अतः ब्राह्मणों ने उसे अपनी जाति से बाहर कर दिया और उसी से चमार जाति का विकास हुआ। पादडी शेर्यरिंग ने मनु के आधारपर लिखा है कि चमार जाति में आधे ब्राह्मण तथा एक चौथाई वैश्य वा एक चौथाई शूद्र। सर् हेनरी इलियट का कथन है कि यह काले मनुष्यों की एक जाति है जैसे ब्राह्मणों में काला बिरला ही मिलेगा वैसे ही चमारों में गोरा रंग बिरला ही मिलेगा। यह लोग पानी अधिक पीते हैं। राजस्थानी चमारों के सम्बन्ध में कहावत है।

'घोडा घास ने चमार ने पानी' अर्थात् चमार उसी प्रकार बार बार पानी पीता है जैसे घोडा बार-बार घास खाता है।

चमार पवित्र गंगा तथा रामदेवजी की पूजा करते हैं। यह गाय, बैल और ऊंटों तक का मांस खाते है केवल सुअर का मांस नहीं खाते। इनके पुरोहित गर्रा होते हैं जो एक बडी नीच जाति के माने जाते हैं यही इनके विवाह तथा मृत्यु के अवसरों पर कर्म कांड सम्पन्न करते हैं। चमार रेहगरों और भंगियों के साथ हुक्का तो पी लेते हैं परन्तु विवाह अपने ही भीतर करते हैं। ये अनेक वंशों में विभाजित हैं। जैसे रेहगर- जिनका विकास चमारों से ही माना जाता है।

बीकानेर में चमार बलाई कहलाते हैं। वहाँ लालगिरी नाम के एक चमार ने एक धार्मिक पंथ चलाया था जिसके अनुयायी अलखगीर कहलाते हैं।

राजस्थान में मुसलमान मोची हैं, जो केवल जूता बनाने का काम करते हैं। यह लोग जातिच्युत राजपूत हैं और सुन्नी समुदाय से सम्बन्धित हैं तथा पाजामा पहनते हैं।

रेहगर

रेहगर जाति चमारों की ही एक शाखा है और चमारों का ही व्यवसाय करती है। मालवा प्रान्त के मदूगढ स्थान में स्थित रैदास जाति के लोगों से रेहगर जाति के लोग अपनी जाति की उत्पत्ति बताते हैं। रैदास साधारण चमारों की भाँति सडक की पटरियों पर जूतियों की मरम्मत किया करते थे किन्तु वह गंगा के अनन्त भक्त थे और उन्होंनें अनेक करिश्में भी दिखलाए। रेहगरों का विश्वास है कि राजस्थान के दक्षिण पूर्व बहनेंवाली प्रसिद्ध चम्बल नदी ही पवित्र गंगा नहीं है तथा वह रैदास की कूंडी से प्रकट हुई है। कहा जाता है कि रैदास के एक कन्या थी जो इतनी अनुपम सुन्दरी थी कि चित्तौड के राना ने उसके साथ अपना बिवाह करना चाहा। राजा ने उसके साथ अपना विवाह करने के निमित्त एक सेना

चितौड से रैदास के घर भेजी किन्तु सेना के रेदास के घर पर पहुँचते ही कूंडी से गंगा की धारा निकली और सेना को बहा ले गई।

रेहगर उत्तर पूर्वी प्रान्तों के चमारों के समान माने जाते हैं। इस नाम की उत्पत्ति रैदास के नाम पर आश्रित है और इसी नाम से जयपुर में भी विख्यात है। जोधपुर नगर में तथा मारवाड में अन्य भागों में यह लोग जट्टिये कहलाते हैं। संभवत: इसका कारण यह है कि जाटों के साथ रहने के कारण इनकी स्त्रियां जाट स्त्रियों के सदृश्य वेश में रहने लगी हैं। पशुओं की खालों के रंगने के कारण बीकानेर में यह रंगिये कहलाते हैं। मेवाड में यह लोग बोला कहलाते हैं। इनके नामों में इतनी विभिन्नता होते हुए भी इनका परस्पर अन्तरविवाह होता है। यह चमारों के साथ भोजन कर सकते हैं किन्तु उनके साथ अंतरविवाह नहीं कर सकते हैं।

राजस्थान के रेहगर जनेऊ पहनते है और सात फेरों की प्रथा से विवाह करते हैं। विवाह के अवसरोंपर घेनियात ब्राह्मण इनकी पुरीहिताई करते हैं मृतक के संस्कार में इनको ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं पडती। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है :

रेहगरों में अनेक वंश हैं जिनमें कि कुछ प्रधान वंशों के नाम नीचे दिये जाते हैं।

१. कन्सोरिया २. सिगारिया ३. मंडावारिया
४. मोटारिया ५. जेटालिया ६. डम्बरिया
७. बछवाडिया ८. कनखरिया ९. चुकरिया
१०. मुरिया ११. गिदिया १२. अदुलिया
१३. बोंरा १४. उजिनिया १५. खटुवरिया
१६. गडेगावालिया १७. कुरोलिया १८. माकरीवाल
१९. गुसाईवाल २०. जाजीरिया २१. भोपरिया
२२. कूररिया २३. बुकारिया २४. सुंदरीवाल
२५. भोवनपुरिया २६. मुदोतियाँ २७. उमरीखा
२८. कावेरिया २९. मासीवाल ३०. फलवरिया
३१. गगरोडिया ३२. जनवाले ३३. खोलवाल
३४. देवतवाल ३५ सुनवासा ३६. मंडरिया
३७. नोगिया ३८. चोमियां ३९. सकरिया
४०. जरोलिया ४१. गरोलिया ४२. जट्ट
४३. हिन्गुनिया ४४. खरेटिया ४५. रिगोलिया
४६. मोसीवाल ४७. मिसालपुरिया ४८. सवलनियाँ
४९. अलोरिया ५०. पिपलवा ५१. कारीवाल

रेहगर

चमार

मोची

भाम्बी

५२. दुतनिया	५३. जवरुडिया	५४. खुलिया
५५. पालिया	५६. वलोटिया	५७. जगरवाल
५८. खेमकरिया	५९. दिलीप	६०. विधभडिया
६१. मोरिया	६२. वरिया	६३. खटवलिया
६४. बलेटिया	६५. तगैया	६६. बासीवाल
६७. बकुलिया	६८. वज़ीरपुरिया	

मोची

यह चमडे के कारीगर होते हैं। इस जाति में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित है। मिस्टर इबटसन मोची शब्द को व्यवसाय द्योतक मानते हैं वह मोची उस व्यक्ति को मानते हैं जो पक्के चमडे की वस्तुएं बनाता है चमडा पकानेवाले को नहीं। वह मोचियों के गुणों में उनको वादे के झूठे और अनुत्तरदायी मानते हैं उनका कहना है कि मोचियों का कल कभी नहीं आता।

हिन्दू मोचियों का निकास उन राजपूतों से हुआ है जो परशुराम के भय से राजपूती छोडकर जूता बनाने लगे थे। राजस्थान में इनकी चार उपजातियां रहती हैं और चारों भिन्न भिन्न व्यवसाय करती हैं। एक मियांगर कहलाते हैं दूसरे पन्नीगर तीसरे जिगर और चौथे जोडीगर।

मियांगर लोग तलवारों तथा कटारों के मियान बनाते हैं तथा चमडे के बक्स और कमर पेटी जो जामदानी कहलाते हैं। पूर्व में यह लोग चौहान, गोयल सुलंखी तथा पंवार राजपूत थे।

पन्नीगर सोने चांदी के वर्क बनाते हैं। ये लोग पूर्व में चौहान तथा डावी वंशी राजपूत थे।

जिगार वे लोग हैं जो घोडे गाडियों का साज तथा जीन और काठी इत्यादि बनाते है इस जाति में अनेक राजपूत वंश सम्मिलित हैं।

जोडीगर जूते बनाते हैं और यथार्थ में मोची हैं पूर्व में यह मियांगर थे और महाराज अजीतसिंह के शासनकाल से इन्होंने यह व्यवसाय अपना लिया है।

इनकी यह चारों उपजातियां एक दूसरे के साथ विवाह इत्यादि करते तथा एक साथ खाते पीते हैं। यह सब शक्ति के उपासक है इन में से कुछ लोग रामशाहपीर के भक्त हैं। इनके पुरोहितों का कार्य श्रीमाली ब्राह्मण करते हैं। मोचियों में केवल वह लोग जो स्वर्ण चूडे पहनते हैं अथवा पहन सकते हैं विवाह इत्यादि के अवसरों पर कोई बडा भोज दे सकते हैं। यही नियम मृतक भोज पर भी लागू है। अन्य छोटी जातियों के समान मोचियों में भी पंचायतें हुआ करती

हैं और उन्हीं के द्वारा इनके झगडे निबटाये जाते हैं। इनकी पंचायत में चार पंच होते हैं और एक प्रधान जो चौधरी कहलाता है। मोचियों के घरों की स्त्रियां जूतों तलवार के म्यानों तथा कमर पेटियों पर रेशम की कढ़ाई और कसीदे का सुन्दर काम करती है।

भाम्बी

चर्मकारों के समुदाय में भाम्बी जाति की जन गणना सबसे अधिक है। राजस्थान प्रान्त में कोई ऐंसा गांव नहीं है जहाँ भाम्बियों की बस्ती न हो। कर्नल वालटर ने लिखा है—भाम्बी गाँव की देखभाल रखते हैं गांवों में जाने वाले यात्रियों की सहायता करते हैं और अपनी सेवाओं के उपलक्ष में गांवों में मरनेवाले लावारिस पशुओं की खालें पाते हैं। विवाह इत्यादि के अवसरों पर इनको भोजन दिया जाता हैं तथा कटाई के अवसर पर यह प्रत्येक कृषक से अनाज पाते हैं। यह कपडा बुनाई का तथा चमडे दोनों काम करते हैं। दरबार की ओर से प्रत्येक गांव से एक भाम्बी प्रधान नियुक्त कर दिया जाता है जिसे दरबार एक पगडी तथा एक लाठी उसकी नियुक्त–चिह्न स्वरूप देता है। वह अन्य सब बातों की देखभाल के साथ-साथ सरकार के लिए वेगार का भी प्रबन्ध करता था।

भाम्बियों का वही स्थान है जो मेघवालों का। और मेघवालों से ही यह अपनी उत्पत्ति मानते हैं। मेघवालों की उत्पत्ति मेघ नाम के एक ब्राह्मण ऋषि से मानी जाती है। भाम्बियों का दूसरा नाम बलाई है। इनमें बहुत थोड़े लोग कृषि करते हैं। जो ग्रामों से पशुओं के शव उठाने का काम करते हैं वह ढेड़ कहलाते हैं।

कहा जाता है कि उस जमाने में जब राजस्थान पर विदेशी आक्रमण होने लगे थे तब राजपूतों, जाटों तथा चारणों की बडी संख्या भाम्बियों में सम्मिलित हो गयी। समय पाकर निम्नलिखित चार उपविभाजन बन गए :

१. अदू अथवा अमिश्रित भाम्बी।
२. मारू अथवा वह राजपूत जो भाम्बी बन गये थे।
३. जाट भाम्बी अर्थात् वह भाम्बी जो पहले जाट थे।
४. चरनिया भाम्बी जिनमें वह लोग जो पहले चारण थे।

उपरोक्त विभाजनों में प्रथम दो घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं और आपस में अन्तर्विवाह करते। अंतिम दो उपजातियाँ केवल अपनी जाति में विवाह सम्बन्ध करती हैं। भाम्बी लोगों को सोने चांदी के अलंकार पहनने की आज्ञा नहीं है भाम्बियों के चौधरी अथवा मुखिया तथा उसकी स्त्री पर यह आज्ञा

लागू नहीं है। भाम्बी जाति के पुरुषों के वेश में कोई विशेषता नहीं होती केवल मारू भाम्बी की स्त्रियाँ देशी छींट का बना घाघरा अथवा पेटीकोट पहनती है और जटा भाम्बियों की स्त्रियाँ जाट स्त्रियों के समान वस्त्र पहनती हैं वह हाथीदांत के चूड़े पहनती हैं और इसी से पहचानी जाती हैं कि यह जटा भाम्बी हैं चारण भाम्बियों की स्त्रियां पीले रंग के वस्त्र पहनती हैं।

भाम्बी वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और रामदेवजी के उपासक हैं। उनकी कुलदेवी का नाम खादा माता है। उन पर जो प्रसाद चढ़ाया जाता है वह भाम्बियों के पुरोहित गर्रा लोग लिया करते हैं। यह लोग तुलसी ले वृक्ष का बड़ा सम्मान करते हैं किन्तु यह सूअर को छोड़कर शेष गाय इत्यादि पशुओं का मांस खाते हैं। रामदेव तथा पाबू के भक्तों को छोड़कर शेष सब अपने मुर्दों को जलाते हैं।

सगाई के अवसर पर कच्ची शक्कर अफीम और नारियल का लेन-देन होता है। विवाह चौरी के ऊपर सात फेरों से किया जाता है और गुर्रा पुरोहिताई करते हैं। भाम्बियो में बहुविवाह प्रचलित हैं; किन्तु दो सगी बहनें एक ही पति की पत्नियाँ नहीं हो सकतीं। इनमें नाता प्रचलित है किन्तु पुरुष बिधुर होने पर अपनी मृतक पत्नी की बहन के साथ विवाह नहीं कर सकता।

भाम्बियों के उपविभाजनों में अनेक खांपें हैं। अदू भाम्बियों की खांपें निम्नलिखित हैं।

१. रंगी	२. चन्देल	३. अदरा
४. जोगचन्द	५. मेचन्द	६. जोगद

मारू भाम्बियों की खांपें निम्नलिखित हैं:

१. पलेचा	२. परमार	३. डंगी
४. सुलंखी	५. बमनिया	६. बरारी
७. परिहार	८. थानवलेचा.	९. बगानी
१०. कुदनेचा	११. पलासस	१२. रनत्रा
१३. मुंगरिया	१४. अंखिया	१५. लेवा
१६. सोनाल	१७. करेला	१८. चवनियां
१९. लोहा	२०. चरनिया	२१, लैया
२२. आयच	२३. वागड़ी	२४. मुवरचा
२५. मदरू	२६. रावल	२७. गिलोटिया
२८. अचल	२९. ऐपा	३०. दैया
३१. वरुपा	३२. परगी	३३. गोपाल

३४.	ददलिया	३५.	कचावा	३६.	घाटा
३७.	हटेला	३८.	लुकरा	३९.	खंडिया
४०.	मंगरा	४१.	सेद्रू	४२.	मकवाना
४३.	वरूपाल	४४.	सुंडाल	४५.	रंगी
४६.	अगरेचा	४७.	चवनिया	४८.	अगरी
४९.	चिखरा	५०.	मनडोका	५१.	भवरू
५२.	कोचिया	५३.	रीदा	५४.	गुजरिया
५५.	गादा	५६.	वरवरा	५७.	गूंदर
५८.	वगरेचा	५९.	चुरियाला	६०.	सवेला
६१.	वनिया	६२.	जयपाल	६३.	लीलार
६४.	मखान	६५.	जनवनिया	६६.	बोराना

जाट भाम्बियों की उपजातियाँ निम्नलिखित हैं :

१.	देपम	२.	मेरखा	३.	सखा
४.	जौरम	५.	चटेंलिया	६.	वमनिया
७.	विकुनिया	८.	जौया	९.	चवनिया

चरनिया भाम्बियों की खांपें निम्नलिखित हैं :

१.	इन्दा	२.	चम्पा	३.	नगिया

गुर्रा

जिस प्रकार अन्य हिन्दुओं में ब्राह्मण अथवा पुरोहित होते हैं उसी प्रकार भाम्बियों में गुर्रा जाति के लोग उनके पुरोहित अथवा अध्यात्मिक गुरु होते हैं। गुर्रों का कथन है कि पूर्व में वह ब्राह्मण थे और ब्रह्मा के पुत्र गर्ग की सन्तान हैं। भाम्बियों के विवाहों में यही लोग अग्नि प्रज्वलित करते हैं तथा पवित्र मंत्रोच्चार के साथ विवाह संस्कार सम्पन्न कराते हैं और पुरोहितों के समस्त कार्य कराते हैं तथा भाम्बियों की बारातों के साथ मशालें लेकर चलते हैं।

गुर्रों के कोई पुरोहित नहीं होते। उनकी पुरोहिताई के सब काम उनके भतीजे अथवा भांजे सम्पन्न करते हैं। इनके विवाह चार फेरों से सम्पन्न होते हैं तथा अन्य सब प्रथाएँ हिन्दुओं के समान होती हैं यद्यपि यह गो मांस भक्षण करते हैं तथा खूब शराब पीते हैं। यह भाम्बियों तथा मीना लोगों के हाथों की रोटियां खाते हैं किन्तु भीलों, सरगराहों तथा अन्य नीच जातियों का छुआ खाते पीते नहीं।

गुर्रे वैष्णव धर्म के उपासक होते हैं उनकी कुलदेवी का नाम मालन माता है तथा वह हनुमानजी की भी पूजा करते हैं। इनमें जो लोग आई माता तथा

रामदेव के भक्त हैं वह मुर्दे गाडते हैं अन्य लोग जलाते हैं। कितनों के यहाँ विधवा विवाह प्रचलित है और कितनों के यहाँ वर्जित। गुर्रे चौरासी खांपों में विभाजित हैं जिनके नामों में अनेक नाम ब्राह्मणी और अनेक राजपूती हैं।

सांचोर के निवासी गुर्रे अपना निकास गुजरात प्रान्त के पाटन स्थान के ब्राह्मणों से मानते हैं। कहानी इस प्रकार है कि गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने पाटन में एक तालाब का निर्माण कराया किन्तु उस तालाब में पानी टिकता ही न था। टोडल नाम के एक ज्योतिषी ने इस का कारण यह बतलाया कि उस तालाब का निर्माण बड़े अशुभ मुहूर्त में हुआ है और उपाय बतलाया कि उस पर राज परिवार के जीव का बलिदान किया जाय तो तालाब का यह दोष मिट जाय। राजा के एक पुत्र था जिसे कुरूप होने के अपराध में राजा ने घर से निकाल कर जंगल में फेंकवा दिया था वहाँ के निवासी भाम्बियों ने उसे पाला पोसा था। राजा ने अपने उसी पुत्र को जंगल से पकड़वा मंगाया और तालाब पर उसे खड़ा करके जीवित जलवा दिया। इस अवसर पर जिन ब्राह्मणों ने इस कांड में भाग लिया था अन्य ब्राह्मणों ने उन ब्राह्मणों को जाति बाहर कर दिया तथा उनको इतना गिराया कि भाम्बियों के अतिरिक्त और किसी जाति में उनको स्थान नहीं मिला अन्त में वह सब भाम्बी जाति में सम्मिलित हो गए।

गोडवार–निवासी गुर्रों का इतिहास भी इसी के समान है। वह अपनी उत्पत्ति एक पुरोहित से मानते हैं जिसे मीना जाति ने पाला था। यह लोग शनि की पूजा करते हैं और शनि के नाम पर किये दान तथा शनिवार को किये दान ग्रहण करते हैं।

राजस्थान में गुर्रा जाति की निम्नलिखित खांपें निवास करती हैं:

१. फंडार	२. पालीवाल	३. सरिया
४. सुलंखी	५. परिहार	६. गोयाम
७. गेंवाल	८. करयाजा	९. डागला
१०. भूत	११. वीजल	१२. पटयाना
१३. खंडारा	१४. सरला	१५. सलेचा
१६. डविया	१७. मोटीवाल	१८. फांतिया
१९. सेवचा	२०. सरोला	२१. मीनमाला
२२. पलरेचा	२३. संगता	२४. जाजीवाल
२५. पादडीवाल	२६. संद	२७. जरिया
२८. काला	२९. लोयंचा	३०. लडवा
३१. भंडारा	३२. वीजक	३३. वगरेचा

३४. पिचयाना	३५. सिकला	३६. सिरयाचा
३७. पालया	३८. सोमेसर	३९. गंजान
४०. असल		

सरगाराह

यह जाति भी चमारों के ही समान मानी जाती है। पूर्व काल में यह लोग तीर बनाया करते थे। तीर को संस्कृत में शर कहते है उसी के गढने अथवा बनाने से इनका नाम सरगराह पड़ गया। आजकल इनका व्यवसाय गांवों के प्रवेश मार्गो पर पहरा देना है। जोधपुर नगर के फाटकों पर पहरा देने के कार्य में इसी जाति के लोग नौकर हैं। समाचार वाहकों का कार्य भी इसी जाति के लोग करते हैं तथा ढोल पीट कर अथवा डुग्गी पीट कर मुनादी करना अथवा समाचार प्रसारित करना भी इसी जाति का व्यवसाय है।

सरगाराह अपनी उत्पत्ति रामायण के निर्माता वाल्मीक से मानते हैं। विलारा जिले के पिचियाक ग्राम में वाल्मीक का एक मंदिर है और प्रत्येक वर्ष वहां एक मेला लगता है। उस मंदिर का पुजारी भी इसी जाति का व्यक्ति है जो मूर्ति पर का सारा चढोवा वही लेता है।

विवाह के अवसर पर यह लोग हिन्दू प्रथाओं का अनुसरण करते हैं और इनकी पुरोहिताई गुर्रा जाति के लोग करते हैं। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है तथा इनके शव लेटा कर जलाये जाते हैं।

सरगाराह मांस भक्षण नहीं करते तथा गाय का सन्मान करते हैं। इन में अनेक उपजातियाँ हैं और उन जातियों में अनेक राजपूत वंशीय भी हैं।

राजस्थान में बसनेवाली उपजातियों की सूची नीचे दी जाती है :

१. एमरचा	२. भापा	३. हरियाल
४. वेसा	५. मोटा	६. लवेचा
७. धानक	८. मोल	९. मीत
१०. खहरपा	११. जोगी	१२. डिवया
१३. पालीवाल	१४. उपलाना	१५. जौयान
१६. खटक	१७. सिवांचा	१८. मकवाना
१९. माधी	२०. औचर	२१. जायाल
२२. बौरा	२३. धूभंग	२४. जोडव
२५. खरार	२६. मनोह	२७. मारू

कमरया

दवगर

सरगाराह

गुर्रा
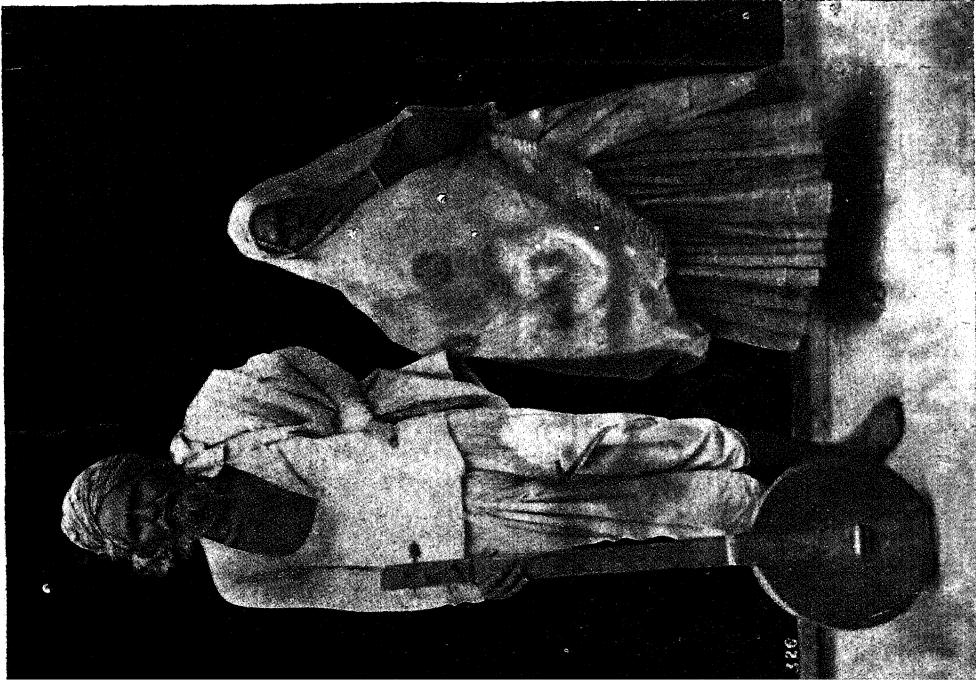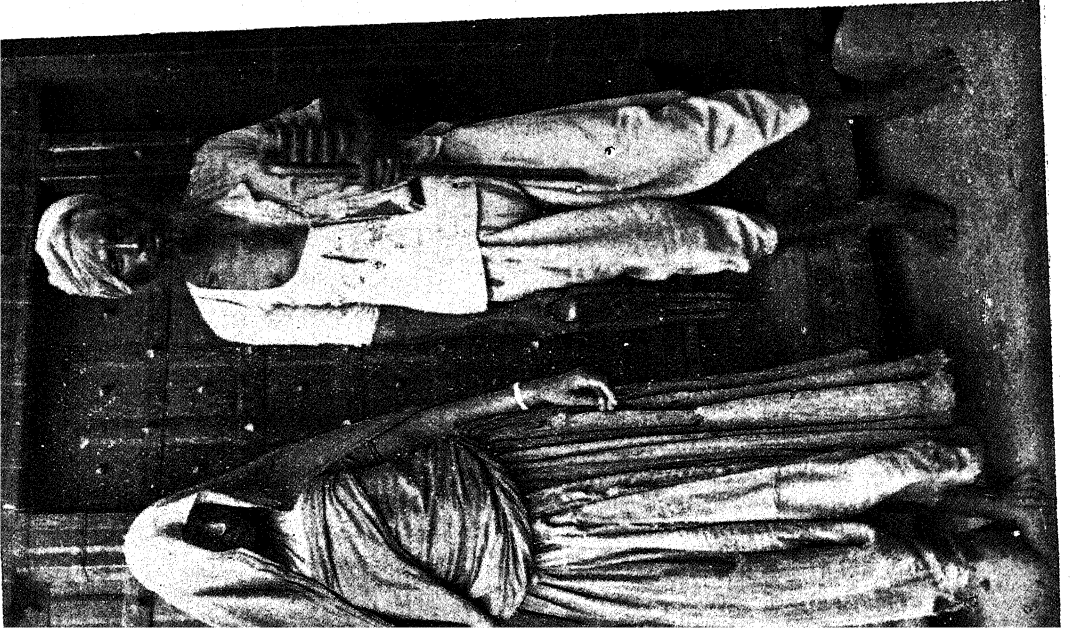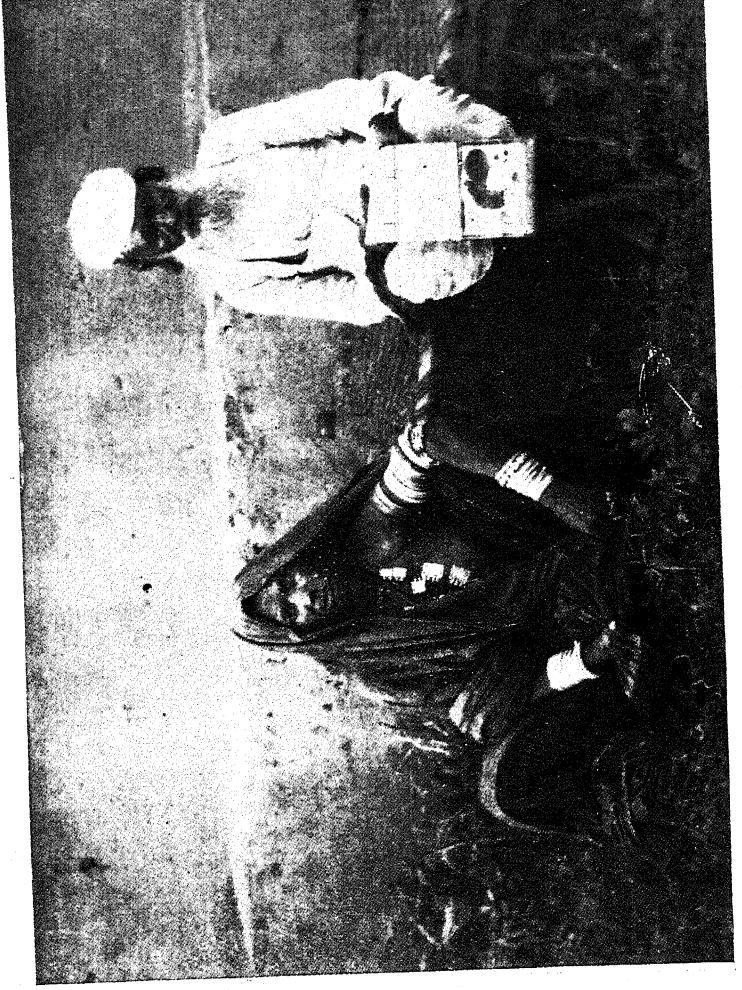
कमरया

कमरया मेघवालों तथा भाम्बियों के मसखरे होते हैं। यह लोग तम्बूरे अथवा चिकारे पर गाते हैं। यथार्थ में यह जाति भाम्बियों की ही शाखा है। भाम्बियों के साथ यह लोग खाते पीते भी हैं तथा जो भाम्बी खा सकते हैं, यह सब भी खा सकते हैं। किन्तु यह विवाह अपनी ही जाति के भीतर करते हैं। इनकी पुरोहिताई गुर्रा करते हैं। इनमें शव गाड़े जाते हैं।

कमरयों की स्त्रियाँ तेरह ताल नाम का एक राग गाने के लिए प्रसिद्ध हैं। वह भाम्बियों को प्रसन्न करने के लिए नाचना-गाना दोनों काम करती हैं। भाम्बियों की स्त्रियाँ पैरों में चांदी के अंलकार नहीं पहन सकतीं, किन्तु कमरयों की स्त्रियाँ पहन सकती है।

दवगर

दवगर एक पृथक जाति है। यह अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बतलाते हैं। जिनमें पंवार, चौहान, भाटी, देवड़ा और खीची प्रधान हैं। जो व्यक्ति जिस राजपूत वंश से सम्बन्धित है वह अब भी अपने पूर्व वंश की कुलदेवी की पूजा करता है। पूर्वकाल में इनका प्रधान व्यवसाय घी तथा रखने के कच्चे चमडे के कुप्पे-कुप्पियाँ बनाना था, किन्तु लोहे तथा टीन के ढोल और कनस्तरों के प्रचार और कांच की शीशी बोतलों ने इनका पुराना व्यवसाय नष्ट कर दिया। पूर्व काल में यही लोग ढाल भी बनाया करते थे जिनकी आज की युद्ध प्रणाली ने कोई जरूरत बाकी नहीं रखी। आजकल इस जाति के लोग कृषि करते हैं, कुछ लोग सरेश बनाने का भी कार्य करते हैं।

यह लोग यद्यपि चमारों की ही श्रेणी में माने जाते हैं, किन्तु इनका स्थान साधारण चमारों से कुछ ऊंचा है। यह चमारों, मोचियों तथा भाम्बियों के हाथों का भोजन नहीं ग्रहण करते। यह राजपूतों की ही रीतियां और प्रथाएं मानते है। और इनके संस्कारों में ब्राह्मण पुरोहिताई करते हैं, विधवाविवाह इन लोगों में भी प्रचलित है।

भंगी

हिन्दू जाति भंगी जाति के लोगों को निम्न कोटी की जाति मानती है तथा उनको बहुत ही अपवित्र समझती है। कर्नल टाड ने इनको एकदम मनुष्यता की तलछट कहा है। इनका व्यवसाय पाखाना उठाना है तथा यह सूप भी बनाते हैं। देहातों में यह लोग बहुत कम बसते हैं यह नगरों में ही रहते हैं। सर हेनरी इलियट ने इनकी उत्पत्ति पुराणों के आधार पर एक ब्राह्मण विधवा स्त्री तथा एक शूद्र जाति के पुरुष से बताई है।

भंगी, लालवेगी, खाकरोव, हलाखोर तथा मेहतर एक ही जाति के नाम हैं और सर हेनरी इलियट इन नामों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि इन लोगों में नशा खोरी की जबरदस्त आदत होती है अतः यह भंग बहुत पिया करते हैं। भंग पीने के कारण यह लोग भंगी कहलाते हैं। लालवेगी इसलिए कि यह किसी लालवेग नाम के अपने देवता की उपासना करते हैं। खाकरोव फारसी भाषा में खाक का अर्थ मिट्टी है और खाकरोव का अर्थ मिट्टी अथवा राख का साफ करनेवाला हुआ। हलालखोर इन का नाम इसलिए है की इनके लिए सब प्रकार का भोजन जायज है। वैसे मुसलमानों में हलाल करना पशु हत्या के उस ढंग का नाम है जिसमें पशु एक दम से नहीं वरन् धीरे धीरे तडपा कर मारा जाता है वैसे फारसी भाषा में हलाल का अर्थ विधिवत है तथा मेहतर फ़ारसी भाषा में राजकुमार के लिए प्रयुक्त होता है। होनजनी में इन्हें भांगी कहा जाता है। पंजाब में भंगियों को चूंडा कहते हैं और सफाई की कला में यह अद्वितीय हैं।

भंगी किसी विशेष धर्म के माननेवाले नहीं होते यह मुरदे गाडते हैं तथा लालवेग के नाम पर पशु हत्या करते हैं अथवा बलिदान चढाते हैं अर्थात् घिस घिस कर धीरे धीरे मुर्गी का गला मुसलमानी ढंग पर काटते है और मुसलमानों की भांति मृत्यु के पश्चात् तीजा मनाते है। इस प्रकार इनकी अनेक प्रथायें तो मुसलमानी हैं परन्तु यह अपने को हिन्दू मानते हैं और विवाह इत्यादि हिन्दू प्रथा के अनुसार करते हैं।

राजस्थान में भंगियों की दो जातियां हैं एक लाहौरी कहलाते है तथा दूसरे मुलतानी और दोनों एक दूसरे के साथ अन्तर्विवाह करते है। विवाह में इनके यहां सात फेरे होते हैं तथा चौरी भी होती है। इनके यहां मृत्यु की प्रथाएं भिन्न हैं यह मुसलमानों के समान चालीसवां मनाते हैं किंतु मुलतानी हिन्दुओं की भांति बारहवां मनाते है।

भंगियों में उन्हीं की जाति के उनके अपन साधू होते हैं, जो उत्पत्ति, विवाह और मृत्यु के अवसरों पर पुरोहिताई करते हैं।

अन्य जाति के लोग मांसाहारी हत्या किये गये पशु का ही मांस खाते हैं किन्तु भंगी अपनी मृत्यु से मरे पशु का भी मांस खा लेते हैं। भंगियों की जाति सब जातियों से निम्न मानी जाती है किन्तु भंगी ढोलियों को अपने से भी नीचा मानते हैं। भंगी सब जातियों की जुठन खाते हैं किन्तु ढोलियों का छुआ भी नहीं खाते और साँसी भंगियों की भी जूठन खाते हैं। अतः भंगी निकटतम होते हुए भी साँसियों से ऊँचे है।

राजस्थान के भंगियों की एक विशेषता है कि यदि किसी सार्वजनिक भोज में उनको आमंत्रित किया जाय तो वह वहां भोजन न करेंगे। यद्यपि उसी समाज

की जूठन वह खा लेंगे। कहावत है कि महाराजा तखतसिंह के स्वर्गवास के अवसर पर जब बृहत भोज हुआ तब केवल भंगी ही ऐसी जाति थी जिसने उस समय तक भोजन करना स्वीकार नहीं किया जब तक उसे सोने की झाड़ू और टोकरी नहीं दी गयी।

भंगी अपने वंश के भीतर विवाह नहीं करते। वह जीवित पत्नी की बहन के साथ भी विवाह नहीं करते यद्यपि पत्नी एक पति छोडकर दूसरा पति कर लेने का अधिकार रखती है। ऐसी परिस्थिति में त्यक्त पति हरजाने के रूप में एक सौ चालीस अथवा एक सौ पचास रुपया प्राप्त करता है। भंगी जाति में यदि दुष्चरित्रता से किसी स्त्री के सन्तान उत्पन्न हो जाती है तो वह जाति से बाहर कर दी जाती है और यदि उस सन्तान के पिता का पता चल गया तो वह उस स्त्री तथा सन्तान दोनों के आजीवन भरण पोषण का उत्तरदायी किया जाता है।

भंगियों में अनेकों वँश हैं, किन्तु जितने राजस्थान में बसे हैं उनकी सूची निम्नलिखित है :

१. लखन	२. गोपाल	३. जंगरा
४. तम्बोली	५. जाँजौरो	६. दनोरिया
७. उगच	८. छावा	९. सरसार
१०. वन्द	११. गूँड	१२. रेल
१३. तेजे	१४. जिंदा	१५. मीगा
१६. पामट	१७. ढिकिया	१८. छवरिया
१९. चन्दनलिया	२०. चन्नलिया	२१. गुजराती
२२. भट्टू	२३. भीमन	२४. ढगरिया
२५. धनवार	२६. गुडवार	२७. हतवार
२८. दावरा	२९. अदीवाल	३०. किलाना
३१. धारू	३२. उमरवाल	३३. चंगरा
३४. चहाऊ	३५. गमलगुच्छ	३६. सोंखत
३७. करेलिया	३८. पंडत	३९. भरिया
	४०. चन्नरिया	

गोला

गोला का शब्दार्थ है दास। यह जाति राजस्थान के राजपूतों की अवैध्य सन्तानों का एक सम्प्रदाय है जो परम्परागत उनकी आजन्म सेवा करता चला आया है। यह राजस्थान के प्रत्येक परगने में बसे हैं और इन लोगों में उतने ही वंश हैं जितने कि इन लोगों के पितामा राजपूतों में।

इनमें के वह लोग जो किसी प्रकार भी किसी राजपरिवार से सम्बन्धित हैं वह निम्नश्रेणी के मुतसद्दियों से सम्बन्धित लोगों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते। यह लोग राजपूतों की ही प्रथाओं पर चलते हैं। इन लोगों में नाता-प्रथा अथवा विधवा विवाह प्रचलित है।

जोधपुर में इन लोगों को लोग शहरी सरदार कह कर पुकारते हैं। सम्भवत: इसलिए कि यह लोग नगरों में ही बसना पसन्द करते हैं। इनका साधारण नाम चाकर है। कहीं-कहीं इनको लोग दारोगा, खवास, पासवान अथवा चेला भी कहते हैं। पश्चिमी राजस्थान में लोग इनको वजीर कहते हैं। और मेवाड में यह दास कहलाते हैं।

गोलों की जाति जारज जाति मानी जाती है। यह राजपूतों में अपना विवाह सम्बन्ध नहीं कर सकते। कर्नल टाड ने कहा है कि गोला केवल गोली के साथ विवाह कर सकता है। नीच से नीच राजपूत गोले की समानता के किसी राना के साथ भी अपनी पुत्री का विवाह करने को राजी न होगा। राजाओं तथा उनके सरदारों के विवाहों में यह लोग उनकी स्त्री सहित दहेज में दे दिये जाते हैं।

जिस प्रकार साधारण रूप से गुलाम अपने प्रभुओं के प्रति अविश्वसनीय माने जाते हैं उसी प्रकार गोला ज़ाति के लोग भी राजस्थान में अविश्वसनीय प्रसिद्ध हैं। उनके आचरण के सम्बन्ध में राजस्थान में निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है:

गोला किन सूं गुन करे औगुन गारा आप
माता उनकी खापली तेरह चौदह बाप ॥

अर्थात् गोला किसी का उपकार नहीं कर सकता वह स्वयं हरामी होता है। उसकी माता चरित्रहीन होती है अत: उसके दर्जनों पिता होते हैं।

रजिया नाम के सुप्रसिद्ध कवि ने उनके सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा लिखा है:

गोला धना नजीक रजपूतन आदर नहीं।
उन ठाकुर री ढीक रन में परशी राजिया।

इसका अर्थ यह हुआ कि जो ठाकुर गोलों को अधिक निकट रखता है राजपूतों में उसका आदर नहीं होता तथा उनका यथार्थ मूल्य रण के अवसर पर ही जाना जाता है।

सर हेनरी इलियट गोलों की जाति को एक नीची जाति मानते हैं। उनके सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित उक्ति उद्धृत की है:

जाट गडरिया गूजर गोला
इन चारों का हेला मेला ॥

गोला

भंगी
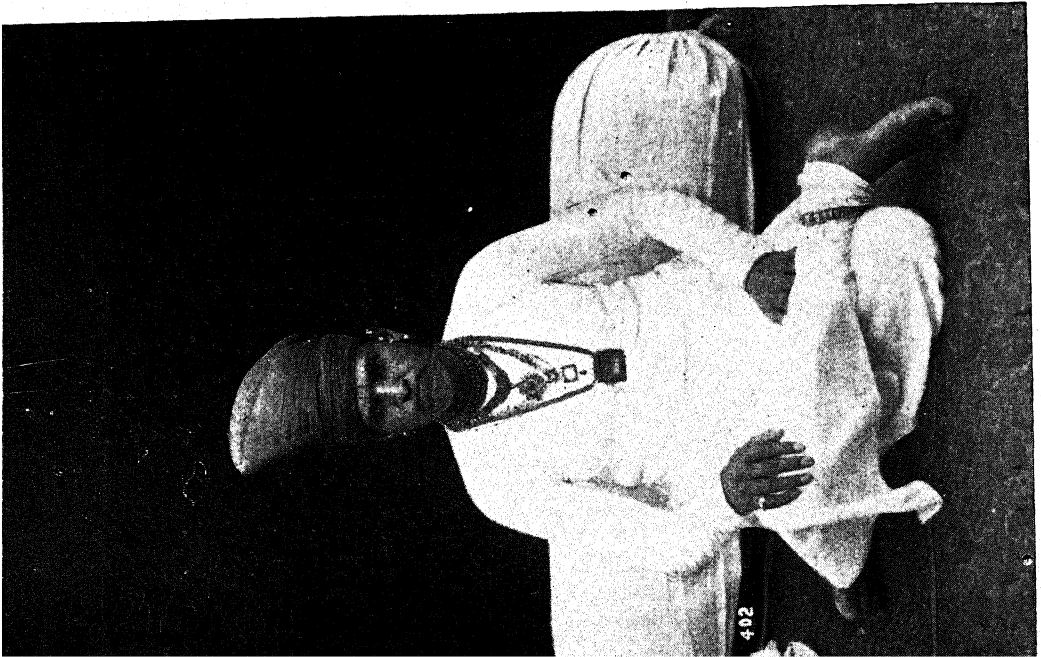
नाजर

बारी

अर्थात् जाट गडरिया गूजर और गोला यह चारों एक ही प्रकार के लोग होते हैं।

राजस्थान के आँवा राज में गोला जाति के लोगों को घोडे पर चढ़ने की आज्ञा नहीं है। कहावत प्रसिद्ध है कि किसी युद्ध में एक ठिकाने का ठाकुर घायल होकर अपने घोडे पर से गिर पड़ा। उनके साथ का गोला अपना घोडा भगा ले गया और यह समाचार प्रसारित कर दिया कि उसके स्वामी का शरीरान्त हो गया। थोड़ी ही देर में वह ठाकुर जीवित पाये गये और उनका गोला बेइमान घोषित किया गया।

गोला जाति की स्त्रियाँ गोली कहलाती हैं। इनसे प्रधान रूप से बाँदियों का काम लिया जाता है और कर्नल टाड का कथन है कि ये स्वतन्त्रता के विनाश का एक बड़ा कारण होती हैं। राजस्थान में राजघरानों में काम करनेवाली गोली स्त्रियाँ दावड़ी कहलाती हैं। जयपुर में इनका नाम वदारन है और बूंदी में यह बाई कहलाती हैं। अन्य स्थानों में इन्हें मानस भी कहते हैं। कभी कभी यह धात्री का व्यवसाय भी करती हैं किन्तु बहुधा यह बड़े बड़े सरदारों और रईसों की रखेलियाँ बनकर परदे में रहने लगती हैं और इनके पतियों तथा माता पिता को इनके मूल्य स्वरूप लम्बी लम्बी रकमें प्राप्त होती हैं।

जो दावड़ी स्त्रियाँ इस प्रकार रखेली बन जाती हैं वह परदायत कहलाती हैं अर्थात् परदे में रखी हुई। इसे परदा घालना अथवा सोना फेटाना भी कहते हैं। ऐसी अवस्था में उनके घरवालों को सोना दिया जाता है फिर वह अपने सम्बन्धियों से मिलने नहीं जाने पातीं। इस प्रकार की स्त्रियों के नाम के साथ राईजी अथवा रज्ज़ी शब्द जोड़ दिया जाता है। जब इन परदायत स्त्रियों की उन्नति होती है तब यह पासवान कहलाने लगती है और इनका आसन अथवा स्थान रानियों के ठीक नीचे हो जाता है। जोधपुर में कुंजबिहारी जी का मन्दिर गुलाब सागर सरोवर गिरदीकोट तथा मैला बाग महल गुलाब राईजी नाम की एक पासवान के स्मृति चिह्न है।

नाजर

कर्नल टाड के कथनानुसार नाजर अथवा हिजडे वह लोग हैं जिन्हें वधिया बना कर राजाओं के अन्तःपुर पर पहरा देने के कार्य में लगाया जाता है। रनवास पर नाजरों अथवा हिजडों को पहरे पर लगाने की प्रथा हिन्दू राजाओं ने सम्भवतः मुसलमान बादशाहों से सीखी हैं और केवल जोधपुर, जयपुर तथा अलवर में प्रचलित हैं। मेवाड सिरोही और बूंदी के राज्यों में मुसलमानी प्रभाव नहीं पहुँचा था अतः वहां महलों पर इस प्रकार के पहरे की प्रथा नहीं है। जोधपुर से रानियों के साथ इन राज्यों में जानेवाला हिजडा भी रनवास में प्रवेश नहीं पाता।

यद्यपि नाजरों और हिजडों की शारीरिक परिस्थति में कोई भेद नहीं है सिवा इसके कि नाजर बचपन में ही बधिया कर दिये जाते हैं और हिजडे जन्म से बधिया के समान होते हैं। इसके अतिरिक्त हिजडे जनाने वेश में रंहते हैं और सिपाही की भांति अन्तःपुर के द्वार पर पहरा देते हैं।

नाजरों की जाति हिजडों की जाति से बिलकुल अलग है। नाजर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जाति के लोग हैं। नाजरों का दूसरा नाम ख़्वाजासरा है। नागोड निवासी मुसलमान ख़्वाजासरा अपनी उत्पत्ति मक्का निवासी हाजी विठ्ठल से मानते है।

पूर्व काल में नाजर लोगों का कार्य जनाना विभाग तक ही सीमित नहीं था वह शासन का कार्य भी किया करते थे। महाराजा तख़्तसिंह के शासनकाल में जोधपुर में हरकरन नाम का एक नाजर कर विभाग का अध्यक्ष था उसे उस समय के बडे-से बडे सम्मान प्राप्त थे और राज्य की ओर से ऊँचे अधिकार थे। उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत राजस्थान में प्रचलित है।

"बाहर नाचे मादरयो, माहिन नाचे नाजरयो" भावार्थ यह है कि उस समय भंडारी बहादुर मल हजूरी दफ़्तर का दारोगा था उसकी तूती बोलती थी और महल के भीतर हरकरन का बोलबाला था। हरकरन के पश्चात् जनाने महलों का मुख्य रक्षक सुखराम हुआ था। जौहरी दरवाजे के निकट एक मसजिद है जो ईदगाह के नाम से प्रसिद्ध है वह इलियास नाम के नाजर की बनवाई है।

जयपुर में नाजर नादर खोजा कहलाते हैं। नादर का अर्थ है जिर्लज्ज। मोहन नाम के एक नाजर ने किसी समय राज्य में महत्वपूर्ण कार्य किया था। कर्नल टाड के कथनानुसार महाराजा जगतसिंह की मृत्यु के पश्चात् वह अत्यन्त अधिकार सम्पन्न था।

बारी

बारी जाति का दूसरा नाम रावत भी है। यद्यपि आजकल इनका व्यवसाय पत्तियों को सीकों से गांठकर दोने और पत्तल बनाना है किन्तु पूर्वकाल में यह वैयक्तिक सेवकों का कार्य करते थे। सर हेनरी इलियट ने ब्रह्म पुराण तथा पद्म पुराण के आधार पर इस जाति को नाई पुरुष तथा तम्बाकू बेचनेवाली स्त्री से उत्पन्न माना है किन्तु राजस्थान के बारी अपनी उत्पत्ति राजपूतों से बताते हैं और अपनी वंशावली राव डोहारजी के छोटे भाई के साथ जोड़ते हैं। कहा जाता है कि राजा डोहारजी के छोटे भाई ने बड़े भाई का उच्छिष्ट भोजन खा लिया था अतः राजपूतों की बिरादरी ने उसे बिरादरी से बाहर कर दिया था तथा राजा ने उसी व्यक्ति की सन्तति से बारी जाति की स्थापना कर दी थी। उसके अनेक

सम्बन्धी उस जाति में आ मिले थे। उन सम्बन्धियों के नाम पर उनसे चलनेवाले वंशों की स्थापना हुई। उनके प्रमुख वंशों के नामों की सूची नीचे दी जा रही है:

१. डोहरियां	२. सोहावत	३. गेहलोटो
४. भाटी	५. देवाट	६. कुंवर
७. चौहान	८. सिसोदिया	९. पंवार
१०. गौड	११. दैया	

पूर्वकाल में इस जाति के लोग राजाओं तथा बड़े बड़े सरदारों के वैयक्तिक सेवकों का काम करते थे। वहाँ वारी बारी से उनके स्वामियों की जूठन इनके भोजन के लिए इनको मिली थी इस बात के लिए बारीदार कहलाते थे यही बारीदार शब्द संक्षिप्त रूप से बारी मात्र रह गया।

राजस्थान के राजघरों में दो अवसरों पर इनको रुपया मिला करता है एक राजगद्दी के उत्तराधिकारी के जन्म पर और दूसरे राज के किसी भी ऐसे बडे सरकार अथवा इलाकेदार की मृत्यु पर जहाँ राजा शोक प्रदर्शन के लिए उनके घर जाता हो। उत्तराधिकारी के जन्म पर बारी नवजात शिशु के पैर एक कपडे के टुकडे पर केसर से छाप लेता है और राजपरिवारों तथा सरदारों के घरानों में उसे दिखलाता फिरता है और प्रत्येक स्थान पर पुरस्कार पाता है और मृत्यु के अवसर पर इसलिए कि महाराज के शोकाकुल के घर जाने पर महाराजा के स्वागत में उनके मान पर वही कपडा विछाता है और पुरस्कार पाता है।

बारी शाक्त धर्म के अनुयायी हैं और राजपूतों की प्रथाएँ मानते हैं। यह शराब और मांस दोनों पीते खाते हैं। यह नाता प्रथा मानते हैं।

बारी जाति की सेवा के विषय में सर हेनरी इलियट ने लिखा है कि अवध के राजाओं की सेना में इन्होंने अच्छी सिपाही सेवा की थी। यहाँ तक कि कई एक ने राजा का पद पा लिया था। मिस्टर रीड ने लिखा है कि बारी अपनी स्वामि भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। कहावत है कि वारी अपने स्वामी पर अपने प्राण न्योछावर कर देता है।

तम्बोली

तम्बोली उन लोगों को नाम है जो पान और सुपारी बेचने का काम करते है। यद्यपि मिस्टर इबटसन के मतानुसार यह नाम जाति द्योतक नहीं वरन् केवल व्यवसाय द्योतक है किन्तु राजस्थान में यह एक स्पष्ट पृथक जाति है। वैसे तो इन लोगों में चौरासी उपजातियाँ हैं किन्तु राजस्थान में बसनेवाली प्रधान जातियां निम्नलिखित हैं:

१. कुम्भावत	२. मोरभाट	३. पिपलीवाल
४. धौंमियां	५. मोनरीवाल	

कुम्भावत तम्बोलियों का कथन है कि केवल उनका ही वंश शुद्ध रक्त है। तथा वे अयोध्या के प्राचीन निवासी हैं। राजस्थान में प्रधान रूप से नागोड़ ही में हैं तम्बोलियों के अन्य वंशों के साथ इनका अन्तर्विवाह स्थापित है जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई है।

तम्बोली गोकुल्य गुसाई के अनुयायी हैं और महाजनों की प्रथाओं पर चलते है। महाजनों के समान वधू के लिए हीरे जवाहरात भेजने की प्रथा इनमें नहीं है। इनकी स्त्रियाँ प्रधानत: लाख की चूडियां पहनती हैं वह हाथी दांत की नहीं पहनतीं। नाता प्रथा इनमें भी प्रचलित है।

राजस्थान की मरु भूमि में पान का उत्पादन असम्भव है। यहां पर पान बिल्कुल नहीं पैदा होता और दैनिक व्यवहार के लिए दूसरे प्रान्तों से इसकी आयात की जाती है इस मरु भूमि के अनेक निवासी इसके उपयोग तक से विज्ञ नहीं हैं। कहावत है कि एक बार एक ऐसे घराने की एक बालिका जहां पान का व्यवहार बिलकुल नहीं था और उसने जीवन में पान देखा सुना तक न था विवाहित होकर एक ऐसे परिवार में आ गई जहां पान के व्यवहार का खूब चलन था। वहां सत्कार स्वरूप उसे पान पर पान मिलने लगे तब उसने खीज कर कहा :

नित नित पान कांई चारा बाप की बाकरी हूं।

भावार्थ यह हुआ कि क्या मैं तुम्हारी बाप की बकरी हूं जो तुम मुझे पान पर पान देते चले जाते हो।

चितारा

चितारा वह लोग हैं जो रंगसाजी और चित्रकारी से मकानों को सजाते हैं। इस व्यवसाय में हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मिलित हैं। चितारों की हिन्दुओं में पृथक् जाति नहीं है। यह एक व्यवसाय मात्र है जो प्रत्येक जाति के हिन्दू-करते हैं। मुसलमानों में चितारों की जाति अवश्य है और वह मुलतानी लोहारों के समुदाय के व्यक्ति हैं। मुसलमान चितारों और मुलतानी लोहारों में वैवाहिक सम्बन्ध होता है। इन लोगों में नाता प्रचलित है किन्तु विधवा विवाह करनेवाले को विधवा के मृतक पति के सम्बन्धियों को कुछ देना नहीं पड़ता। मुसलमान चितारा अपनी जाति के अन्तर्गत तथा अपने ही वंश में नाता कर सकता है। इनकी स्त्रियाँ घर पर पायजामा पहनती हैं और जब बाहर जाती हैं तब पेटीकोट पहनती हैं और लाल लुंगी भी पहनती हैं।

बेलदार

बेलदार जाति का काम खुदाई करना है। राजस्थान में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही जाति के बेलदार बसते हैं। यह धरती खोदना तथा पत्थर तोडने का व्यवसाय
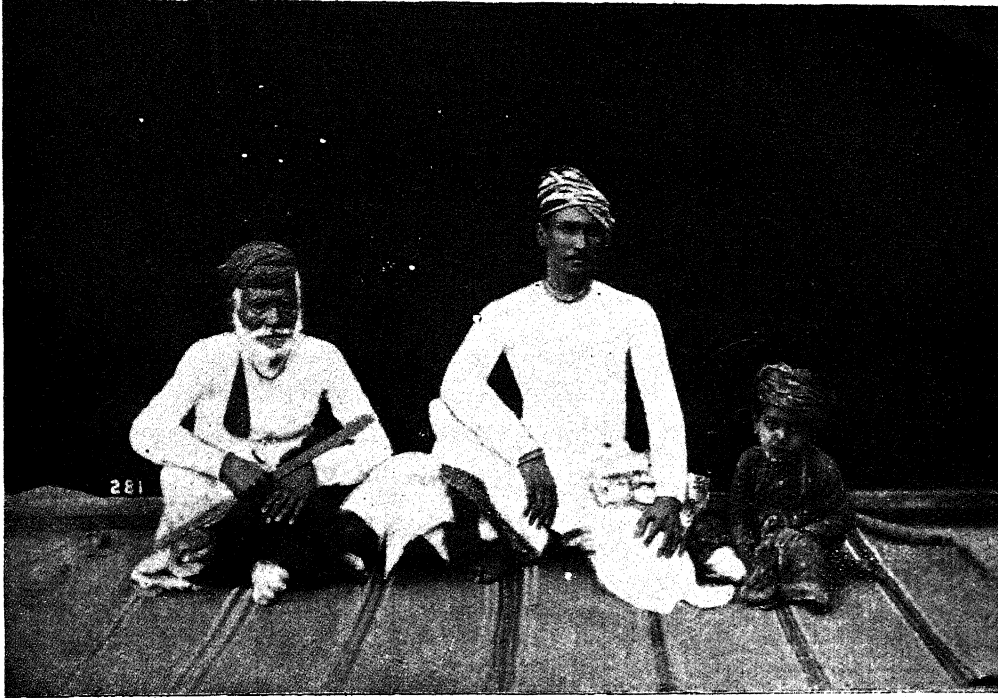
तम्बोली

चितारा
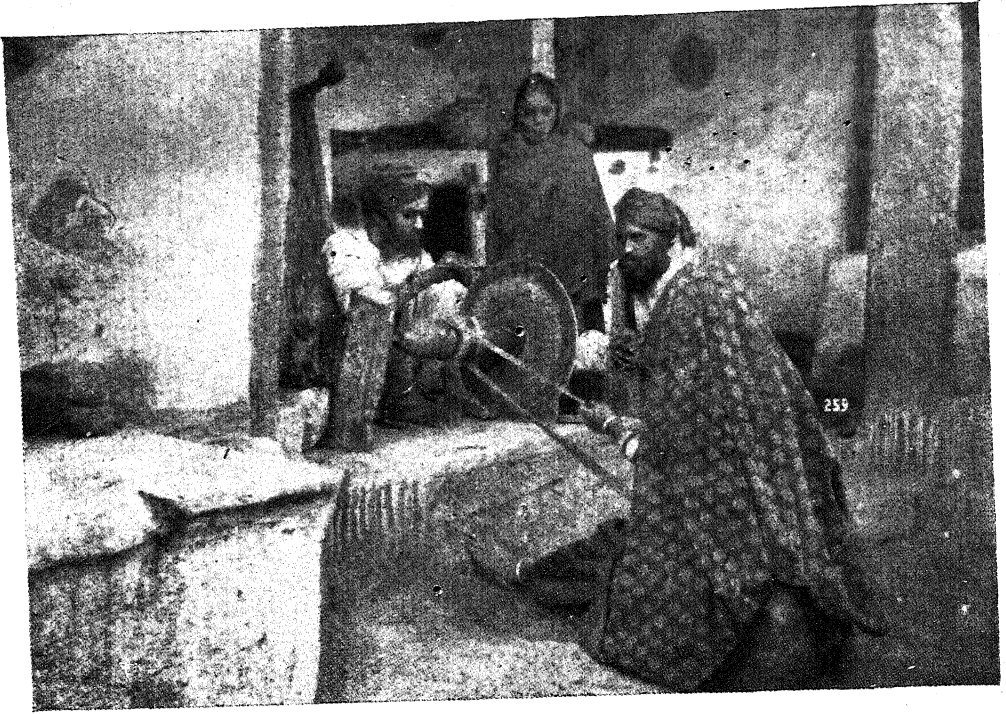
सिकलीगर
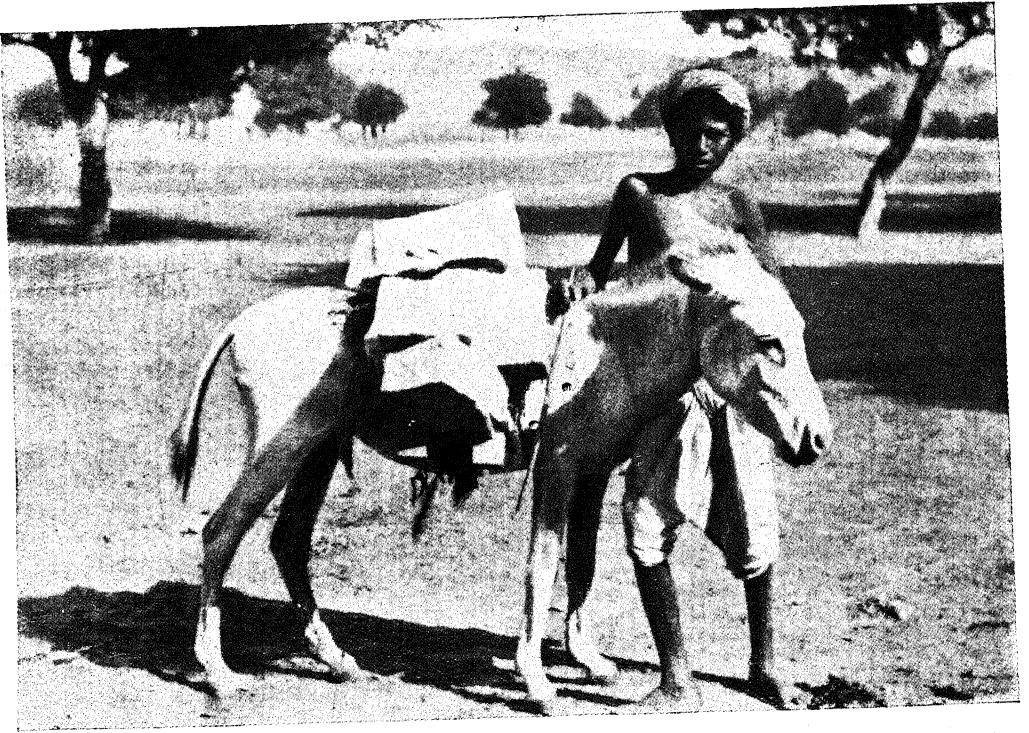
बेलदार

करते हैं। बेलदार जाति यथार्थ में पूर्वकाल में ओड नाम की विचरनेवाली जाति के लोगों से है। यह लोग अपनी जाति को भागीरथ नाम के उस व्यक्ति के उत्तराधिकारी बतलाते हैं जिसने मिस्टर इबटसन के कथनानुसार एक ही कूप का दोबारा पानी न पीने की शपथ की थी अतः वह एक नवीन कूप प्रत्येक दिन खोदा करता था यहां तक की एक दिन वह गहरा खोदते खोदते इतना गहरा चला गया कि ऊपर नहीं आया। उसी के शोक प्रदर्शन में यह लोग सदा ऊनी वस्त्र पहनते हैं तथा हिन्दू होते और अपने विवाह संस्कार आदि हिन्दू प्रथा से करते हुए भी अपने शव गाडते हैं। परन्तु राजस्थान निवासी बेलदार अपने शव जलाते हैं। कहा जाता है कि राम ने लंका पर चढाई करने के लिए जब समुद्र पर पुल बांधा था तब इस लोगों से भी काम लिया था। इन लोगों ने ही पुश्कर नाम की झील राजा नाहर राव परिहार के शासन काल में खोदी थी तथा पुष्करना नाम की एक नवीन ब्राह्मण जाति की उत्पत्ति की थी। यह पुष्करना ब्राह्मण उस घटना की स्मृति में आज भी कुदारी की पूजा करते हैं।

सर हेनरी इलियट बेलदारों की जाति की उत्पत्ति एक तयूर मल्लाह तथा एक अहीर स्त्री से बतलाते हैं किन्तु राजस्थान की बेलदार जाति में जाति च्युत राजपूत भरे पडे हैं। इन उपजातियों के नाम भी राजपूती नाम हैं।

यह लोग चामंडा माता के उपासक हैं तथा वज्र शराबी। इन के यहां विवाह के अवसर पर वर का पिता कन्या के पिता को साठ रुपये देता है। नाता के समय वर की ओर से केवल चालीस रुपये दिये जाते हैं। इन में विवाह तथा नाता गोत्र बचाकर किया जाता है और इनकी स्त्रियाँ हाथी दांत के चूडे नहीं पहनतीं। बेलदारों में यमुना नाम की ओडनी स्त्री हो गई है जिसका नाम आज भी विख्यात है। कहा जाता है कि गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने उसे उसके पति के सहित पाटन में एक सरोवर निर्माण करने पर नियुक्त किया था। वहां राजा यमुना पर आसक्त हो गया और अपने रनवास में आने के लिए उसने उसे आमंत्रित किया किन्तु यमुना ने इसे अस्वीकार किया तथा स्वयं आत्महत्या से अपने प्राण नष्ट कर दिये। साथ ही उसने राजा को शाप दिया था कि उस सरोवर में जल कभी न ठहरेगा और यथार्थ में आज तक उसमें जल नहीं ठहरता है।

सिलावट

सिलावट पत्थर निर्माण का कार्य करनेवाले कारीगर होते है। पत्थर काटने का काम करनेवाले संगतरारा कहलाते हैं। यह लोग चक्कियों के पाट भी बनाते हैं।

जान पडता है कि सिलावट शब्द शिल्पवत् का अपभ्रंश है। शिल्पवत् शिल्प शास्त्र अर्थात् निर्माण कला के शास्त्र के जाननेवाले को कहा जायगा। सिलावटों का दूसरा नाम सूत्रधार भी है और यह नाम सम्भवतः इसलिए हुआ कि नापने इत्यादि के लिए यह लोग सूत की पतली डोर अपने पास रखते हैं। आजकल सूत्रधार एक स्मरण

सूचक शब्द है और निर्माण कार्य के निरीक्षण कर्त्ताओं के लिए प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी शब्द ओवरसियर तथा राजस्थान का शब्द गजधर• पर्याय. अर्थवाची शब्द है।

सिलावटों के व्यवसाय में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही धर्म के लोग हैं। हिन्दू सिलावटों की कोई पृथक जाति नहीं है। सब ही जाति के यह व्यवसाय करते हैं जिनमें कुम्हार, माली और मेहरा जाति के लोक अधिक हैं।

सिलावटों में सोमपारा नाम की एक अलग ही जाति के लोग है जो मंदिरों के निर्माण का व्यवसाय करते हैं। यह लोग अपने को ब्राह्मण मानते है और जनेऊ पहनते हैं यह मांस तथा मदिरा किसी का भी व्यवहार नहीं करते। यह अपनी जाति के भीतर ही विवाह करते हैं। मारवाड में इनके निम्नलिखित वंश बसते हैं:

१. वलेचा २. मोनावत ३. वोरावत ४. कलावत
५. वरकाना ६. कोपल्य ७. गदा

गुजरात प्रान्त के सोमनाथ स्थान से यह लोग मारवाड आये इसीलिए इनका नाम सोमपुरा पडा। यह लोग अपनी कला के अच्छे जानकर माने जाते हैं। आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिर इन्हीं लोगों के हाथों के निर्मित समझे जाते हैं। यह अच्छे चित्रकार तथा रंगसाज होते हैं।

सोमपुरिया सिलावट सोमनाथ महादेवके उपासक हैं। उनकी स्त्रियां हाथी दांत के चूडे पहनती हैं। विवाह काज के अवसरों पर यह लाल रंग का घाघरा पहनती हैं। इन लोंगों में श्वसुर और जामातुर एक साथ भोजन नहीं कर सकते यद्यपि साले बहनोई एक साथ भोजन कर सकते हैं।

जोधपुर के मुसलमान सिलावट सुनी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। इनकी जाति के दो विभाजन हैं। एक मरतिया कहलाते है और दूसरे नागौडी। यह दोनों नाम इसलिए इनके पडे कि पूर्व में यह इन्हीं स्थानों के निवासी थे और वहां से आकर जोधपुर में बसे थे। इन दोनों विभाजनों में एक बडी संख्या जाति भ्रष्ट राजपूतों की भी सम्मिलित है।

मरतिया सिलावटों में निम्नलिखित शाखायें हैं।

१. खट्टाई २. भेलिय ३. ताजक ४. खिलजी
५. चौहान ६. सिसोदिया ७. सुलंखी ८. वदगूजर

उपरोक्त शाखाओं में प्रथम चार तो आरम्भिक मुसलमान हैं और अन्तिम चार धर्म भ्रष्ट राजपूत। नागोड़ी सिलावटों में निम्नलिखित शाखाएँ है—

(१) खत्री (२) भट्टा (३) चौहान (४) गौड़
(५) तम्बर (६) सिसोदिया (७) खीची

तम्बर राजपूत अपने को दिल्ली के सिंहासन का अधिकारी मानते हैं और राजा अनंगपाल तम्बर को मतहीन समझते हैं जिसने सर्पराज के मस्तक में गडी कीली

उखडवा डाली थी और अपने राज्य का नाश कर डाला था। मुसलमान सिलावट कीली के गाडे जाने की तिथि अब भी मनाते हैं और इसी शोक स्मृति में पृथ्वी पर सोते हैं चारपाई का उपयोग नहीं करते। इन के यहां विवाह के अवसर पर दूल्हा इसी कारण से घोडे पर नहीं चढता

मुसलमान सिलावत मुसलमानों की साधारण प्रथाओं पर चलते हैं। यह अपने ही वंश से विवाह नहीं करते। आवश्यकता पडने पर अपने निकटतम सम्बन्धी के पुत्र को गोद ले लेते हैं। यह कच्चे वस्त्र नहीं पहनते और इनकी स्त्रियां लाख की चूडियां नहीं पहनतीं।

सिकलीगर

सिकलीगर लोहे के औजारों को पालिश करने तथा उन पर धार करने का व्यवसाय करते हैं। राजस्थान में यह लोग खरनिया कहलाते हैं। यह लोग लोहारों की ही एक शाखा हैं। किन्तु यह गडिया अथवा मालविया लोहारों में विवाह सम्बन्ध नहीं करते। यह कन्नौज को अपना पूर्व निवास स्थान कहते हैं और कहते हैं कि यह लोग राव सियाजी के साथ राजस्थान आये थे।

यह लोग शक्ति के उपासक है। कुछ लोग आईजी की भी पूजा करते हैं और अपने शव गाडते हैं। इनमें विधवा विवाह प्रचलित है।

गनछा

गनछा जाति का व्यवसाय टोकरी बनाना है। गनछा जाति को पूर्व वर्णित गनछी जाति में समझने की भूल न की जाय तो जैसा पहले लिखा जा चुका है गंछी जाति तेल के व्यवसायी हैं और गनछा जाति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

गनछा जाति का कथन है कि पूर्व में यह लोग राजपूत थे और उनमें नौ जातियां थीं किन्तु उन नौ जातियों में से केवल निम्नलिखित छः जातियों का पता लगता है :

१. सुलंखी	२. परिहार	३. भाटी
४. सिसौदिया	५. पंवार	६. रौठोर

कहा जाता है कि यह लोग गुजरात से मारवाड आये थे किन्तु यह वहां के गनछों के साथ अन्तर्विवाह नहीं करते कारण वह लोग मांस मदिरा का व्यवहार नहीं करते और राजस्थान के गनछे मांस मदिरा भक्षी होते हैं।

यह लोग शैवी हैं और विछरा माता के उपासक हैं। कहा जाता है कि गुजरात पर मुसलमानी आक्रमण के अवसर पर विछरा माता नें ही इनकी रक्षा की थी।

विवाह में गनछाओं के यहां केवल चार फेरे फिरे जाते हैं। विधवा विवाह प्रचलित है। किन्तु अपना वंश बचाकर। राजस्थान में यह कृषि करते हैं किन्तु गुजेरात में यह केवल अन्न बेचने का व्यवसाय करते हैं।

बावरी

राजस्थान की जंगली जातियां में बावरी का स्थान प्रधान है। मेवाड में यह लोग मौधिया और धार में बोहरा कहलाते है। यह अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं और इनके वंशों के नाम भी राजपूती हैं। इनके नाम की उत्पत्ति पानी की बावडी के आधार पर की जाती है। कप्तान एम. जे. भीड ने इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित कहानी लिखी है :

एक बार गुजरात के उच्चकुल की कन्या को राजपूतों की टुकडी दिल्ली के रनवास में पहुंचाने जा रही थी। मार्ग में यह लोग एक पक्की बावडी के पास विश्राम करने के लिए ठहरे। वहां एक राजपूत कन्या ने इस राजकुमारी को देखा और उसकी भावी दशा से उसे अवगत कराते हुए उसे बहुत धिक्कारा। राजकुमारी ने अपने प्राण दे दिये। राजपूत संरक्षकों की उस टोली के सम्मुख जो राजकुमारी को देहली छोडने जा रही थी एक भारी समस्या उपस्थित हो गई। बिना राजकुमारी के अब वह अकेले दिल्ली जाने का क्या अपने राज्य को वापस जाने का भी उनमें साहस न था। लाचार वह वहीं रह गये और दस्युवृत्ति पर उतारू हो गये जिसके कारण पास पडोस में वह बदनाम हो गये। पहले ये लोग बावडी वाले कहलाये किन्तु धीरे धीरे उनका नाम बदल कर बावडी मात्र रह गया।

पंजाब में इसी बावडी के लोग ववरिया कहलाते हैं। मिस्टर इवटसन ने इनको शिकारियों की एक जाति लिखा है और नाम के शब्द की उत्पत्ति वावर शब्द से मानी है। वावर उस फंदे का नाम है जिसमें यह लोग जंगली जानवरों को फंसाया करते हैं।

मिर्जापुर जिले में यह लोग विचित्र प्रकार का जीवन निर्वाह करते हैं। कृषि की फसल उपजाने की इन की रीति बडी ही अनोखी है। मिस्टर शेरिंग ने लिखा है कि वर्षा काल के आरम्भ के पूर्वी जंगलों में लकडी काटी जाती है और उसे जला कर खाक कर दिया जाता है। बीज बोने के समय वह उसी राख के साथ बीज मिला कर धरती पर विखरा देते है। कृषि की विधि वावनरा कहलाती है। सम्भवतः इसी शब्द के आधार पर इस जाति का नाम वावरिया पड गया है।

बावरियों का प्राचीन निवास स्थान राजस्थान माना जाता है। मिस्टर शेरिंग के मतानुसार इनकी तीन प्रधान उपजातियां हैं। (१) मालवीय (२) खेरारा और (३) मारवाड़ इनमें से कोई किसी के साथ खाता पीता अथवा विवाह सम्बन्ध नहीं करता है।

वावरी यद्यपि एक नीची जाति है किन्तु है वह हिन्दू ही। यह धोती पहनते हैं और इनके विवाह तथा मृत संस्कारों में ब्राह्मण काम कराता है। यह हिन्दुओं के

गनछा

बावरी

सांसी
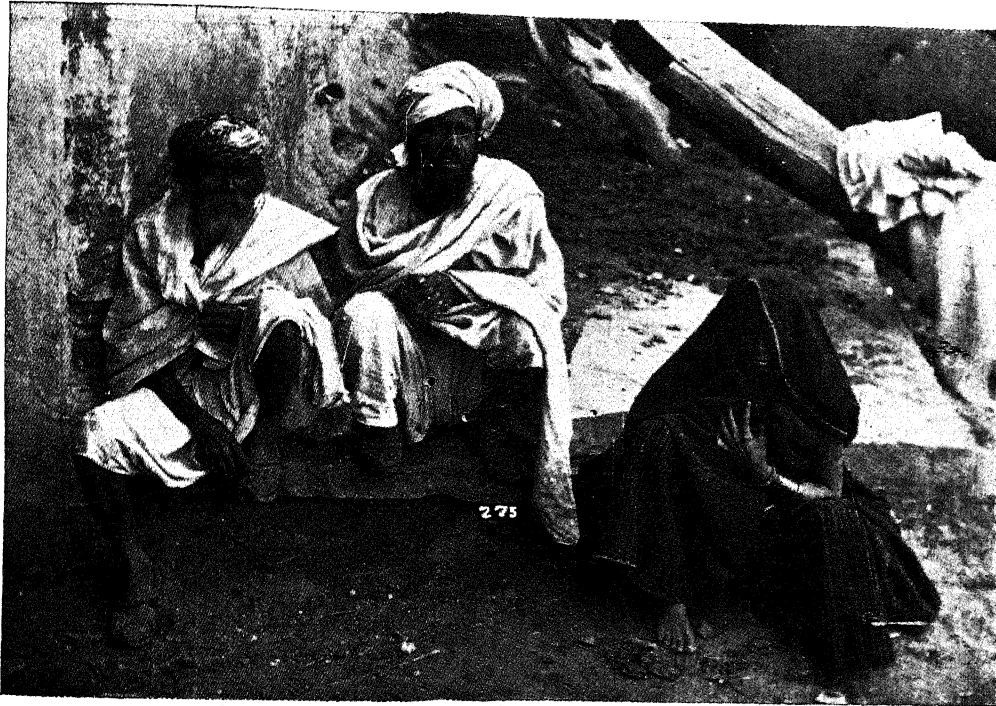
ठोरी

समस्त देवताओं को मानते हैं और गौ के भक्त हैं । गौ भक्त के साथ ही साथ यह पीपल वृक्ष का भी सम्मान करते हैं । यह लोग एक गौ मांस छोडकर शेप सब पशुओं का मांस खाते हैं तथा मदिरा पान करते हैं । इनका वेशभूषा संस्कार तथा मंगनी और विवाह इत्यादि की सम्पूर्ण प्रथाएं हिन्दुआनी हैं। इनकी भाषा अलग है और आपस में बातें करने में यह इसी अपनी भाषा में बातें करते हैं। इनकी यह भाषा कोई बाहरी व्यक्ति समझ नहीं सकता।

बावरी जितने भी विवाह चाहे उतनें कर सकता है और इनकी विधवायें नाता कर सकती हैं । स्त्री अपने पति को तथा पति अपनी स्त्री को एक दूसरे का नाम लेकर सम्बोधित नहीं करते। स्त्री अपने पति से बडे अपने परिवार से किसी भी व्यक्ति का नाम अपने मुंह से नहीं ले सकती।

वावरियों की जातीय वृत्ति दस्युता है। यह लोग लूट पाट से ही अपना जीवन चलाते हैं किन्तु यह अपनी शपथ के बडें पक्के होते है और पीपल वृक्ष के नीचे जो शपथ यह ग्रहण करतें हैं उसे कभी नहीं भंग करते। यह शकुन अपशकुन का बहुत विचार करते हैं विशेषत: उस समय जब यह लूट मार करने जा रहे हों। इन शकुन विचार के सम्बन्ध में मिस्टर मीड ने निम्नलिखित कहानी लिखी है

जब यह लूट पाट करने जा रहे हों उस समय यदि मलारा नाम के सफेद रंग का पक्षी प्रात: काल दाहिने मिल जाय और सायंकाल को बायें मिल जाय तो उसे यह लोग बहुत अच्छा मानते हैं। रात के समय यदि गीदड बोले तो अपशकुन और यदि बायें हो तो बुरा नहीं है ।

यदि किसी व्यक्ति को चोट लग जाय और रक्त निकल आवे तो उस समय यह लूटने जाने का इरादा त्याग देते हैं किन्तु यदि चोट लगे और रक्त न निकले तो उसका कोई महत्व नहीं है। खोज करने की कला में इस जाति के लोगों की बडी ख्याति है राजस्थान में जब कहीं डकैती हो जाती है तब पैरों के निशान से डकैतों का पता लगाने का काम इन्हीं को सोंपा जाता है। कर्नल वाल्टरका कथन है कि चौकीदारी के काम पर भी यह लोग नियुक्त किये जाते हैं और इस सम्बन्ध में सम्भवत: चोर की निगरानी पर चोर के नियुक्त किए जाने का सिद्धान्त लागू है।

वावरियों का प्राचीन इतिहास दस्युता के कारनामों से भरा पडा है किन्तु अब यह लोग कृषि कार्य में पडने लगे हैं । राजस्थान में सन् १८८७ से इनको सुधारने कें लिए एक पृथक विभाग कार्य कर रहा है जो इनको जमीन इत्यादि देकर तथा और भी रुपयों से इनकी निगरानी कर के इनकी दस्युवृत्ति छुडाने का उद्योग कर रहा है। इनकी अवस्था में निरन्तर उन्नति होती चली जा रही है और क्रमश: ये कृषक बनते चले जा रहे हैं।

सांसी

कहा जाता है कि इस जाति की उत्पत्ति एक व्यक्ति जिसका नाम सांसमल था और भरतपुर का निवासी था उससे हुई है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध योरोप की हूबडी जाति के साथ जोडते हैं। जोधपुर निवासी सांसियों का व्यवसाय कृषि है। सांसियों के कुछ लोग भीख मांगते हैं।

सांसियों की सामाजिक स्थिति बहुत ही नीची है। यह भंगियों से भी नीची जाति मानी जाती है क्यों कि यह उनकी जूठन खाते है। यह लोग एक प्रकार से भंगियों के चारन हैं इनकी स्त्रियां नाचती और गाती है और भंगियों का बडा सम्मान करती हैं। यहां तक कि वह उनको अपना धनी कह कर सम्बोधित करती हैं। सांसियों की जाति में जो आपसी झगडे होते है उनका फैसला वह भंगियों से कराते है किसी सांसी को यदि कोई भंगी जाति में मिल जाता है तो वह दुआ समान शब्द कहकर उनका सत्कार करता है और उत्तर में भंगी राम राम करता है। सांसी अपनी जाति को ढोलियों से अच्छी मानते है और उनका स्पर्श किया हुक्का भी ग्रहण नहीं करते।

साँसी जाति के अनेक परिवार खानाबदोशों का जीवन व्यतीत करते हैं। उनका कोई घर द्वार नहीं होता वह जंगलों में घूमते रहते है और जंगली पशुओं का आखेट कर उन्हें खाते है। इन लोगों के अनेक परिवार एक ही जगह अड्डा जमाते हैं जिसे लोग डेरा कहते हैं।

अपना सामान ढोने के लिए लोग गधे पालते है तथा यह कुत्ते, मुर्गे, बकरी भी पालते है यह पक्के चोर होते हैं और वंश परम्मरा से इनका यही व्यवसाय चला आ रहा है पंजाब में यह लोग अवैध व्यवसायी माने जाते है। यह लोग पशु चुराते है और घरों के ताले तोडते है तथा गाय बैल बकरी बेचने का व्यवसाय करते है। यह लोग बैल तथा बकरों के बधिया करने का व्यवसाय भी करते है तथा घास भी बेचते है। इनका शस्त्र एक प्रकार का गडासा होता है जिसे यह सदा अपने पास रखते हैं और उसी के प्रहार से आवश्यकता पडने पर यह अपनी रक्षा करत है।

यद्यपि सांसियों की कोई जाति नहीं मानी जाती किन्तु यह लोग हिन्दू है वे माता के उपासक हैं तथा होली और दीवाली के अवसर पर बकरों की बलि भी चढाते है यह नीम, पीपल और बरगद के वृक्षों का सम्मान करते हैं तथा जरूरत पड़ने पर उन्हीं की शपथ भी ग्रहण करते हैं। यह शराब पीते हैं और सब प्रकार के जंगली जानवरों का मांस भी खाते हैं। यह लोमडी और सांड के मांस के बड़े शौकीन होते है यह खरगोश को कभी भी नहीं मारते और उसका कारण यह बताते हैं कि मारवाड़ी भाषा में खरगोश का नाम सुस्सा है तथा उनकी जाति के व्यवस्थापक का नाम सारुमल है। अतः दोनों नामों में एक प्रकार का सामंजस्य है। हिन्दुओं में

यह जाति नितान्त अपवित्र मानी जाती है। यह लोग प्रत्येक जाति के व्यक्ति को अपनी जाति में मिला सकते हैं।

राजस्थान के सांसी दो उपजातियों में विभाजित हैं। १. बीजा कहलाते है तथा २. माला। इन दोनों में अंतर्विवाह होते है किन्तु कोई उपविभाजन अपने भीतर विवाह नहीं करता। इन उपविभाजनों में अनेक वंश है और जो वंश राजस्थान में निवास करते हैं उनकी तालिका नीचे दी जाती है।

१. चिरदानी	२. चन्डूला	३. बोपाल
४. जसपाली	५. रामासनी	६. रावर
७. जमालिया	८. सीवल	९. बाना
१०. डौलिया	११. सरदिया	१२. रघेना
१३. हरदा	१४. लुंगा	१५. देवडा
१६. दसानी	१७. हिमानी	१८. दैया
१९. मूरत	२०. मोचरा	२१. कोपच
२२. रायचंद	२३. मोइला	२४. हकरिया
२५. मेमाड	२६. बारजंग	२७. बनावटी
२८. बीथू	२९. सामलका	३०. मेमायत
३१. कालरा	३२. थल्या	३३. हिमानिया
३४. राजावत	३५. कुचरावत	३६. सरन
३७. असनावत	३८. भोगावत	३९. विन्दावत
४०. टोलावत	४१. मुनावत	४२. सुलंखी
४३. कलक	४४. बीजावत	४५. पुचीवाल

सांसियों की भाषा एक अलग ही है किन्तु राजस्थान के सांसी मारवाड़ी बोलते हैं और प्रान्त के सांसियों के साथ विवाह सम्बन्ध भी नहीं करते। वह नीच जातियों की वेश भूषा में रहते हैं। उनकी स्त्रियाँ सर, कान, नाक, बाँह तथा पैरों में पीतल और जस्त के अलंकार पहनती हैं। वह लाख तथा कांच की चूड़ियां पहनती हैं। इनकी विधवाएँ कोई अलंकार नहीं पहनतीं।

सांसियों में विवाह सम्बन्ध वर और कन्या के माता पिता निश्चित करते हैं। इन लोगों में सगाई की नीति यह है कि जब विचरनेवाले दो विभिन्न वंश के परिवार किसी एक स्थान पर मिल जाते हैं तब उनमें सगाई निश्चित हो जाती है और गरी के गोले के लेन देन से यह पक्की मानी जाती है। वर का पिता कन्या के पिता को एक सौ बीस रुपया देता है जो चाहे नकद दे दिया जाता है अथवा कुछ नकद दिया जाता है और कुछ गधे देकर अदा किया जाता है। अन्य

हिन्दुओं की भाँति सांसियों में विवाह की कोई प्रणाली निश्चित नहीं है उनके विवाह की तिथि विवाह करनेवालों की इच्छा पर होती है। इन लोगों में तोरण अथवा चौरी की प्रथा नहीं है। इनमें लकड़ी का एक खंभा गाड़ा जाता है जिसके ऊपर घास बाँध दी जाती है और वर कन्या उसी के चारों ओर सात बार घूमते हैं। इनके विवाह में ब्राह्मण की आवश्यकता नहीं पड़ती। गठजोड़ा या तो बहन कर देती है अथवा वधू का भाई। विवाह के पश्चात् वर और वधू साथ बैठकर भोजन करते हैं। एक रोटी के चौदह टुकड़े किये जाते हैं जो दोनों मिलकर खा डालते हैं। इसके पश्चात् न्यौता उगाहा जाता है और वर को दे दिया जाता है। वर वधू को साथ लेकर अपने घर चला जाता है। विवाह के अवसर पर यह न तो कोई पशु मारते हैं न मांस खाते हैं। दहेज में इन लोगों में एक मिट्टी का गधा, एक मिट्टी का बरतन, एक जीवित गधा, दो बोरे और एक पीतल अथवा लकड़ी की तश्तरी दी जाती है। मिस्टर इबटसन ने पंजाब के सांसियों की वैवाहिक विधि का वर्णन किया है जो बड़ा विचित्र है। वहां वधू को बैठाकर उस पर एक टोकरा ढक दिया जाता है और उस टोकरे के ऊपर वर को बैठाकर विवाह की रीतियाँ सम्पन्न की जाती हैं।

राजस्थान के सांसियों में विधवा विवाह प्रचलित नहीं है किन्तु मृतक भाई की स्त्री को दूसरा भाई बैठा ले सकता है। सांसियों में स्त्रियों के चरित्र को बड़ा महत्व है। यदि कभी कोई सांसी किसी विवाहिता स्त्री से अवैध्य रूप से सम्बन्धित पकड़ा जाता है तो वह तुरन्त अठारह महीनों के लिए जाति से च्युत कर दिया जाता है। इस अवधि की समाप्ति पर जब वह अपनी जाति भर को एक भोज देता है तब जाति में सम्मिलित किया जाता है। उसका दंड इतने ही तक सीमित नहीं है बल्कि बिरादरी भर के पुराने जूते पीठ पर लाद कर उसे चलना पड़ता है और रोटियाँ पकाकर उन्हें सुखाकर पीस कर तथा उसमें मिठाई मिलाकर लड्डू बनाए जाते हैं जिसे वह लोग चूरण कहते हैं वह लड्डू फेंककर उससे मारा जाता है। कदाचित् स्त्री दूसरे वंश की हुई तो कठोर दण्ड नहीं दिया जाता केवल एक हल्का जुर्माना कर दिया जाता है।

साँसियों की मृतक संस्कार की प्रथाएँ अन्य हिन्दुओं के ही समान हैं। उनके यहां जो बच्चे मर जाते है वह तो गाड दिये जाते है शेष सब फूंके जाते हैं। यह तीजा मनाते हैं बारहवां नहीं मनाते। यह मृतक शव की हड्डियां उस समय तक पृथ्वी में गाड कर सुरक्षित रखते हैं जब तक कि वह बिरादरी को मृतक भोज न दे दें। मृतक भोज को यह लोग औसर कहते हैं और भोज के पश्चात् हड्डियां नदी में प्रवाहित कर दी जाती हैं।

बागडी

सिलावट
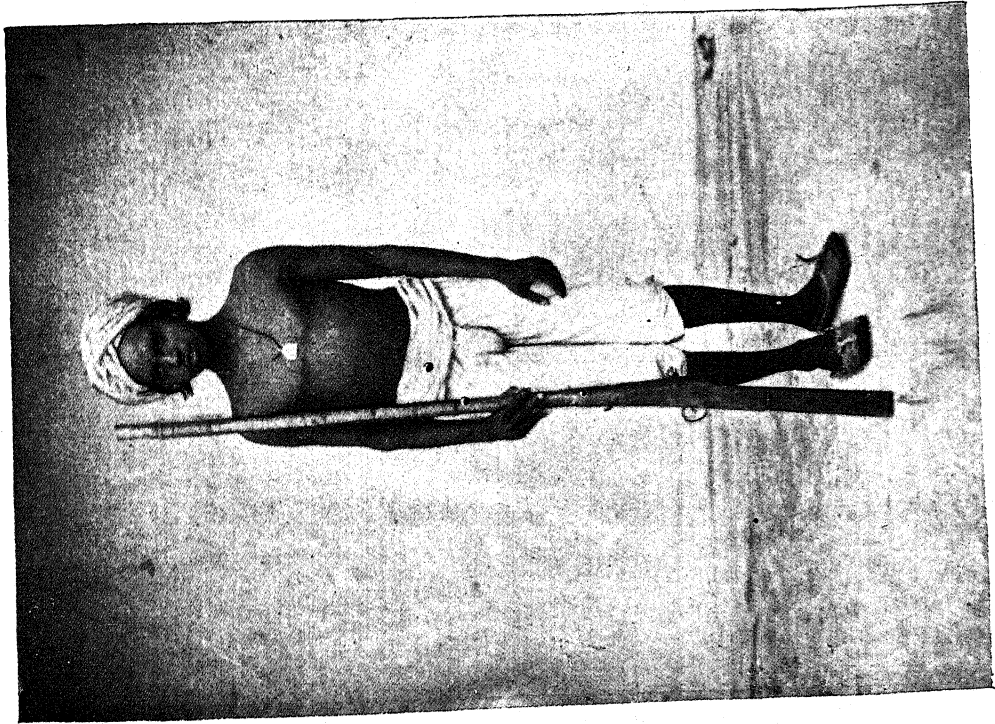
ठोरी

कर्नल टाड ने लिखा है कि ठोरी जाति क लोग पूरे शैतान के बच्चे होते हैं। राजस्थान की मरु भूमि की इस जाति का पैतृक व्यवसाय चोरी वटमारी है। यह अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते है इनमें राजपूती नामधारी बीस वंश हैं और यह सब अंतर्विवाह करते हैं। ठोरियों में नीचे दर्जे के लोग शिकार करते है और ग्रहण के अवसरों पर भंगियों के साथ जाकर भीख मांगते है। घृणा के रूप में यह लोग अहेरी कहे जाते हैं किन्तु यथार्थ में यह सब अहरियों के ही समान होते हैं। लोगों का विश्वास है कि ठोरियों का सम्बन्ध वंजारों से है किन्तु यथार्थ में यह बात नहीं है। कर्नल टाड का कथन है कि यह लोग राजस्थान की मरु भूमि के वंजारों के समान माल लाने और ले जाने का काम करते हैं और नायक कहलाते हैं। सर हेनरी ईलियट का कथन है कि यह लोग धानुक हैं और इनकी वही श्रेणी है जो बोरियो और अन्य जातियों की है। इन लोगों को भी जमीनें दी गई हैं तथा कृषि कार्य सिखलाया गया है।

ठोरी हिन्दू जाति के अनुयायी है और पाबूजी तथा क्षेत्रपाल के उपासक हैं। ये शराब पीते हैं और सब प्रकार का मांस खाते हैं। इनके पुरोहित गुर्रा लोग होते हैं जो इनके विवाह और मृत्यु कार्य सम्पन्न करवाते हैं। नाता इन लोगों में प्रचलित है। यह अपने शव फूँकते हैं।

पाली जिले के एन्डला गुडा ग्राम के रजिया नाम के एक ठोरी ने राजस्थान की इन जातियों का बहुत बड़ा धार्मिक सुधार किया है। वह कबीर पंथी था और उसने मीना तथा इसी प्रकार की अन्य जातियों को अपना चेला बनाकर कंठी देकर उन्हें तीन बातें सिखाई है। १. पशु हत्या न करना २. मांस मदिरा खान पान न करना। ३. चोरी न करना। इसके उपदेशों ने लोगों को आकर्षित कर लिया और उन पर काफी प्रभाव पड़ा था और मीना तथा और अन्य जातियों ने एक बहुत बड़ी संख्या में अपने खानपान में सुधार किया तथा दस्यु वृत्ति का परित्याग किया।

बागडी

बागड नाम जंगल का है और जंगल में बसने के कारण इस जाति का नाम बागडी हुआ है। केप्टेन भीड का कथन है कि यह एक जंगली जाति है और शिकार के मांस और जंगल के फल और मूल पर उसका गुजारा है। कर्नल टाड के कथनानुसार यह भारत की एक बहुत पुरानी जंगली जाति है किन्तु इनका कथन है कि इनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई है और इनमें अनेक उपजातियां हैं जिनके नाम पंवार परिहार, कोली, चारन, भाटी, ओरी, डाबी इत्यादि हैं। शस्त्रके रूप में इनके पास कडाबीन होती है यह कृषि करते हैं तथा कटाई के समय खेतों पर निगरानी करने

के काम पर लगाए जाते हैं। मल्लानी में यह पशु चिकित्सा का काम करते हैं। मध्य भारत में सर जान मकूम के कथनानुसार यह लोग पक्के चोर और लुटेरे हैं। कहा जाता है पश्चिम भारत से बोरियों के साथ वहां पहुँचे। चोरी और लूट में यह लोग बड़े साहसी और दक्ष होते हैं। यह लोग नमक हलाली में भी बहुत पक्के होते है तथा भाडे के सिपाही का काम करने को सदैव तत्पर रहते हैं।

बागड़ी जाति हिन्दू धर्म मानती है इनकी जाति की श्रेणी नीच अति नीच है। यह शक्ति की उपासना करते हैं। शराब पीते हैं और सब प्रकार के मांस खाते हैं। यह अपना वंश बचाकर अपनी ही जाति में विवाह करते हैं। गुर्रा इनके पुरोहित होते हैं जिनकी दक्षिणा आठ आने से लेकर एक रुपये तक होती है। इन लोगों में वधू की कलाई में एक डोरा बाँधकर सगाई पक्की होती है किन्तु दोनों पक्षों को उसे भंग करने का अधिकार होता है। इनमें वैवाहिक संस्कार के सात फेरे पडते हैं तथा दहेज में बकरियाँ और बछड़े दिये जाते हैं। इनमें नाता प्रचलित है। यह शव का मुख उत्तर दिशा की ओर करके उसे जलाते हैं और तीजा तथा बारहवाँ मानते हैं।

इन लोगों में पुरुष शरीर के हृष्ट-पुष्ट होते हैं। यह पोशाक हरे रंग की पहनते हैं और सदा एक कड़ाबीन अपने साथ रखते हैं। इनकी स्त्रियाँ साधारण वस्त्र पहनती हैं और अलंकार शायद ही कभी पहनती हैं।

नट

मिस्टर विलसन ने लिखा है कि नटों की जाति योरुप की जिपसी जाति के समान है जो सदा विचरते रहते हैं। और कलाबाजी, हाथ की सफाई तथा हस्तरेखा और लोगों का भाग्यफल बताकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इन लोगों की प्रकृति योरोप की जिपसी जाति की प्रकृति से मिलती जुलती है। यह लोग कलावाजी तथा रस्सी पर नाचने में अत्यन्त चतुर होते हैं और बड़े बड़े बाँसों इत्यादि पर चढ़कर चलने इत्यादि के खेल बड़ी सफ़ाई के साथ दिखलाते हैं। खेल दिखलाते समय यह ढोल बजाते है बस यही इनका प्रधान बाजा है। गुजरात के नटों को छोडकर जिनकी स्त्रियां भीख मांगती हैं, शेष नटों की स्त्रियां भी विभिन्न प्रकार के खेल तमाशे दिखलाती हैं। यह अपने बच्चों को बहुत थोडी अवस्था से सब प्रकार के खेल तमाशे और कलावाजी सिखलाते हैं। गुजराती नट राजस्थानी नटों के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते। कहावत है कि किसी समय सनचरी नाम की नट स्त्री रस्सी के नाच में इतनी चतुर और अभ्यस्त थी कि उस समय के जालोर के सोनिग्रा वंशीय राजा से उसने आधा राज्य ले लिया होता कदाचित् राज्य के अधिकारियों ने कपट से उसकी रस्सियां काट न दी होती, जिसके कारण वह सर के बल गिर पडी और

उसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गयी। जालोर की एक पहाडी पर उसी स्त्री के नाम का एक स्मृति चिह्न स्थापित है और उसके वंश के पन्द्रह परिवार जो गुलाब के टोका के नाम से प्रसिद्ध हैं वहीं रहते हैं।

वह लोग अपने शरीर के अंगो को नरम और लचीले बनाये रखने के प्रयोजन से तेल का भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार से खूब प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार मातृत्व काल में अन्य हिन्दू स्त्रियां अजवाइन का अधिक प्रयोग करती हैं उसी प्रकार उस परिस्थिति में नट स्त्रियाँ तेल का प्रयोग करतीं हैं उन लोगों में कहावत है।

"तेल जितना खेल।" एक व्यक्ति तेल का जितना अधिक प्रयोग करेगा उतना ही अधिक खेल भी वह दिखला सकेगा। मिस्टर इवटसन का कथन है कि नट जाति के लोग हनुमान की उपासना करते हैं और सम्भवत: बन्दरों की कलाबाजी की प्रकृति के कारण।

नट सदा विचरते रहते हैं। उनका एक परिवार डेरा कहलाता है। दो तीन परिवार जब एकत्रित हो जाते है तब वह टोला कहलाता है। राज्यस्थान में इन के टिरनवाज तथा फैलवाज इत्यादि नामों से प्रसिद्ध अनेक टोले हैं। पंजाब के नटों पर योरुप की जिपसी जाति के समान उनके एक राजा और रानी का शासन रहता है और यह राजा और रानी उनके जितने उपविभाजन होते है उन सब पर शासन करता है।

नट शराब और मांस दोनों पीते खाते हैं। उनका कोई पुरोहित अथवा गुरू नहीं होता वह अपने सब संस्कार स्वयं ही सम्पन्न कर लेते है। विवाह के अवसर पर वह दो बांस गाड कर उसमें तोरन लटका देते हैं। वर और कन्या उसी के फेरे फिरते हैं। इन लोगों में गठजोडन तथा हथलेवा प्रथाएं तो होती हैं परन्तु अग्नि की ज्योति नहीं खडी की जाती। उत्तर पश्चिम प्रान्तों में नट अपनी कन्यायें बटरूप बंजारों के साथ बिना उनकी कन्या बदले में लिए ही विवाह कर देते हैं। नटों में नाता प्रथा प्रचलित है और नाता संस्कार के अवसर पर विधवा के मृतक पति के सम्बन्धियों को कुछ रुपया भी देना पडता है किन्तु यदि एक भाई अपने मृतक भाई की पत्नी के साथ नाता जोड ले तो उसे कुछ नहीं देना पडता।

नट पाजामा अथवा कसी धोती पहनते हैं और गले में कोडियों तथा मूंगे का हार। उनकी स्त्रियां पीतल के अलंकार पहनती हैं।

बाजीगर कहलानेवाले लोग भी नटों में वे ही माने जाते हैं। यद्यपि बाजी शब्द से केवल व्यवसाय का बोध होता है जाति का नहीं। राजस्थान के बाजं विभिन्न प्रकार के जादू के खेल तथा भालू और बंदरों का नाच दिखाते वाजीगर अन्य प्रकार के भी खेल तमाशे दिखलाते हैं।